काया की माया

अनिरुद्ध पाण्डेय

ग्रन्थ-सख्या | २३४

स० २०२० | प्रथम सस्करण

●

मूल्य | ८ ०० नये पैसे

●

प्रकाशक और विक्रेता | भारती भण्डार
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

●

मुद्रक | श्री बी० पी० ठाकुर
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

●

आवेदन

यह उपन्यास सन् १९६१ में खासबाग, रामपुर में लिखा गया। रामपुर में और बाहर भी कई मित्रों ने इसके कुछ अंशों को पढ़ने-सुनने के बाद मुझसे कहा कि मैंने अमुक राजा, महाराजा, नवाब, रईस या सेठ को ध्यान में रख कर इसकी कहानी लिखी है। बात सही नहीं है। इसकी कथा से किसी भी जीवित या मृत व्यक्ति का कोई सरोकार नहीं। इसमें मानव के अन्तर्मन की शाश्वत कहानी है जिसमें हमारी, आपकी, हर एक की, अपनी छाया मिलेगी। इतिहास के आदिकाल से अब तक, अभी सामन्तवादी परम्परा का दुनिया से बिलकुल लोप नहीं हुआ, मानवता की रागात्मक गति-विगति में—स्वयं के बाहर और भीतर में—इतना कठोर संघर्ष रहा है कि ज्ञानियों ने जीवन को ही माया—मिथ्या—कहा है। इस मिथ्या से मुक्ति स्वर्ग में सँजोयी गयी है। लेकिन स्वर्ग की परि-कल्पना में भी माया के आकर्षण का ही बाहुल्य है। मानवता इसी माया और स्वर्ग की भूलभुलैया में कुढ़ती-मिटती चली आ रही है। इस असमंजस से त्राण पाने का कोई रास्ता भी नहीं सूझ पड़ता। 'काया की माया' की कहानी में इसीलिए हर सहृदय पाठक को अगर अपना नहीं तो अपने किसी सुपरिचित का जीवन दिखायी पड़ेगा। तो बात एकदम झूठी भी नहीं। फिर भी उदारचित्त पाठकों और मित्रों से अनुरोध है कि इस उपन्यास में वह किसी व्यक्ति विशेष को ढूँढ़ने की व्यर्थ की परेशानी में न पड़ें।

जीवन की इस जीती-जागती शाश्वत कथा को भरसक यथार्थ ढंग से कहने की कोशिश की गयी है। देश-विदेश के कई सुप्रसिद्ध कथाकारों ने इस शैली को पहले भी अपनाया है। फिर भी कई मानों में यह हिन्दी में अपूर्व उपन्यास है जिसका द्रष्टव्य निहायत कल्याणकारी है।

अन्त में मैं हिन्दी के सुपरिचित विद्वान श्री वाचस्पतिजी पाठक के प्रति अपना आभार प्रकट करना जरूरी समझता हूँ जिन्होंने इस उपन्यास की पाण्डुलिपि को पढ़कर कई बहुमूल्य सुझाव दिए।

१ जनवरी १९६४, इलाहाबाद —अनिरुद्ध पाण्डेय

: १ :

बाबू रूपकिशोर की पत्नी बोलीं, "जेठजी को उस मकान में आये महीना भर तो हो चुका। अभी तक उन्होंने कोई इन्तजाम नहीं किया। क्या वे हमेशा उसी में बने रहेंगे ?"

बाबू रूपकिशोर कचहरी से लौट चाय पीकर अभी बैठे ही थे। अनमने मन से उन्होंने उत्तर में कहा, "तो क्या किया जाय ? उन्हें निकाल तो दिया नहीं जा सकता ?"

"मगर कब तक वह मकान घेरे रहेंगे ? जहाँ तक मैंने सुना है वह मकान छोड़ना नहीं चाहते। कहीं कोई मकान देखने की उन्होंने कोशिश भी नहीं की है।"––पत्नी ने खिन्नता का भाव प्रकट करते हुए कहा।

बाबू रूपकिशोर मन-ही-मन खीझ उठे। अपने भाव को दबा कर उन्होंने कहा, "मैं तो तुम्हारी किसी बात में अड़चन डालता नहीं। तुम भइया से जा कर निपटारा कर लो। लेकिन यह मत भूलना कि मकान पर उनका भी कुछ हक़ है।"

पति की बात सुन कर पत्नी रोष से भर गयीं। झुँझला कर बोलीं, "हो चुका तब निपटारा। जब अभी से हक माने बैठे हो तो वह मकान हाथ से जा कर ही रहेगा। बच्चों को तो भीख माँगनी ही है। उनकी तुम्हें क्या चिन्ता पड़ी है ? भाई का प्रेम लेकर चाटो। न हो तो यह घर भी और बलुआ घाट वाली कोठी भी उन्हीं के नाम कर दो।"

"आखिर तुम कहना क्या चाहती हो ?"––बाबू रूपकिशोर ने पत्नी के रोष से सहम कर पूछा।

"कहना क्या है ? जेठ जी को साफ-साफ बता देना चाहिए कि जब वे आये थे तब मकान खाली था। सगे भाई थे। उसमें उनको रहने दिया गया; पर अब तो महीने भर से ऊपर हो चुका। उन्हें अब तक कोई अपना ठिकाना

कर ही लेना चाहिए था । कल महरिन कह रही थी कि अलोपी बाग में एक मकान खाली हुआ था । मकान मालिक किसी बाल-बच्चेदार परिवार को उसे उठाना चाहता था । जेठ जी के कान तक भी बात आई थी । पर वह तो देखने भी नहीं गये । मकान मालिक को जब कोई गृहस्थ नहीं मिला तो लाचार हो उसने वह मकान स्कूली लड़कों को किराये पर दे दिया । ऐसे न मालूम कितने मकान रोज़ खाली होते रहते हैं । अगर जेठ जी खोजते तो मकान जरूर मिल जाता । पर उनकी नज़र तो कहीं और है ?"

"कहाँ नज़र है ?"—बाबू रूपकिशोर ने हैरानी से पूछा ।

"उसी हक पर जोर दिया जा रहा है जिसे तुम पहले ही से माने बैठे हो ।"—पत्नी विजय सूचक शब्दों में बोलीं ।

बाबू रूपकिशोर गम्भीर हो उठे । उन्होंने कहा, "जान्हवी तुम्हारा खयाल गलत है । भइया और चाहे जो करें, वे हिस्से-बखरे की बात कर ही नहीं सकते ?"

"मैं खूब जानती हूँ । एक तुम्हारे आदर्श भाई हैं जो जीवन-भर की नौकरी की कमाई के जोम पर अपना हिस्सा लेने आये हैं और दूसरे उनके सतयुगी छोटे भाई हैं, जो बड़े भाई के सामने अपनी कमाई से बनवाये मकान के बारे में अपनी जबान नहीं हिला सकते, चाहे अपने बच्चों को बे-घर-बार का हो दर-दर की ठोकरें खानी पड़ें" ।

बाबू रूपकिशोर के चेहरे पर पत्नी के व्यंग-बाण से एक अजीब भाव आ झलका । पत्नी को प्रसन्न करने के लिए उन्होंने प्रयत्न पूर्वक कहा, "कुछ करना ही पड़ेगा जान्हवी ! भैया से तुम्हीं इशारे से कहो । मुझसे उनसे कहने का साहस ही नहीं होता ।"

पत्नी का चेहरा तमतमा आया । ऊँचे स्वर में वे बोलीं, "यह भी खूब रही । अपने तो मीठे बने रहो और मुझे ही बुरा बनाने की चाल करो । पहले से ही जेठानी ने मशहूर कर रखा है कि जब से मैं इस घर में आयी हूँ, उनका परिवार छिन्न-भिन्न हो गया है । जानते हो, बाबू शिवकुमार की पत्नी से जेठानी जी ने क्या कहा ? बाबू शिवकुमार की पत्नी से उन्होंने कहा, 'बहन, देवर को

अपने लडके की तरह पाल पोस कर आदमी बनाया । उसे अपना तन-पेट काट कर हम लोगो ने पढाया लिखाया, वकील बनाया । कभी क्षण-भर के लिए भी हमने देवर को अपने सगे लडके से भिन्न नही समझा । देवर ने भी कभी हमे गैर नही समझा, पर जब से देवर की पहली पत्नी का देहान्त हुआ है और यह जान्हवी आयी है, तब से देनर का भाव ही बदल गया है । देखो न, कितने बरसो पर हम पेशन ले कर किस साध से यहाँ आये, पर हमे किराये वाले घर मे ठहराया है । पैतृक मकान मे हमे ठहरने तक नही दिया ।'

स्वर को और ऊँचा उठा कर वे बोलती गयी, "यह भी कहती थी कि घर केवल देवर जी का ही तो है नही । बाप के समय का है । हमारा भी तो उसमे आधा हिस्सा है ।"

पत्नी ने इसके बाद पूरा आक्रोश जताते हुए कहा, "मुकदमा करेगी, मुकदमा! इस घर का आधा हिस्सा तुम्हे देना पडेगा ।"

बाबू रूपकिशोर पत्नी की पहली कही गयी बात को सोच रहे थे, 'किराये पर ठहराया है ।' एकाएक उन्होने पूछा, "भाभी से तुमने कोई किराये की बात की थी ?"

पत्नी पति का भाव न समझ कर बोली, "एक दिन महरिन से कहलाया तो था कि जिस हिस्से मे वे ठहरे है उसका पच्चीस रुपया किराया होता है, किराया थोडे ही माँगा था ? ओर माँगने पर भी वे देगी कब ? मै उनकी तरह मुकदमा तो करने जाऊँगी नही ।"

बाबू रूपकिशोर पत्नी की बात सुन सोच मे पड गये । कुछ देर के मौन के बाद बोले, "जान्हवी, तुम्हे मालूम है कि मेरे पिता एक मन्दिर मे पुजारी थे । दो रुपया महीना और भगवान को चढे प्रसाद का भोजन, यही उनका वेतन था । उन्होने किसी तरह भइया को पढा कर रेलवे के आफिस मे चालीस रुपये महीने पर नौकर करा दिया था । उस समय मै दस बरस का भी नही हुआ था । भइया के पास ही रह कर मैने पढा-लिखा । फिर भइया की बदली यहाँ से दानापुर हो गयी । वहाँ से कालेज मे मुझे पढने का वह सारा खर्च भेजते रहे । बी० ए० के दो साल और वकालत के दो साल तक वे मुझे साठ रुपया

महीना देते रहे। इसके अलावा कपड़ा-किताब के लिए, जब कभी उनसे कुछ माँगा, उन्होंने कहीं से भी जोगाड़ जरूर कर दिया। मेरे बी० ए० में पहुँचने के पहले ही पिता जी स्वर्ग सिधार चुके थे। भइया ने ही मेरा विवाह किया। महेश और माधुरी के जन्म पर पूजा-पाठ, उत्सव कराया, उत्साह से खर्च किया। और जब महेश की माँ चली गयीं तो भइया ने ही तुम्हारी जैसी नारी-रत्न ढूँढ कर मुझे ला दिया।"

जान्हवी 'नारी-रत्न' के प्रयोग को व्यंगात्मक समझ चिढ़ कर बात काट कर बोली, "मेरा अपमान करने की जरूरत नहीं। मैं जानती हूँ जैसा नारी-रत्न तुम मुझे समझते हो। यह तो जेठजी का ही कपट था कि मुझे विवाह के दिन ही दो बच्चों की माँ बन कर आना पड़ा। मेरे पिता की तो उन्होंने मति हर ली थी। वह उनकी बातों में आ गये और तुम्हें भी नाहक जीवन भर का सर-दर्द मिल गया। नहीं तो स्वच्छन्दता से तुम अपना जीवन बिताते और भरत की तरह बड़े भाई का चरण धो-धो कर पीते। लेकिन बड़े भाई ने तो छोटे भाई का इतना भी खयाल नहीं रखा कि पेंशन ले कर जीवन-भर की कमाई से भरत-जैसे छोटे भाई के बच्चों के लिए कलकत्ता से रसगुल्ले की एक हँडिया ही लेते आते। केदार, करुणा के लिए न लाते तो कोई बात नहीं थी। तुम्हारे महेश और माधुरी के लिए तो लाये होते?"

पत्नी का पारा चढ़ते देख बाबू रूपकिशोर दुःखी हुए, बोले, "तुम तिल का ताड़ बनाने में चूकती नहीं। क्या महेश और माधुरी तुम्हारे वैसे ही बच्चे नहीं, जैसे केदार और करुणा?"

"तुम्हारे बच्चे तो हैं ही। महेश, माधुरी ने भले मेरी कोख से जन्म नहीं लिया, लेकिन क्या कभी भी मैंने उन्हें केदार-करुणा से भिन्न समझा है?"

एकाएक आँखों में आँसू भर कर वे सिसक पड़ीं, "मेरा यही कुसूर है कि इन चारों बच्चों के भविष्य का मुझे ध्यान है। जेठजी की तरह हमारी पेंशन तो होने को नहीं। वकालत का काम है। आज चल रहा है, कल न चले। अगर अभी से लुटाते रहे तो सब कुछ जाते कितने दिन लगेंगे? लेकिन अब मैं कान पकड़ती हूँ जो बच्चों की भलाई की भी कभी आज से कोई बात करूँ?"

वह सिसकती हुई उठ कर ऊपर के तल्ले में अपने कमरे में चली गयीं। सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते वे कहती जा रही थीं, "मेरा करम ही फूट गया। एक तो दूसरी होकर आई, फिर बच्चों के लिए भी कुछ कहने पर बुरी मानी जाती हूँ।"

बाबू रूपकिशोर ने कमरे में टँगी दीवाल घड़ी की ओर देखा। अभी छः बज रहे थे। साढ़े सात बजे उन्हें कहीं पहुँचना था। वह उठ कर ऊपर पत्नी के कमरे में आये।

पत्नी पलँग पर औंधी पड़ी थीं। पति को आते देख उन्होंने अपना मुँह फेर लिया। बाबू रूपकिशोर पलँग पर बैठ पत्नी का हाथ अपने हाथ में ले कर बोले, "जान्हवी, तुम नाहक नाराज़ हो जाया करती हो। मैं कब कह रहा हूँ कि जायदाद गवाँ दी जाय। मैं तो यही कह रहा था कि भइया के मुझ पर इतने एहसान हैं कि उनसे मुझे कुछ कहते नहीं बनेगा। तुम बुद्धिमान हो, व्यवसायी पिता की पुत्री हो, किसी तरह तुम्हीं कोई उपाय निकालो कि भइया बुरा भी न मानें और जल्दी ही कहीं मकान ढूँढ लें।"

जान्हवी पति की बातों से यह नहीं समझ सकी कि वह कहाँ तक सचाई और कहाँ तक व्यंग-भाव से बात कर रहे हैं। वह मौन रही। पति को उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

बाबू रूपकिशोर ने पत्नी का गुस्सा शान्त करने के लिए रसिकता से कहा, "जान्हवी, तुम्हें उदास देख कर मेरा सारा उत्साह ठण्डा पड़ जाता है। इस कमल मुख को मैं हमेशा खिला हुआ देखना चाहता हूँ।"—यह कहते हुए बाबू रूपकिशोर ने पत्नी के चेहरे पर अपने हाथ की उँगलियों को प्रेम से फेरा। लेकिन पत्नी का मौन भंग नहीं हुआ। तब विश्वास के मीठे स्वर में उन्होंने कहा, "मैं समझता हूँ जान्हवी कि तुम हम सबके भले की ही बात कर रही हो। मैं तुम्हारे भाव का आदर करता हूँ। तुम दुःखी न हो, उठो।" पत्नी को उन्होंने अपनी ओर खींच, उसके मुँह को अपने मुँह की ओर कर, अपने अंक-पाश में भर लिया। पत्नी कृत्रिम रोष के भाव से बोल पड़ीं, "चार बच्चों के बाप हो गए, अभी तक हया नहीं आयी। शाम का वक़्त है, दरवाज़ा खुला है। बच्चे आते होंगे।"

"जान्हवी, जब तुम नाराज होती हो तो मेरा मन जाने कैसा हो जाता है। तुम नाराज न हुआ करो।"––बाबू रूपकिशोर ने पत्नी के अधरों पर प्रेम-चिन्ह अंकित करते हुए कहा। वे यह समझ कर प्रसन्न हो रहे थे कि पत्नी का गुस्सा रसिकता के प्रवाह में कम हो चला। तब तक नीचे से बच्चों की आवाज आयी।

जान्हवी अस्त-व्यस्त उठ कर बैठ गयी। बाबू रूपकिशोर ने कमरे के बाहर आ नीचे की ओर झाँकते हुए पूछा, "महेश, देखना तो क्या बजा है?"

"छ बज कर चालीस मिनट हो रहे हे"––महेश ने नीचे से बताया।

बाबू रूपकिशोर चलने को तैयार हुए।

जान्हवी ने तब पति से गम्भीर आवाज में पूछा, "आज न जाने से नहीं गा?"

"जल्दी लौट आऊँगा। जिला मैजिस्ट्रेट से आज क्लब जाने का वादा कर चुका हूँ। साढे सात तक पहुँच जाना है।"

"कब तक आ जाओगे?"––पत्नी ने फिर पूछा।

"जल्दी ही आने की कोशिश करूँगा। क्लब में तो तुम जानती ही हो देर हो जाया करती है। लोग उठने ही नहीं देते। आज जो हो, मैं उठ कर चला आऊँगा।"

कमरे के दरवाजे पर आ कर बाबू रूपकिशोर ने पत्नी से कहा, "हाँ, तुम जरा सोचना, भइया से काम भी निकल जाए और बुराई भी न मिले। जल्दी में कुछ मत कर बैठना।"

बाबू रूपकिशोर जब नीचे आये तो माधुरी ने उनसे कहा, "बाबूजी, जल्दी ही लौटियेगा। आज मटर की कचौडियाँ बनाऊँगी।"

बाबू रूपकिशोर का दिल करुणा-मिश्रित स्नेह से भर आया। माधुरी एफ० ए० के दूसरे वर्ष में थी। रसोई वही बनाया करती थी। करुणा सात वर्ष की बच्ची थी। जान्हवी का कहना था कि लडकी सयानी हो गयी है, उससे कोई नौकरी थोडे ही करानी है, खाना बनाना अब न सीखेगी तो उसके पति के घर के लोग उसको और उसके माँ-बाप को क्या कहेंगे?"

बाबू रूपकिशोर विवश थे। वे कुछ कर नही पाते थे। उन्हे घर आते-आते दस तो बज ही जायेंगे, शायद और भी देर हो जाए, उन्होने सोचा। कचौ-डियाँ गरम गरम खाने मे अच्छी लगती है। बोले, "बेटा मै जल्दी ही आ जाऊँगा। लेकिन दस बजे तक अगर नही लौटा तो तुम बना कर रख देना।"

"मै इन्तजार करूँगी, बाबूजी!" —माधुरी का स्नेह शब्दो मे उमड पडा।

करुणा आ गयी। पिता का हाथ पकड कर बोली—"बाबूजी, मै भी चलूँगी।"

"अभी तो तुम पार्क से खेल कर आयी हो। किसी दिन और ले चलूँगा। अभी जीजी के सग खेलना।"—कह कर करुणा के कपोलो पर प्यार पुलक से बाबू रूपकिशोर ने एक मीठी चपत लगायी और घर के बाहर हो गए।

बाबू रूपकिशोर का घर के बाहर जाना ही था कि जान्हवी ऊपर से नीचे आयी। महेश से उन्होने पूछा, "तुम्हारे पिता जी चले गये क्या? कुछ चीजे मँगानी थी।"

"अभी-अभी गए है।"—महेश ने कहा। वह पढने के लिए बैठने की तैयारी कर रहा था। बी० एस०-सी० के अन्तिम वर्ष मे वह था, परीक्षा निकट थी।

"बेटा महेश, मैने एक कागज पर कुछ चीजे लिख दी है। जरा चोक से उन्हे ला दो। पुर्जा रसोई घर की मेज पर रखा है।"

महेश रसोई घर की मेज से पुर्जा उठा लाया। उसे पढ कर बोला, "बहुत चीजें है। कल ला दूँगा। घटो खरीदते लग जायेंगे। आज एक लेख तैयार करना है। कल उसे दे देना जरूरी है।"

"बाप ही जब कहना नही सुनता तो बेटा क्यो सुनेगा? मेरी गलती है भइया, जो मैने तुमसे कहा। लाओ पुर्जा दो। किसी और से मँगा लूँगी।"

माँ की बोली से महेश ने अप्रतिभ हो कर कहा, "अच्छा मा, अभी लाये देता हूँ।"

"नही भइया, तुम्हारा लेख धरा रह जायेगा। मै किसी और से मँगा लेती हूँ।"—पुर्जा महेश के हाथ से कर वह भीतर चली गयी।

माधुरी रसोई की तैयारी मे लगी थी। माँ के चेहरे के भाव पर उसकी

नज़र गयी । माँ कुछ परेशान हैं । क्यों, यह न जानना चाह कर, माँ का मन काम-काज में लुभा देने के लिए उसने माँ से पूछा—"माँ सब्जी क्या बनेगी ?"

"जो कुछ भी हो बना लो भाई, मुझसे क्या पूछना ?"

माधुरी आलू छील रही थी, परवल रक्खे थे, टिण्डे थे। बोली, "मटर की कचौड़ियों के सँग तो अम्मा, कद्दू अच्छा लगता है । कद्दू मँगा लूँ ?"

"मँगा लो और आलू-परवल रसेदार कर दो।"—काम काज की बात ने जान्हवी के गृहिणी-दर्प को जगा दिया ।

"माँ, आज खीर न बना कर रवड़ी बनाये देती हूँ । कचौड़ियों के सँग रवड़ी अच्छी रहती है ।"

"जो चाहे सो बना लो, जो तुम लोगों को अच्छा लगे" । माँ ने अन्यमनस्क भाव से कहा ।

माधुरी समझदार और सुशील लड़की थी । सात साल से कम की थी, जब जान्हवी माँ की जगह घर में आयी थी । महेश माधुरी से तीन साल बड़ा था । महेश अपनी नयी माँ के उतना करीब नहीं आ सका था, जितनी माधुरी । इसका खास कारण माधुरी का स्वभाव था । माधुरी ने जान्हवी को पहले से ही सखी भाव से अपना लिया था । माँ के मरने के बाद घर में कोई स्त्री थी नहीं । ताईजी कुछ दिनों रही थीं, फिर चली गयी थीं । नाते-रिश्तेदार भी आते, चले जाते । जान्हवी जब माँ की जगह आयीं तब माधुरी को एक बोलने वाला मिला । छोटी बालिका, नयी माँ को पहले से ही अपनाए बैठी थी । उसकी भी साध होती है, उसका भी मन होता है । पिता से, स्वाभाविक ही उसकी उतनी मैत्री नहीं हो सकी थी जितनी किसी स्त्री से होती । घर-भर में एक मात्र नारी जाति की हो कर अपनी अल्प वय में ही माधुरी में उत्तरदायित्व की अज्ञात बुद्धि आ गयी थी । जान्हवी जब आई तो वह प्रेम-पुलक से उसकी ओर झुकी । जान्हवी भी माधुरी की शिष्टता, कर्त्तव्य के विवेक और बड़ों के प्रति आदर की भावना से उससे प्रसन्न हो उठी । पति के बाद इस घर में यदि उसे किसी से हार्दिक सहानुभूति या मैत्री थी, तो माधुरी से । वह उसे प्यार से ही रखने की कोशिश करती थी । और बालिका माधुरी ने तो अपनी ओर से

कभी कोई अवसर ही नहीं दिया, जब कि माँ के स्थान पर आयी नवयुवती जान्हवी को अप्रिय होने का मौका मिला हो।

माधुरी जब ग्यारहवें में आयी तो केदार का जन्म हुआ। शिशु केदार का खिलौना उसे बड़ा ही अच्छा लगा। वह उसे रात-दिन खेलाती रहती, चिपटाये रहती, इतना कि कभी-कभी रात को नींद से उठ कर शिशु केदार को अपने पास न पा वह जोर जोर से रोती। जान्हवी जब उठ कर शिशु केदार को उसकी चारपायी पर लिटा देती तभी वह चुप होती।

केदार के जन्म के तीसरे साल करुणा का जन्म हुआ। करुणा भी माधुरी की उसी तरह प्रिय खिलौना बनी, जैसा केदार था। माधुरी दोनों पर जान देती थी।

लेकिन केदार के जन्म के बाद ही जान्हवी में अपना और पराया बुद्धि का प्रवेश हुआ। करुणा के जन्म के बाद तो नारी शिशु का अभाव, जिसे माधुरी ने एक हद तक पूरा किया था, बिलकुल जाता रहा।

जान्हवी में मगर सहज-बुद्धि की कमी नहीं थी। पढ़ी-लिखी विशेष न होने पर भी मिडिल तक उसकी शिक्षा थी। वह अपने व्यवहार की कुशलता इसी में मानती थी कि प्रकट रूप में वह अपने पति के चारों बच्चों में कोई विभेद न पैदा होने दे। इसके लिए वह सदा कोशिश करती रहती थी।

माधुरी ने अपने सोलहवें साल में मैट्रिक की परीक्षा अच्छी श्रेणी में पास की। मैट्रिक के बाद से ही रसोई का भार उसके जिम्मे पड़ गया था।

बाबू रूपकिशोर का ध्यान इस बात पर गया था। पहले तो यह समझ कर कि जान्हवी शिशु केदार और करुणा को लेकर व्यस्त रहती है, उन्होंने कुछ कहा नहीं। पर जब उन्होंने यह देखा कि रसोई का काम माधुरी पर एक प्रकार से हमेशा के लिए लद गया है, तब उन्होंने एक महाराजिन रखने की बात चलाई। जान्हवी ने महाराजिन या महराज रखने से साफ इनकार कर दिया। उसने कहा, "रसोई मैं स्वयं बनाऊँगी। दूसरे के हाथ की रसोई मैं न तुम्हें खाने दूँगी, न बच्चों को। रसोई ही तो जीवन का मूल है। प्रेम की रसोई से परिवार फलता है। महराजिन कब ऐसी रसोई बना पायेगी।"

बाबू रूपकिशोर तब चुप हो रहे थे। जान्हवी ने कुछ दिनों रसोई में हाथ

बँटाया भी। पर माधुरी को भी तो पाक-कला सिखानी थी। सयानी लडकी थी। विवाह के योग्य हो रही थी। उसका घर का काम-काज सीखना, जान्हवी की राय मे जरूरी था। इस तरह धीरे-धीरे रसोई का पूरा काम माधुरी पर ही आ पडा।

माधुरी यह नही, कि नासमझ हो। एफ० ए० मे प्रवेश करते समय वह अज्ञात से ज्ञात मे प्रवेश कर रही थी। माँ के मन को वह जानती थी। पिता के भाव को वह समझती थी। पर माँ की आज्ञा का उल्लघन वह कभी अपने से नही होने देती थी। माँ के प्रति जो शैशव मे मैत्री के साथ-साथ आदर की भावना उसके हृदय मे घर कर गयी थी, वह उसके अन्दर अब पुष्ट रूप से वर्तमान थी। वह माँ को प्रसन्न रखना अपना कर्तव्य समझती थी। उसने कालक्रम से अनायास ही यह भी जान लिया था कि किस बात से माँ प्रसन्न होती है और कौन सी बात उन्हे अरुचिकर लगती है।

माँ आज कुछ अप्रतिभ थी, माधुरी ने साफ-साफ देखा। माँ का मन हल्का करने के लिए उसने कहा "माँ, सब्जी आज तुम्हे ही बनानी पडेगी। कद्दू की सब्जी तुम इतनी अच्छी बनाती हो कि पिछली बार बाबूजी उसे खाते ही रह गये। न जाने क्या जादू है तुम्हारे हाथो मे ? और कोई उतना अच्छा कद्दू बना ही नही पाता। ताईजी ने भी एक बार अमिया डाल कर कद्दू बनाया था। लेकिन तुम्हारा वाला स्वाद उसमे नही आया। तुम्हारी बनायी सब्जी तो कितना भी खाते जाओ, जीभ से छूटती ही नही, मन ही नही भरता।"

"अच्छा-अच्छा, बाते न बना। सब्जी काट कर रख दे। मै ही बनाये देती हूँ। पर कद्दू छोटे कटे।"—जान्हवी प्रसन्न मन बोली, उनके मन का भार काफी उतर चुका था।

"अच्छा माँ—और रसेदार सब्जी के लिए मसाले बता दो।"

"जब अपने घर जायेगी तो हमारी खिल्ली उडवायेगी। लोग कहेंगे कि सौतेली माँ थी, खाना बनाना भी नही सिखाया।"

माधुरी क्रोध से चिढ कर बोली, "झूठ क्यो बोलती हो ? तुम दद्दा के लिए जो समझो, मेरी तो सगी माँ हो। बाबूजी यही कहते है।"

"हाँ, री माधुरी, मै तेरी और महेश की भी सगी माँ हूँ। जब मै आयी थी,

बिल्वमाला ने हँस कर परिहास किया, "क्या बहन जी पर भी नही ?" बाबू रूपकिशोर ने एक दीर्घ नि श्वास छोडते हुए कहा, "वह तो रानी, तुम्हारी ही तरह, तुमसे पहले से ही जीवन से विधी है। यदि सच मानो तो, इसका एक प्रकार से अब मुझे अफसोस है। काश, मै पहली पत्नी की मृत्यु के समय यह जान पाता कि तुम मेरे जीवन मे कभी उदित होओगी और मेरे पवित्र प्रेम को स्वीकार करोगी तो कभी फिर मै विवाह ही नही करता। पर जो होना था, तुमसे मिलने के पहले ही हो चुका था।"

बाबू रूपकिशोर के दुखी भाव को समझ कर बिल्वमाला उनकी जाँघ के सहारे बैठ गयी और बोली, "मै जानती हूँ। हमारा-तुम्हारा सम्बन्ध पवित्र है और जन्म-जन्मान्तर के लिए है। तुमने मुझे जीवन का अमृत-तत्त्व दिया है। बहन जी मेरी बडी है। मै उनके लिए कभी भी बुरा नही मान सकती। हम राजाओ मे चार रानियो तक सम्बन्ध बिलकुल पवित्र माना जाता है। हमारे सरकार की अब भी तीन रानियाँ है। दासियो की तो गिनती नही।"

"हाँ", प्रेम पुलक से अपना तन-भार बाबू रूपकिशोर के ऊपर स्वच्छन्दता से छोडते हुए रानी ने पूछा, "मेरी गाडी कब आ रही है ? बीमा के रुपये तो आ ही गये होगे।" रानी बाबू रूपकिशोर के गले मे अपनी बाहो की माला डाल उनकी आँखो मे विचित्र उत्कठा से देखने लगी।

"बीमा के पचास हजार रुपये कल मैने बैंक मे तुम्हारे हिसाब मे डाल दिये है। गाडी के लिए दिल्ली चलना पडेगा। कब चल सकोगी ? यह लो बैंक की रसीद।"

"जब कहोगे दिल्ली चली चलूँगी। तुम्हारे हुक्म के बगैर क्या मैं कही जा सकती हूँ?"

"दिल्ली मे कम्पनी को लिखा है। जवाब आ जाय, तब चलने का तय करेगे।"

बिल्वमाला कार आने की प्रसन्नता से आविर्भूत हो उठी। फिर सहमा किसी बात को याद कर बोली, "एक बार तुम गाडी ले कर पशुपति नाथ भगवान के दर्शन कर आना, मेरी तुम्हारे लिए मनौनी है।"

"तुम भी तो चलोगी ?"

"हम लोग देश से निष्कासित है। मै कैसे चरु सकूँगी ?"

घडी पर बाबू रूपकिशोर की नजर गई। नौ बजने वाले थे। प्रेम से बिल्वमाला का बदन गुदगुदाते हुए बोले, "अच्छा वह अँगूठी आ गयी है ?"

"अरे हाँ, मै भूल ही गयी थी। आज ही शाम को वह अगूठी और हार जौहरी दे गया है। दोनो की कीमत सात हजार बता रहा था। परसों फिर बुलाया है।'

रानी ने दासी को आवाज दी, "बीरा, बीरा!" बीरा जब आयी तब भी बिल्वमाला बाबू रूपकिशोर की जाँघ पर सिर रखे पडी रही। बाबू रूपकिशोर तो एक बार सहमे, पर रानी ने निश्चित स्वर मे दासी से कहा, "बीरा, वह सेट जो आज जौहरी दे गया है, उठा लाओ।" बीरा जब गयी तब बाबू रूपकिशोर ने किंचित् मुस्करा कर पूछा, "बीरा क्या कहेगी ?"

"बीरा को एक दिन पेय देना ही पडेगा। कब से तडप रही है। तुमने उसकी आँखो का लालच नही देखा। अब पेय देना जरूरी है। हम लोगो का रिवाज है। नही तो किसी आवारे गुण्डे के साथ भाग जायगी। तुम उसका मन न तोडना। मै प्रसन्नतापूर्वक कह रही हूँ। यह मेरी मर्यादा की रक्षा की बात है।"

बीरा सेट लेकर आ गयी। रानी बिल्वमाला उठकर बैठ गयी, सेट खोला। सच्चे हीरे की अँगूठी, आलोक से दमक रही थी। बाबू रूपकिशोर की आँखे चमक उठी। मोतियो का हार भी अनूठा था।

रानी ने कहा, "बहन जी के लिए मँगाया है। उनसे जब मिलूँगी तब स्वय उन्हे पहनाऊँगी।"

"हार मिलने पर स्वय पहनाना। अँगूठी का मैने जिक्र किया था। लेता जाता हूँ।"—प्रसन्न मन बाबू रूपकिशोर ने कहा।

"अच्छा," कह कर रानी ने अँगूठी का डब्बा रख लिया। हार का सेट बीरा को लौटाते हुए हँस कर बीरा से बोली, "वकील साहब जल्दी ही तुम्हे पेय देने को तैयार हो गये है, अधीर मत हो।"

लाज से गडी बीरा चली गयी। वकील साहब के चेहरे पर भी सकोच की एक रेखा उभर आई। पर हार की चमक मे प्रेम-पुलक से प्रेयसी को अक मे भर कर उन्होने विदा माँगी।

रानी ने पूछा, "कब आओगे ?" और अँगूठी की डब्बी वकील साहब की में डाल दी।

"जल्दी ही आऊँगा"––कह कर वकील साहब उठ पड़े। रानी ने पेय का प्याला उठा कर कहा, "पी लो, यह व्यर्थ न जाय।"

वकील साहब ने क्षण भर सोचा। फिर खड़े-खड़े ही स्वर्ण प्याली रिक्त कर बाहर निकल पड़े।

वकील साहब जब घर पहुँचे तो दस नहीं बजा था। महेश अपने कमरे में पढ़ रहा था। दूसरे कमरे में केदार और करुणा सो गये थे। माधुरी भी पढ़ने में तल्लीन थी। कमरे में झाँककर वकील साहब ने माधुरी से पूछा, "बेटा, खाना खा लिया ?"

"हाँ बाबू जी, माँ ने कचौड़ियाँ गजब की बनायी हैं।"

पति के आने की भनक पा कर जान्हवी रसोई घर में आकर चूल्हा गरम कर रही थी। वहीं से जोर से बोली, "अभी तक क्लब में मटरगश्ती करते रहे। अब बच्चों को पढ़ने भी न दो। मैं बैठी-बैठी कब से राह देख रही हूँ।"

"आया जान्हवी, एक मिनट में, हाथ-मुँह धोकर। आज खाने की पूरी कसर निकाल लूँगा।"

वकील साहब हाथ-मुँह धो कपड़े बदल, रसोई घर में आसन पर जाकर बैठ गये। जान्हवी के चेहरे पर जो नज़र पड़ी तो वह बहुत ही खुश दिखाई पड़ी। शायद उनके समय से लौट आने से जान्हवी का शाम का सारा रोष मिट चुका था। वकील साहब पेय की उष्मा में भी थे। वह जान्हवी की ओर एकटक देखते रहे।

थाली में कचौड़ियाँ कड़ाही से गरम-गरम निकाल कर रखी जा चुकी थीं। पर वकील साहब का ध्यान जान्हवी के कमल-से प्रफुल्ल मुख पर था। सोच रहे थे वे––'बूढ़ा वह होता है जिसका दिल बूढ़ा होता है। जवान वह होता है जिसका दिल जवानी की उमंग से भरा रहता है, जो जवानी का अनुभव करता रहता है। जान्हवी, सुन्दरी जान्हवी, अगर न आयी होती तो मैं कब का बूढ़ा हो चुका होता। और अब . . .।'

जान्हवी तब तक बोल उठी, "कचौड़ियाँ कब की ठण्डी पड़ रही हैं। खाओगे या सोचते रहोगे ?"

तब बाबू रूपकिशोर की तन्द्रा टूटी। वे भोजन करने लगे। कचौडियाँ जायकेदार थी, कद्दू की सब्जी लाजवाब थी। आलू-परवल का रसा भी विचित्र सुस्वाद का था। बाबू रूपकिशोर ने पहला ही कौर खा कर कहा—"सब्जी खूब बनी है। किसने बनायी है?"—बाबू रूपकिशोर जानते थे कि इतनी अच्छी सब्जी घर भर मे जान्हवी ही बना सकती है।

जान्हवी ने कहा, "माधुरी ने बनायी है। और कौन बनायेगा?"

माधुरी कमरे से सुन रही थी। वही से बोली, "झूठ बोल रही है बाबू जी, आज सारा खाना माँ ने बनाया है।"

"क्यो झूठ बोल रही है? क्या रबडी तूने नही बनायी?"—जान्हवी ने प्रतिवाद के स्वर मे कहा।

"तभी तो रबडी उतनी अच्छी नही बनी?"—माधुरी ने कमरे से कहा।

"कौन कहता है कि रबडी अच्छी नही बनी?" पिता ने चख कर कहा और जान्हवी से बोले, "जरा चख कर तो देखो, रबडी भी आज खूब बनी है।" एक चम्मच मे रबडी भर कर जान्हवी के मुँह मे अपने हाथ से खिलाने को उन्होने चम्मच बढाया।

जान्हवी ने धीमी आवाज मे रोष का भाव बना कर कहा, "क्या करते हो? लडकी सयानी है। सब सुन रही है। चुपके से खाओ।"

"तुम्हारा चखना वह कमरे से कैसे देख लेगी?"—बाबू रूपकिशोर ने कहा तो, पर चम्मच को पत्नी के ओठो से वापस कर लिया।

भोजन रुचिकर था और बाबू रूपकिशोर आनन्द-मुद्रा मे थे। प्रेम से उन्होने भोजन किया।

खाने के बाद ऊपर कमरे मे आये। पान की गिलौरियाँ तिपायी पर सजा कर रखी थी। उन्होने बीडा मुँह मे रखा। तम्बाकू की चिलम फर्शी पर सजी थी। उसका कश लिया। फिर बाहर आ कर नीचे रसोई की ओर झाँकते हुए बोले, "चिलम बुझ गयी है। खा कर जरा जल्दी ही आग लाना।"

जान्हवी जान-बूझ कर जल्दी नही आई। जब आयी तब ग्यारह बज चुके थे। आते ही गुस्से के भाव से बोली, "जरा भी ध्यान नही रखते। लडकी सयानी हो गयी है। मुँह मे जो आया सो बक जाते हो।"

बाबू रूपकिशोर ने पत्नी को खींच कर मसहरी के अन्दर करना चाहा। चीते की फुर्ती से अपने को पति की पकड से छुटा कर जान्हवी ने गुस्से से कहा, "क्या करते हो ? जरा शरम तो करो। अभी माधुरी सोयी नही है। चिलम की तुम्हारी उक्ति सुनकर सोने का बहाना किए पडी है।"

"माधुरी तुम्हारी ही बेटी है। माँ को किसी उचित से भिन्न नजर से कोई देख ही नही सकता। देखो तुम्हारे लिए क्या लाया हूँ ?" उन्होंने तकिये के नीचे से अँगूठी निकाल कर जान्हवी की अनामिका मे पहना दी। हीरे की चमक से जान्हवी की आँखो में क्षण-भर को चकाचौंध छा गयी। उसने पूछा, "कितने की है ?"

"तुम्ही अन्दाज करो।"—पति ने कहा।

"मै क्या कोई जौहरी हूँ ? पर बाबू शिवकुमार की स्त्री के पास तो इससे कम वजन और चमक का हीरा है। सात सौ दाम बताती है।"

"ढाई हजार कह रहा था। एक जौहरी है। उसका बडा सगीन मुकदमा मैंने जीता था। आज उसकी तरफ निकल गया। तुम्हारे लिए उसने जबरदस्ती यह जेब मे डाल दिया। मुझसे दाम तो लेना नही। झूठ क्यो बताता ?"

पत्नी ने पति की ओर श्रद्धा-मिश्रित प्रेम-नयन फेरे। पति ने पत्नी को प्रसन्नता के उत्कर्षो मे प्रेम-चिन्हो से विह्वल कर दिया। पत्नी ने भी प्रेम-उष्मा से सजग हो पति के प्रेम-चिन्हो का प्रतिदान दिया।

बाबू रूपकिशोर ने पत्नी से परिहास के स्वर मे कहा, "यह कपडो का जाल उतार आओ।"

"सनक तो नही रहे हो ?" हँस कर बाँयी भृकुटी से पति की ओर नयन-निक्षेप कर जान्हवी ने कहा।

पति के आदेश को लेकिन जान्हवी ने टाला नही। प्रफुल्ल मन विहँसती वह कमरे से लगे गुसलखाने के कक्ष मे गयी। कपडे उतार कर, बालो मे यूडो-क्लीन बिखेर, ड्रेसिग गाउन मे वह गुसलखाने से बाहर आयी। पति ने बरसो पहले ड्रेसिग गाउन ला दिया था। रात को जब कभी वह प्रेम की मुद्रा मे होते तो पत्नी का ड्रेसिग गाउन मे ही पलँग पर आना उन्हे पसन्द था। जान्हवी ने

हीरे की अँगूठी की चमक मे ड्रेसिग गाउन पहने अपने को शृगार मेज के शीशे मे देखा था। अपनी छवि देख शीशे मे वह मुस्करा पडी थी। जवानी अब भी फूटी पडती थी, उसके शरीर के सौन्दर्य से। उसे पति का ध्यान आया जो अब पैंतालीस के हो रहे थे। वह किस जवान से कम थे। उनके प्रेम का ढंग, जान्हवी ने सोचा, जैसे-जैसे उमर बढती जा रही है निराला, पर अत्यन्त ही आकर्षक होता जा रहा है। इधर दो वर्षो मे तो प्रेम की कला जैसे पति की फूटी पडती हो। जान्हवी को पति की कही बात का ध्यान आया कि जो जवानी का अनुभव करता है, वह सदा जवान रहता है। वह हमेशा अपने पति को जवान बनाये रखेगी—विवाहित जीवन के आनन्द का आधार यही है। शीशे मे जान्हवी रूप-गर्विता के भाव से सज-धज पलँग कमरे मे आयी थी।

पलँग कमरे मे आ कर उसने दरवाजा वन्द किया। पलँग पर चढने के लिए उसने मसहरी उठायी तो पति बोल उठे, "ऐसे नहीं, पहले ड्रेसिग गाउन को उतार कर फेक दो।"

"क्या कहते हो ? तुम्हे लाज भी नही लगती।"

"अपनी पत्नी से लाज, फेको उसे।" कह कर पति ने स्वय पत्नी का ड्रेसिग गाउन उसके शरीर से उतार कमरे की फर्श पर फेक दिया। पत्नी को खीच कर वक्ष से लगाते हुए बोले, "उस आलमारी से जरा सी दवा ला दो।"

"मै आलमारी तक इस तरह कैसे जाऊँगी ?"—जान्हवी सकोच से गडी जा रही थी।

"ले आओ प्राणेश्वरी, मुझसे शरम कैसी ? कोई गैर तो यहाँ है नही!"

जान्हवी जानती थी कि दवा की शीशी मे दवा की मात्रा कम और सुरा की अधिक है। पिछले तीन सालों मे पति का यह नया शोक था। वह जा कर दवा गिलास मे ढाल लायी। पति ने एक घूँट मे ही गिलास को खाली कर दिया और जान्हवी को मसहरी मे घसीट लिया।

कमरे की बत्ती बुझा कर पति ने पलँग के लैम्प का धीमा प्रकाश जला दिया। फिर प्रेम की विस्मृति की मूर्छा जिसमे खो कर दो शरीर एक प्राण होने की चेष्टा कर रहे थे, एक-दूसरे के अन्दर प्रवेश कर रहे थे, एक गति से, एक

लय से, एक सम, एक ताल—निर्विकार, निस्पन्द। पति-पत्नी का जीवन, सृष्टि के क्रम का अनिर्वचनीय आनन्द ! प्रेम-क्रीड़ा में पति-पत्नी विभोर हो गये। दोनों के शरीर की उष्मा जब आपस में घुल-मिल कर शीतल हो गयी तब बाबू रूप-किशोर ने जान्हवी की मांसल-पिण्डलियों से खेलते हुए कहा, "जान्हवी, तुमने आ कर मेरा जीवन फिर से लहलहा दिया। नहीं तो कब का यह मरुस्थल बन चुका होता।"

"बातें बनाना ही तो पेशा है"—पत्नी ने परिहास किया।

"नहीं जान्हवी, मैं जानता हूँ कि तुम क्या सोच रही हो ? तुम्हारा खयाल है कि तुम मेरी दूसरी पत्नी हो। पहली पत्नी से, जवानी के पहले उफान में ऐसी ही बातें किया करता होऊँगा।" बाबू रूपकिशोर को पहली पत्नी का ध्यान हो आया। वह लज्जा और शील की पुतली थी, उसका साथ उन्हें प्रिय ही था। पर पहली उमर की पहली झाँकी मिटने के बाद चढ़ती उमर में जान्हवी को पाकर बाबू रूपकिशोर को सचमुच वह आनन्द मिला था जिसे उससे पहले वह शायद जानते भी नहीं थे। स्वस्थ, सुडौल, बलिष्ठ थे बाबू रूपकिशोर। अपने समय के प्रसिद्ध खिलाड़ी और तैराक थे। हाकी में अपनी टीम के कप्तान रहते थे। कसरत का भी शौक था। दस जवानों में एक थे। जान्हवी स्वयं पूर्ण रूप से सन्तुष्ट थी। दो हृदयों की सम्पूर्णता के आदान-प्रदान में दोनों खुश थे। बाबू रूपकिशोर का पहला प्रेम यही था। पहली पत्नी से भी प्रेम था। पर तब ज्ञान यौवन-मद से ढका था। उसमें प्रेम की अनुभूति कम थी और परंपरा का निर्वाह अधिक। शारीरिक आकर्षण तब भी था और तीव्र था। पर उस तीव्र आकर्षण की भाषा उन्हें जान्हवी ने आ कर दी।

बाबू रूपकिशोर ने कहा, "जान्हवी, जिस दिन समझ सकोगी कि मुझे पहले-पहल तुम्हीं से प्रेम की अनुभूति मिली, उस दिन तुम शायद मेरी बात की सचाई पर विश्वास करोगी।"

"मुझे इस बात पर तर्क-वितर्क करने की जरूरत नहीं। तुम जैसे भी हो, मेरे परमेश्वर हो, मेरे लिए यही सब कुछ है। इससे अधिक की आकांक्षा नहीं हुई। यही मेरा परम सौभाग्य है।"

थोडी देर बाद जान्हवी ने फिर कहा, "आज शाम को मेरी बात तुम्हे बुरी लगी होगी। पर अपना-पराया सभी देखते है। हमारे तो चार बच्चे है। जेठ जी के तो एक ही लडका है। उसके लिए उन्होंने काफी कमा लिया है। अभी से उन्हे इशारा न किया गया तो उँगली पकड कर पहुचा पकडने वाली मसल न हो।"

"तुम ठीक ही कहती हो जान्हवी, चिन्ता न करो। इस बात को मुझ पर छोड दो और इस समय तो मुझे अपने मे लीन कर लो।"

जान्हवी पति के भाव का आदर कर स्वय उनमे लीन हो गयी। बडी रात तक पति-पत्नी की प्रेम-क्रीडा चलती रही। फिर वे सुखद गहरी नीद मे सो गये।

सवेरे जब नीद खुली तो दरवाजे पर दस्तक की आवाज सुनायी दी। माधुरी कह रही थी, "अम्मा, उठो, करुणा रो रही है।" माधुरी दरवाजा खुलने का इन्तजार न करके नीचे चली गयी। उसके पावो की आहट जान्हवी को सुनायी पड रही थी।

जान्हवी शरम से गड गई। वह उठ कर गुसलखाने मे गयी, मुँह-हाथ धो कर, कपडे बदल, उसने कमरे का दरवाजा खोल दिया। बाबू रूपकिशोर पत्नी की लज्जा के कारण को समझ विनोद से मुस्कराते रहे।

: ३ :

बाबू रूपकिशोर के बड़े भाई बाबू रामकिशोर पेशन लेते समय कलकत्ता के रेलवे आफिस मे तैनात थे। छोटा भाई अच्छा वकील बन गया है। पारिवारिक मकान को नये ढग से आलीशान बना लिया है, एक दूसरा मकान पास ही एक खाली पडी जमीन ले कर बनवा किराये पर उठाया है, और भी मकान है, इन सबसे अवकाश ग्रहण करते समय उन्होंने कभी नहीं सोचा था कि पेशन के बाद उन्हे आवास की समस्या का सामना करना पडेगा। पत्नी ने एकाध बार देवरानी की ओर इशारा कर कहा भी था, "अब पहले-सा जमाना नही रहा। कोई हमें

पति ने कुछ नही कहा । पत्नी सामान-बिस्तर आदि ठीक करने मे लगी ।

पत्नी की सूझ लेकिन सच निकली । शाम को महरिन मिठाई और नमकीन लेकर आयी, बोली, "बहू जी ने जलपान के लिए भेजा है और रात के खाने के लिए पूछा है ।"

सुरेश की माँ ने कहा, "शाम के खाने का प्रबन्ध हो गया है। कष्ट न करे, तू कह देना ।"

बाबू रामकिशोर शाम को चाय पीते थे । पत्नी ने स्टोभ ठीक कराया । सुरेश को बाजार भेज कर उसमे तेल मॅगवाया और चाय तैयार कर पति को पिलाया ।

चाय पीते समय न पत्नी ने ही कुछ कहा, न बाबू रामकिशोर ने । अपनी-सही स्थिति का उन्हे अनुमान हो गया । शाम को ही दाल-रोटी का प्रबन्ध करना पडा, जो हो गया ।

बाबू रूपकिशोर की बडे भाई से मुलाकात दूसरे दिन सबेरे हुई । न जाने क्या सोच कर वे मिलने स्वय आये । भाई-भाभी का पॉव छू कर प्रणाम किया । जमीन पर बिछी चटाई पर बैठकर पूछा, "दद्दा, अच्छे तो रहे । सुरेश के बारे मे अब क्या सोचा है आपने ?"

"तीन साल एफ० ए० मे फेल होते हो गये । अब कलकत्ता से यहाँ का पाठ्यक्रम भी दूसरा है । कही उसकी नौकरी की सोच रहा हूँ । गुजर करने के लिए उसका नौकरी करना जरूरी है ।"—कहकर बडे भाई ने छोटे भाई की ओर शून्य भाव से देखा ।

"अगर वह टाइप सीख ले तो किसी दफ्तर मे लग जायेगा या कचहरी या हाईकोर्ट मे टाइप का काम मिल जायगा । चार-पॉच रुपया रोज टाइप से पा जाना मुश्किल नही ।"

"हॉ, कुछ-न-कुछ करना ही पडेगा ।"—बडे भाई ने उदास स्वर मे कहा ।

भाभी से वकील साहब ने कहा, "भाभी, कोई कष्ट हो तो निस्संकोच कहियेगा ।"

"भइया, तुम लोगो के होते कष्ट क्या होगा ? और फिर तुम से नही

कहूँगी तो कहूँगी किससे ?"—भाभी के स्वर मे खिन्नता तो नही, पर दीनता का अभाव नही था ।

वकील साहव जब चले गये तव वावू रामकिशोर ने पत्नी से कहा, "तुम ठीक कहती थी, सुरेश की माँ ! अव हमारा-इनका रास्ता अलग-अलग है । ये वडे वकील है और मैं एक गरीब अवकाश प्राप्त क्लर्क, जिसकी पेंशन मासिक सत्तर रुपये मात्र है ।"

फिर बाबू रामकिशोर शून्य भाव से पत्नी से दूर देखने लगे । पत्नी ने क्या कहा, उन्होंने सुना ही नही ।

वाबू रामकिशोर सोच रहे थे, जव यह भाव है तो यहाँ रहना उचित नही । उनका रहन-सहन इतना ऊँचा है कि हम उसमे समा नही पायेंगे ? अपनी चारपायी की लम्बाई तक ही पाँव फैलाना बुद्धिमानी है ।

उस दिन से ही उन्होंने मकान ढूँढने की बहुत कोशिश की । लेकिन महीने भर की कोशिश मे भी उन्हे मकान नही मिला ।

एक दिन पत्नी ने कहा, "सुना तुमने, महरिन किराया के लिए कह रही थी, महीने के पच्चीस रुपये पडेंगे ।"

"मकान की कोशिश कर रहा हूँ । मिलते ही चले चलेंगे, किराया भी चाहेंगे तो चुका ही दूँगा ।"

"चाहेंगे मे क्या कोई शक है, महरिन से देवरानी जी ने ही तो कहला भेजा था । कितनी वनी हुई औरत है । उस दिन जब आयी थी तो मेरे बालो मे अपने-आप तेल लगा गयी, प्रेम जताया था । एक महेश की माँ थी । सास से कम कभी मेरा लिहाज नही किया उसने । माधुरी भी अब तक वैसे ही मानती है । महेश तो सुना, देवरानी के व्यवहार से कभी-कभी रो देता है । पर दोनो तो अभी बच्चे है । माँ बाप का जब ऐसा हाल है तो उनका क्या दोष उस दिन केदार से पूछा कि बेटा, आया क्यो नही करते, तो नही कहते-कह भी कह गया कि अम्माँ मना करती है । अब रूपकिशोर पर उनकी स्त्री बोलबाला है । किराया देना पडेगा ।"

बाबू रामकिशोर अतीत के गर्त मे डूबे थे । बी० ए० पास कर रूपकिशोर

दानापुर आये थे । एक धोती और कुर्ता, यही तब वे पहना करते थे । बाबू राम किशोर उन्हे वकालत पढाना चाहते थे । लेकिन रूपकिशोर ने विरोध करते हुए कहा था, "नहीं दद्दा, अब तुम पर भार नही बना रहना चाहता । कोई नौकरी दिलवा दो ।"

बडे भाई ने हठ कर छोटे भाई को वकालत पढने के लिए विवश किया । वकालत की पढाई की शुरआत के लिए दो सौ रुपये चाहिए थे । बाबू राम-किशोर ने उधार-हथफेर ले कर उतना रुपया रूपकिशोर को दिया था और कहा था, "वकील बन जाओ । छोटी-मोटी नौकरी से गुजारा सम्भव नहीं ।"

रूपकिशोर की आँखे सजल हो आयी थी । रुपया ले कर उन्होने कहा था, "दद्दा, जन्म-जन्म तुम्हारा ऋणी रहूँगा । अपना पेट काट कर तुमने मुझे आदमी बनाया ।"

अपनी भाभी की वह माँ से कम इज्जत नही करता था । जब वकील हो गया था, वकालत चल पडी थी, महेश की माँ जिन्दा थी, तब एक महीने की छुट्टी मे वे घर आये थे । घर तब घर था । उनको और सुरेश की माँ को, महेश की माँ ने सारी चिन्ताओ से मुक्त कर रखा था । रात-दिन काम करती थी । वक्त से नाश्ता, चाय, खाना, पीना सब मिल जाता था और काफी अच्छा । रूपकिशोर स्वय पडोसियो-दोस्तो से कहते फूले नही समाते थे कि दद्दा आये है, भाभी आई है । सुरेश तब छोटा था । रूपकिशोर उसे हाथो-हाथ रखते थे । कितने कपडे उन्होने उसके लिए बनवाये थे, कितने खिलौने खरीद कर लाया करते थे । कभी किसी छोटी बात से भी यह आभास नही होता था कि यह उनका घर नही है । कितना आराम मिला था तब उन्हे ।

बाबू रामकिशोर ने सोचा, "लेकिन अब ? अब रूपकिशोर बडे आदमी है, बहुत बडे । उनका उनसे मेल ही कैसे खा सकता है ?"

अतीत से वर्तमान मे आकर पत्नी की ओर देखते हुए उन्होने कहा, "अच्छा भाई, किराया दे देंगे । तब तो तुम्हे शान्ति मिलेगी । जैसे कही और किराया कर रहेगे, वैसे ही यहाँ रहेगे, जब तक मकान नही मिलता ।"

बाबू रामकिशोर मकान ढूँढने की जी जान से कोशिश कर रहे थे। पर उनके मन मे एक मर्मान्तिक पीडा ने घर कर लिया था। साठ से ऊपर की अवस्था हो चुकी थी। इस दिन को देखने के लिए वे जीवित ही क्यो रहे—यही उनका दुख था। कभी-कभी वे यह भी सोचते थे कि रूपकिशोर का इस व्यवहार मे कोई हाथ नही। उनकी पत्नी जान्हवी ही इन सबका कारण है। दूसरी पत्नी का असर पति पर कैसा होता है—यह उन्होने सुना था। लेकिन वह पति ही क्या, जो पत्नी को अपनी पारिवारिक मर्यादा पर न चला सके। बाबू रामकिशोर इसके अतिरिक्त अपने छोटे भाई का अन्य कोई दोप नही समझते थे। मन की पीडा से कातर वे उस मकान मे एक दिन से भी अधिक नही रहना चाहते थे। लेकिन जाये कहाँ—यह सवाल था।

प्रयाग से बीस मील दूर रामनाथपुर के करीब के एक गाँव मे उनके पिता का जन्म हुआ था। पितामह पुरोहित थे। खेती-बारी नही करते थे। यजमानो से दान-दक्षिणा जो मिल जाता, वही उनकी जीविका का आधार था। बाबू रामकिशोर के पिता अपने पिता के एक मात्र सन्तान थे। उनको भी लघु कौमुदी और अमर-कोश पढा कर पुरोहिती वृत्ति की शिक्षा दी गयी थी। पिता के बचपन मे ही बाबू रामकिशोर के पितामह का स्वर्गवास हो गया। जीविका का गाँव मे कोई आधार न देख कर प्रयाग मे नौकरी की तलाश मे उनके पिता आये। एक प्रयाग वाल से परिचय था। उसके द्वारा मुशी श्यामप्रसाद के मन्दिर मे वह पुजारी वन गये। काल-क्रम से मुशी जी की सहायता से समाज के एक निर्धन आदमी की कन्या से उन्होने विवाह कर लिया। फिर कुछ धन कमा कर सोबतियाबाग के उजाड मे—तब ऐसा ही था सोबतियाबाग, आज जैसा नही था—उन्होने एक मकान बना लिया। मकान जिस साल बन कर तैयार हुआ, उसी साल वडे पुत्र रामकिशोर को रेलवे आफिस मे नौकरी मिली और उसी साल पिता ने उनका विवाह भी कर दिया। उस समय रूपकिशोर तीन साल के थे। साल भर के भीतर ही पिता का स्वर्गवास हुआ और इसके दूसरे साल माँ भी चल बसी। पाँच-छ. साल के छोटे रूपकिशोर को पालने-पोसने का भार उनकी किशोर पत्नी पर पडा। अपने पुत्र की तरह पति के छोटे भाई—निहायत छोटे

भाई को, उनकी पत्नी ने पाल-पोस कर आदमी बनाया। आज वही रूपकिशोर बडे हो कर अपना ससार भरा-पूरा कर चुके है।

बाबू रामकिशोर सोच रहे थे कि ठीक ही है। उनका परिवार भरा-पूरा है। उसकी भी चिन्ता तो उन्हे करनी ही है। एक ही से तो अनेक होता है। हम दो भाई अकेले थे, तब और बात थी। अब तो सुरेश है, छोटे भाई के चार बच्चे है। अगर अब वह पहले वाली बात नही रही, तो आश्चर्य ही क्या ?

बाबू रामकिशोर मकान की तलाश मे दौडते-दौडते बीमार पड गये, लेकिन कही कोई मकान मिला नही। बीमार वे अधिक नही हुए। दौड-धूप और चिन्ता से थकावट और हरारत आ गयी। पत्नी से उन्होने कहा, "जरा काढा बना दो, हरारत मिट जायेगी।"

कई दिन बाबू रामकिशोर अस्वस्थ रहे। अडोस-पडोस के कई लोग मिजाज-पुर्सी के लिए आये। पर न बाबू रूपकिशोर ही आये, न उनके घर से ही कोई आया।

पत्नी ने सहमे-सहमे कहा, "मै कोई बात कह कर दु खी नही करना चाहती। क्या अब भी कुछ शक-शुबहा है ?"

"नही सुरेश की माँ, तुम हमेशा ठीक कहती हो। मेरा ही मन माया-मोह मे जकड जाता है। अब यहाँ से चले-चलने मे ही भला है।"

"तीन महीने का किराया वाजिब हो गया।"

"हाँ"—कह कर बाबू रामकिशोर चुप हो गये।

दूसरे दिन जब बुखार उतर गया, वे डाकघर गये। दो सौ रुपया निकाल लाये। सोचा था बाबू रामकिशोर ने, कि जो कुछ जमा-पूजी है, उसे सुरक्षित रखूँगा। किसी गाढे समय मे काम आयेगा। पर जो सिर पर था, उससे गाढा वक़्त और दूसरा क्या आ सकता था ?

पचहत्तर रुपया अपनी जेब मे रख कर बाकी पत्नी को घर के खर्च के लिए उन्होने दे दिया।

रुपया जेब मे लिये छोटे भाई के मकान पर पहुँचे। वकील साहब थे नही। महेश भी कही बाहर गया था। माधुरी अभी-अभी कालेज से आयी थी। केदार

और करुणा खेल रहे थे। ताऊ जी की आवाज सुन कर तीनो बच्चे भाग आये। करुणा को ताऊ जी ने गोद मे ले लिया। बच्ची का हाथ अकारण ही ताऊ जी की जेब मे चला गया। रुपये निकल आये। वह उससे खेलने लगी। केदार से नोटो को दिखा कर बोली, "ताऊ जी मेरे लिए लाये है।"

"हाँ बेटा, तुम्हारे लिए लाया हूँ। पर अकेले नही, तीनो को बराबर-बराबर दूँगा।"

"नही ताऊजी, जीजी को नही दीजियेगा। उनके पास ढेर से पैसे है। हमे नही देती है।"

माधुरी करुणा की शिकायत सुन हँस पडी। ताऊ जी ने लेकिन कहा, "नही, बेटा, तेरी बडी जीजी है। उसको भी देगे।"

"वह अपना फाउटेनपेन मुझे खेलने को नही देती है, ताऊजी!"

"अब देगी बेटा, अब देगी"—कह कर ताऊजी ने पच्चीस-पच्चीस रुपया तीनो को दिया। केदार और करुणा तो रुपये पा कर खुशी से भर उठे। लेकिन माधुरी ने रुपयो को ताऊ जी की जेब मे रख दिया।

"क्यो बेटा?"

"नही ताऊ जी, मुझे रुपये नही चाहिए। जब जरूरत होगी तो माँग लूँगी।"

माधुरी को बचपन की स्मृति हरी हो आयी। ताऊ जी जब कभी आते, कुछ-न-कुछ लेकर आते। वह छोटी थी। उसके हाथ मे दे कर कहते—महेश को भी देना। केला, सतरा, अगूर, तरह-तरह की मिठाई, ताऊ जी कितनी बार माधुरी के लिए लाये होगे। ताऊ जी उसे पिता जी से भी अधिक प्यार करते थे और वही ताऊ जी पडोस मे घर मे ही अभी बीमार पडे थे और माधुरी लाख चाह कर भी उन्हे देखने नही जा सकी। माँ ने न जाने क्या सोच कर जाने से मना कर दिया।

माधुरी अब सयानी थी। ताऊ जी की दशा उससे छिपी नही थी। किस तरह उनका गुजर-बसर हो रहा है, क्या खाते है, क्या पहनते है—वह सब जानती थी।

माधुरी का दिल भर आया। ताऊ जी इतने रुपये क्यों दे रहे हैं, वह समझ न सकी। कारण कोई है जरूर, यह उसके मन ने कहा। वह रुपये नहीं लेगी। इसीलिये बिना कुछ कहे-सुने उसने अपने हिस्से का रुपया ताऊजी की जेब में रख दिया था। लेकिन ताऊ जी ने कहा, "नहीं बेटा माधुरी, खुशी से दे रहा हूँ।"—उन्होंने जेब से रुपये निकाल कर फिर माधुरी को देना चाहा।

माधुरी क्रोध के भाव से वहाँ से चली गयी। तब केदार को उन्होंने वह रुपये दिये और कहा, "अपनी माँ को दे देना" और चले गये।

माधुरी के लिए उस दिन ताऊ जी की आँखों में आँसू भर आये। छोटी सी माधुरी में कितनी सहानुभूति और करुणा थी। उन्हें माधुरी के वे दिन याद आये, जब वह नन्हीं मुन्नी थी। उन्हीं के पास सोया करती थी। आधी रात को कभी उसकी माँ उठा कर लातीं और सुरेश की माँ से कहती—"जीजी, तुम्हारी लाड़ली जेठ जी के लिए रो रही है। उनके पास कर दो।" पत्नी कहतीं, "यह जेठ जी को अभी से कन्यादान के लिए तैयार कर रही है। तभी इतनी माया-ममता जोड़ रही है।" हँस कर, जेठानी की गोद में माधुरी को दे, माँ चली जातीं। पत्नी माधुरी को उनकी चारपायी पर लिटा जातीं। माधुरी तब ताऊ जी की गोद में लिपटी सुख की नींद सोती।

उन्हें याद आया, माधुरी ने एक बार मोटर में चढ़ने की ज़िद की। कहा उसने, "ताऊ जी, मेरे लिए हवागाड़ी ला दो।"

"ला दूँगा बेटा, अगली बार जब आऊँगा तो जरूर लाऊँगा।"

गाड़ी पर चढ़ने की उसकी ज़िद मगर प्रबल थी। जब किसी भी तरह वह मानी नहीं, तब उसे बस में फाफामऊ तक घुमा लाये। माधुरी की माँ ने जेठानी से प्रेम भरा उलाहना दिया था, "जेठ जी के दुलार ने माधुरी को ज़िद्दी बना दिया है।"

वही माधुरी, आज गुम-सुम बनी जा रही थी। क्या माधुरी अपने घर के वातावरण में सुखी नहीं? बाबू रामकिशोर सोचते रहे कि कितना शील और कितनी ममता है माधुरी के स्वभाव में।

घर पर पत्नी ने पूछा, "छोटे भाई के यहाँ हो आये? बड़े प्रसन्न नज़र आते हो। कुछ फल-मेवा मिला होगा नाश्ते में।"

रामकिशोर बाबू ने कोई उत्तर नहीं दिया। पर वे प्रसन्न थे। मन से किराये के भार की चिन्ता उतर चुकी थी।

कालेज की छुट्टी थी; उस दिन माधुरी ने सहमे-सहमे माँ से पूछा, "ताई जी के पास तक हो आऊँ ?"

"क्या दे देंगी ताई जी, जो वहाँ जाने को मचलती रहती है ?"

"माँ, हो आने दो। उस दिन ताऊ जी आये थे जिस दिन ढेर-के-ढेर रुपये दे गये थे।"

"दे नहीं गये राजलक्ष्मी, तेरे पिता के मुँह पर जूता मार गये। तू अभी इन बातों को समझती नहीं। लेकिन मैं रोकती नहीं। जाने का मन हो तो चली जाओ।"

"मैं नहीं जाऊँगी"—गम्भीर भाव से कह कर माधुरी अपने कमरे में चली गयी।

मगर माधुरी के बदले करुणा ताई जी के यहाँ पहुँची। ताई जी बीमार थीं। ताऊ जी दाल चढ़ा कर रसोई पका रहे थे। आटा गूँध कर गोल-गोल छोटी-छोटी बाटी बना कर दाल में डालते जाते थे।

"आओ करुणा बेटा, आओ"—ताऊ जी ने कहा।

"ताऊ जी क्या बना रहे हैं ?"—करुणा ने प्रेम-पुलक से पूछा। ताऊ जी को रसोई बनाते देख वह पुलकित थी।

"तुम्हारे लिए दाल-वाटी बना रहा हूँ। तुम अच्छे वक़्त पर आयी।"

सब बाटी दाल में छोड़ कर ताऊ जी रसोई से बाहर आ करुणा के सँग खेलने लगे। सुरेश जब थोड़ी देर बाद कहीं से आ गया तो ताऊ जी ने उससे कहा, "कम्बल बिछा दो और तुम और करुणा दोनों बैठ जाओ, खाने के लिए।"

करुणा को दाल-वाटी अच्छी लगी। पर छोटी बच्ची एक भी नहीं खा सकी। हाथ-मुँह धो कर घर भाग गई। ताऊ जी उसे पुकारते ही रह गये।

घर पर माँ से उसने बड़े उत्साह से कहा, "ताऊ जी ने दाल-वाटी पकायी थी। मुझे भी खिलाया। बड़ी अच्छी थी दाल-बाटी। माँ, तुम तो कभी दाल-बाटी बनवाती ही नहीं।"

माँ ने कुछ गम्भीरता से पूछा, "जेठ जी ने खाना पकाया था ?"

"हाँ, ताई जी बुखार मे पडी है। दाल और उसी मे गोल-गोल छोटी-छोटी बाटियाँ ताऊ जी ने अपने हाथ से पकायी।"

"सब्जी-भर्ता और कुछ नही था ?"—माँ ने पूछा।

"नही माँ। पर दाल-बाटी बडी अच्छी थी।"

"क्या खाना है। कजूसी की हद कर दी।"—जान्हवी के मुँह से निकल गया।

माधुरी सुन रही थी। न चाह कर भी वह बोल उठी, "माँ वे गरीब है, हम लोगो की तरह अमीर तो नही।"

माँ गुस्से से भर गयी। क्रोध की लालिमा कपोलो पर आ छाई। बिना कुछ बोले ऊपर चली गयी।

माधुरी अपने कमरे मे दु ख से भरी यह सोचने लगी कि हम लोगो के रहते ताऊ जी को खाना बनाना पड रहा है, वह भी इस उमर मे।

उस शाम जान्हवी ने पति से कहा, "तुम कानो मे तेल डाले पडे हो। उधर जेठ जी हम लोगो की नाक कटा कर रहेगे।"

"क्यो कोई नई बात हुई है क्या ? किराया तो तुम्हे मिल ही गया है। अब उनको निकाला भी कैसे जाय ?"

"महल्ले मे इसलिए रहते है कि वकील साहब की थू-थू बोले। आज करुणा गयी थी। जेठ जी स्वय दाल-बाटी बना रहे थे। जेठानी बीमारी का बहाना बना लेटी थी। सारे मुहल्ले को यह मालूम होगा तो तुम्हारी खूब इज्जत बढेगी। कुछ-न-कुछ करो। यह रोज-रोज का बिहाग अब मुझे सुहाता नही।"

बाबू रूपकिशोर ने पत्नी की बात पर ध्यान दिया। रात को वह पडोस के वैद्य जी से मिले। दूसरे दिन सवेरे ही वैद्य जी बाबू रामकिशोर के यहाँ पहुँचे। बाबू रामकिशोर ने उठ कर स्वागत करते हुए कहा, "आइये वैद्य जी, बडी कृपा की। कहिए परिवार वर्ग कुशलपूर्वक तो है।"

"हाँ रामकिशोर बाबू, आपकी दया है। कहिए कोई मकान ठीक हुआ या नही ?"—वैद्य जी ने साफ-साफ कहना उचित समझा।

"अभी तो नही।"—बाबू रामकुमार ने उदास हो कर कहा।

"वकील साहब शायद किसी को पहले से ही यह हिस्सा दे चुके है। वे लोग

आने की उतावली मचा रहे है। कल वकील साहब कह रहे थे कि उनकी बात झूठी जायगी।"

"नही वैद्य जी, उनकी बात झूठी नही जायगी। मै आज ही शाम तक यह मकान खाली कर दूँगा।"

"नही, ऐसी कोई जल्दी नही है।"—वैद्य जी को सकोच और शील ने घेर लिया।

उसी दिन शाम को बीमार पत्नी को ले और सुरेश के विरोध की परवाह न कर बाबू रामकिशोर अपना सामान-बिस्तर, डेरा-डडा दारागज की धर्मशाला मे उठा ले गये।

उनके चले जाने पर उनका जाना सबको मालूम हुआ। जान्हवी को भी जेठ जी के दु ख का एहसास हुआ और इस तरह उनका जाना अच्छा नही लगा।

वकील साहब जब आये तब उन्होने पत्नी को एक लिफाफा दिया। उन्होने कहा, "भैया का है। मेरे नाम है पर है तुम्हारे लिए।" लिफाफे मे पचीस रुपये थे, पूरे न हुए चौथे महीने का किराया। उसमे और कुछ नही था।

: ४ :

सुबह आठ बजे जब बाबू रूपकिशोर नीचे दफ्तर मे आये, तब सदर फाटक मे अन्दर आते हुए उनके ससुर जी मिल गये। बाहर दालान मे लाला घासीराम खडे थे।

ससुर ने बाबू रूपकिशोर से कहा, "लाला घासीराम माने नही, पकड लाये है। बेटा, जो कुछ भी हो सके, इनके लिए करो। ये हमारे पुराने मिलने वाले है।"—इतना कह कर और किसी उत्तर की बिना प्रतीक्षा किये वे अन्दर चले गये।

लाला घासीराम के लडके जगमोहन को कत्ल और बलात्कार के अपराध मे पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया था। कटरे मे तीन महीने पहले एक कालेज मे पढने वाली लडकी, जिसका नाम सुखजीत था, का बलात्कार के साथ कत्ल

हो गया था। सुखजीत कटरे के लडकियो के स्कूल मे बारहवे दर्जे मे पढती थी। एक दिन प्रयाग स्टेशन के नीचे, रेलवे-लाइन से लगभग आध मील पर गगा की कछार मे उसकी लाश पायी गयी। सुखजीत के पिता की कटरे मे परचून की दूकान थी। सम्भ्रान्त परिवार की कालेज मे पढने वाली लडकी के कत्ल से शहर मे वडी सनसनी फैली। पुलिस ने वडी सरगर्मी दिखायी। लेकिन तत्काल कोई नतीजा नही निकला। फिर जब प्राय लोग घटना को भूल रहे थे, पुलिस ने एक दिन लाला घासीराम के घर पहुँच कर उनके पुत्र जगमोहन को गिरफ्तार कर लिया।

लाला घासीराम नगर के कपडे के मशहूर थोक व्यापारी थे। लाखो का कार-बार था। पुत्र के जीवन और अपनी प्रतिष्ठा को बचाने के लिए उन्होने एडी-चोटी का जोर लगाया। शहर के कोतवाल से मिले, पुलिस के अधीक्षक से मिले, जिला के मैजिस्ट्रेट से मिले। लेकिन पुलिस ने जमानत पर जगमोहन को छोडने से साफ इनकार कर दिया। शनिवार को गिरफ्तारी हुई थी। सोमवार को वह मैजिस्ट्रेट की अदालत मे पेश किया जाने वाला था।

लाला घासीराम की जब कोई कोशिश कारगर नही हुई तब वे जान्हवी के पिता के पास पहुँचे। उनका पॉव पकड कर उनसे वोले, "कुल की प्रतिष्ठा अब आप ही के हाथ मे है। पुलिस ने न मालूम किस दुश्मनी से लडके को निरपराध पकड लिया है। आप चल कर बाबू रूपकिशोर से कह दीजिये। लडके को वह जमानत पर फौरन छुडा ले।"

वकील साहव के ससुर तब लाला घासीराम को ले कर दामाद के घर आये थे।

दफ्तर मे जब वकील साहब अपनी कुर्सी पर बैठे, तब लाला घासीराम ने कच्छ की बनी गोल काली टोपी को अपने सिर से उतार कर वकील साहब के चरणो पर रख दिया और कहा, "वकील साहब, खानदान की इज्जत और लडके का जीवन अब आप ही के हाथ मे है। हमे बचाइये।"—लाला घासीराम ने सुन रखा था कि बाबू रूपकिशोर किसी भी मुकदमे को बिना पूरी तरह छान-वीन किये स्वीकार नहीं करते थे।

"लेकिन यह मालूम करना जरूरी है कि जगहमोहन के खिलाफ पुलिस के पास प्रमाण क्या है?"

"यह तो मैं जानता नहीं।"—लाला ने अनुनय के भाव से कहा।

"बिना जाने मैं क्या कह सकता हूँ ? मैं तो जब तक यह जानकारी न प्राप्त हो जाय, इस मुकदमे को ले भी सकूँ, इसमें भी सन्देह है।"

"वकील साहब ऐसा न कहिए। मुकदमा आपको लेना ही पड़ेगा। आपके ससुर मेरे मित्र हैं। आपके घर का ही मुकदमा है। सारा खानदान डूब जायगा, अगर हमारे लाल को कुछ हो गया"—लाला घासीराम ने हाथ जोड़ लिया।

वकील साहब बोले, "जमानत के वकालतनामा पर मैं अपना हस्ताक्षर परसों ही कर सकूँगा। आज मैं जानकारी की कोशिश करूँगा। आप मुंशी जी से मिल लें। फिर आप परसों सुबह मुझसे मिलें।"

लाला घासीराम को आशा थी कि बाबू रूपकिशोर जैसे प्रख्यात वकील जग-मोहन को आज ही जेल जाने से बचा सकेंगे। जगमोहन का जेल चला जाना, वह भी बलात्कार और कत्ल के जुर्म में परिवार के समूल नाश का कारण बनेगा। पर लाला घासीराम बाबू रूपकिशोर के चेहरे की तनी नसों को देख और कुछ कहने का साहस न कर सके। वे दफ्तर से बाहर दालान के छोटे कमरे में मुंशी जी के पास चले गये।

मुंशी जी ने वकील साहब और लाला घासीराम की बात-चीत सुन ली थी। अपनी नाक पर सुशोभित चश्मे को सँभालते हुए उन्होंने कहा, "जानकारी प्राप्त करने में पाँच सौ रुपये खर्च होंगे। पाँच सौ वकील साहब का इसके लिए मेहनताना। मेरे लिए आप जो दे दें। आप रईसों की कृपा पर ही पला हूँ।"

"मुंशी जी, खर्च की परवाह न करें। वकील साहब को एक बार पूरी तरह तैयार करा दें।"—लाला घासीराम मुंशी जी की फीस की बात से आश्वस्त हुए। जितना गुड़ दो, अनरसा उतना ही मीठा होता है और पैसा तो हाथ का मैल है। ऐसे आड़े वक्तों के ही लिए तो धन कमाया जाता है।

मुंशी जी ने फिर कहा, "लेकिन आप यह समझ लें कि यह फीस केवल जानकारी और परामर्श प्राप्त करने के लिए है। जमानत की दरख्वास्त और बहस की दुगुनी फीस अलग होगी। उसकी बातचीत सोमवार को होगी, अगर वकील साहब ने मुकदमा लेना स्वीकार किया।"

"मुशी जी ऐसा कह कर मुझे निराश न करे। यह रही जानकारी और परामर्श की फीस"—हजार की गड्डी लाला ने मुशी जी के हवाले की।

मुशी जी वकील साहब को पूरे रुपये दे रसीद ले आये।

लाला घासीराम ने मुशी जी से पूछा, "आपके लिए ?"

"लाला जी, आप ही रईसो से पलता हूँ। मै आपसे क्या कह सकता हूँ ?" लाला जी पचास रुपया देना चाहते थे। पर पहला नोट जो मनीवैग से निकला वह सौ का नम्बरी था। वही मुशी जी को उन्होने भेट कर दिया।

बाबू रूपकिशोर दस बजे के लगभग ही सरकारी वकील के यहाँ पहुँचे। श्री सिह सरकारी वकील थे। बाबू रूपकिशोर को देखते ही बोले, "सुना जगमोहन वाला मामला तुम्हारे हाथो मे आया है ?"

"हाँ, उसी सम्वन्ध मे आया हूँ। ससुर जी जगमोहन के पिता को ले कर आज ही सुवह आये थे। मगर यह भी तो मालूम नही कि जगमोहन के खिलाफ सबूत क्या है ? अभी मैने मुकदमा लिया नही ?"

"न लो, तभी अच्छा है। मामला सगीन है। सबूत अकाट्य है। सिविल सर्जन की रिपोर्ट मे मौत का कारण वलात्कार और फिर चलती मोटर से फेक दिये जाने पर चोट के कारण हृदय की गति का अचानक बन्द हो जाना वताया गया है। गाडी जगमोहन की थी—इसका प्रमाण है। जगमोहन और सुखजीत का पहले से परिचय था। वह रगीन तबियत का धनी व्यक्ति है। गाडी मे तीन व्यक्ति थे, जब घटना घटी। लगातार दो पुरुपो द्वारा बलात्कार का डाक्टरी मुआयना मे उल्लेख है।"—श्री सिह ने हँसते हुए कहा और पान का डव्वा बाबू रूपकिशोर की ओर वढाया।

"गाडी मे किसी ने जगमोहन को देखा या नही ? यह बहुत जरूरी बात है।"—पान की गिलौरियो को मुँह मे दबाते हुए वावू रूपकिशोर ने पूछा।

"तफतीश की डायरी मैने पढी नही। कल मैजिस्ट्रेट के सामने पेश होगी, अगर जमानत की दरख्वास्त पडी।"

"वह तो पडेगी ही।"

"क्या तुम पेश कर रहे हो ?"

"मैं नहीं तो कोई दूसरा पेश करेगा।"

"मामला बेहद संगीन है। फाँसी से कम की सज़ा की पुलिस को आशा नहीं।"

"आशाएँ घोड़ी तो हैं नहीं कि कोई भी उन पर सवारी करे।"

श्री सिंह के यहाँ से पुलिस अधीक्षक के यहाँ पहुँचे बाबू रूपकिशोर।

अधीक्षक ने सौजन्य से उनका स्वागत करते हुए कहा, "कहिए वकील साहब, लाला घासीराम के लड़के का मुकदमा सुना आपने लिया है। कल जमानत की दरख्वास्त पेश हो रही है।"

"अभी लिया तो नहीं है। लाला घासीराम आये थे। कल फिर उन्हें बुलाया है।"

नौजवान पुलिस कप्तान हँस कर बोला, "अकाट्य प्रमाण हैं वकील साहब, साहबजादे के खिलाफ। उन्हीं की कार से सुखजीत को फेंका गया।"

"पर साहबजादे को भी किसी ने उस समय कार में देखा या नहीं ?"

"सारे प्रमाण हैं वकील साहब। साहबजादे को चाँदी का मद था। शहर भर को अपनी रिआया समझते थे। अब लेने के देने पड़े हैं।"

"किसने साहबजादे को उस समय कार में देखा ?"—वकील साहब ने सीधा सवाल किया।

"समय पर सब मालूम हो जायगा। मेरी तो राय है कि इस मुकदमे में आप जैसे योग्य और अनुभवी वकील की प्रतिष्ठा का प्रश्न उठ खड़ा होगा।"

"आपकी नेक सलाह के लिए धन्यवाद। हमारा यही पेशा है। अपने-अपने ढंग के उचित-अनुचित देख कर ही हम मुकदमा लेते हैं।"

वह जेल जा कर जगमोहन से मिलना भी चाहते थे। पर अभी तक मुकदमा उन्होंने स्वीकार नहीं किया था। अतः कल पर ही उससे मुलाकात को मुल्तवी करने का उन्होंने निश्चय किया।

घर पहुँचे तो पत्नी ने बताया कि लाला घासीराम की स्त्री और बहू आई थीं। तुम नहीं थे। वे कुछ देर बैठ कर चली गयीं। शाम को फिर आने को कह गयीं हैं। पत्नी ने यह भी कहा, "दोनों बहुत रोती थीं। माँ कह रही थी कि मेरे बेटे को झूठे फँसाया है। वह उसे छुड़ाने के लिए बार-बार कह रही थीं। उन्होंने सुना,

खाना-पीना छोड दिया है। कहती थी कि जब तक जगमोहन घर न आ जाय तब तक दाना-पानी नही छुयेगी।"

वकील साहब ने हाथ-मुँह धो कर खाना खाया। हुक्के का कश लेते हुए वह लेट गये।

जान्हवी आकर पलँग के पास पडी एक आरामकुर्सी पर बैठ गयी और बोली, "क्या दुनिया है। चाँद-सी खूबसूरत बहू है जगमोहन की। शादी को दो-तीन साल ही हुए और वह ऐसे कुकृत्यो मे लगा है। क्या मिलता है पुरुषो को इस तरह के कुकृत्य मे ? फिर वे विवाह ही क्यो करते है ? साक्षात स्वर्ण-कमल-सी है उसकी स्त्री। अभी मुश्किल से बीस-बाईस की होगी। अप्सरा-सी लगती है। रोते-रोते बिचारी की आँखे सूज गयी थी। एक जगमोहन का कृत्य देखो और एक उसकी स्त्री को।"

बाबू रूपकिशोर पत्नी की उक्ति पर मन-ही-मन चौक उठे। जान्हवी की ओर उन्होने ध्यान से देखा। फिर सोचा—जान्हवी की बात विचारणीय है। वास्तव मे पत्नी के होते हुए अधिकाश पति अपने शरीर और मन की भूख बाहर क्यो मिटाते है या मिटाने की कोशिश करते है ?

सहसा उन्हे अपना ध्यान हो आया। काँप गये वह सोच कर कि उनका भी जीवन इसका अपवाद कहाँ ? फिर आश्वस्त हो, वे हँस पडे। उनका कारण कुछ और था। जान्हवी उनकी पत्नी थी। उनको पत्नी से वास्तविक प्रेम ही था। बिल्वमाला यथार्थ रूप मे एक खेल थी—चाँदी के लिए। पर सवाल तो यह था कि क्या उनका आचरण उचित था और क्यो ऐसा आचरण सम्भव होता है ? बिल्वमाला की आरती, उसका प्रेम-परिणय, नयनो के सामने छा गया। कितना रूप था बिल्वमाला के शरीर मे, कितनी सुगठित उसके अग-अग की बनावट थी और कितना उसमे आकर्षण था। पत्नी की ओर उन्होने पुन देखा। सौन्दर्य की उसमे कमी नही, यौवन की कमी नही। लेकिन रानी बिल्वमाला मे जो परिष्कार था, वह जान्हवी मे कहाँ ? उन्हे बीरा दासी का भी ध्यान आया। अज्ञात से ज्ञात मे वह प्रवेश कर रही थी, जवानी बचपन के अल्हडपन से उसके शरीर मे अठखेलियाँ कर रही थी। सक्रान्ति की उसके शरीर की मादकता अपूर्व थी। वह कली उनकी प्रतीक्षा

कर रही थी, फूल बनने के लिए। बिल्वमाला ने कहा था कि ये दासियाँ राजपरिवारों द्वारा पति की आजीवन सेवा के लिए दान में दी जाती हैं, जैसे वे कोई चीज़ वस्तु की उपहार हो, मानव तनधारी न हों। फिर राजा लोग कई-कई रानियाँ रखते हैं, दासियों, परिचारिकाओं की संख्या अलग। यह सब पृथ्वी पर राजाओं द्वारा, धर्मधुरंधरों द्वारा, स्वर्ग को खींच लाने की बातें थी। मन-ही-मन बाबू रूपकिशोर इस कल्पना से हँस कर विस्मित हुए बिना नहीं रहे।

हुक्के की कश लेते हुए उन्होंने फिर सोचा कि यह सब क्या पुरुष-प्रकृति के लिए लज्जास्पद नहीं? ऐसा आचरण अगर विशुद्ध कामुकता-ऐयाशी-का न माना जाय तो और क्या था? स्वर्ग की कल्पना, हर धर्म में इसी प्रकार की थी। इन्द्रपुरी की अप्सराएँ सुप्रसिद्ध थीं, जन्नत की हूरें मशहूर थीं। लेकिन अगर यह स्वर्ग है तो नरक क्या है, वे सोचते रहे।

प्रश्न के बौद्धिक कारणों का विवेचन बाबू रूपकिशोर मन ही मन करना चाह रहे थे कि जान्हवी ने कहा, "जगमोहन का आचरण बुरा हो या भला, इस समय तो उसकी बहू का दुःख देखा नहीं जाता। तुम ऐसा करना कि कल उसकी जमानत हो जाय।"

"मैं भरसक कोशिश करूँगा जान्हवी! पर जगमोहन का सुखजीत के काण्ड में कितना हाथ है, इसका अभी पता नहीं चल पाया है।"

जान्हवी बोली, "वह लड़की भी खूब थी। इतनी सयानी थी और अपना भला-बुरा नहीं समझती थी।"

"उसका दोष नहीं, जान्हवी! हमारा समाज सड़ा है। किसी के भी घर की लड़की के साथ ऐसा सम्भव हो सकता है।"—उन्हें एकाएक माधुरी का ध्यान हो आया। सुखजीत की अवस्था माधुरी के लगभग ही थी। ऐसी घटना माधुरी के साथ हो जाय तो? ऐसी घटना न हो उसकी सम्भावना कम थी, हो जाय उसकी सम्भावना अधिक थी। माधुरी में शील, लज्जा, विवेक, चरित्र की दृढ़ता, सब गुण हैं, लेकिन इस उमर को आयी और उसका कोई युवक मित्र नहीं। अगर अचानक कहीं किसी से उसकी मित्रता हो जाय तो क्या कर बैठे, इसको क्या कहा जा सकता था? कभी उन्होंने पढ़ा था कि हमारे समाज की वर्तमान खिचड़ी संस्कृति

मे यौन सम्बन्धी ज्ञान की शिक्षा लडके-लडकियो के लिए बहुत जरूरी है। पर न पाठ्यक्रम मे, न घर पर, युवक-युवतियो को इस विपय की कोई शिक्षा मिलती है। इस विपय की तो चर्चा मात्र को अश्लील माना जाता है। एक लेख के मुकदमे का उन्हे ध्यान आया। उसमे लेखक पर अश्लीलता का दोपारोपण लगाया गया था। उस लेख मे युवक-युवती के प्रेम सम्बन्धी शारीरिक आकर्षण और अगो तथा जननेन्द्रियो के मिलने के विवरण के अतिरिक्त और कुछ नही था। प्रेम का, परिणय का, चित्र यथार्थ था। उसे पढ कर युवक-युवतियो को प्रेम का, यौन सम्वन्धी शारीरिक आकर्पणो का, ज्ञान मिलता। लेकिन उसे अश्लील माना गया था। यह हमारे समाज और शिक्षा की कुठित वृत्ति है—उन्होने सोचा। कालिदास जैसे महान कलाकार ने यौन प्रसगो का साक्षात् चित्र खीचा है। पर यहाँ प्रेम-चुम्वन को भी अश्लील माना जाता है, मानो प्रेम मे, स्त्री-पुरुष के प्रणय-व्यवहार मे, चुम्बन, आलिगन आदि होता ही नही। हर पति-पत्नी के सुखी दाम्पत्य जीवन का आकर्षण यही है, प्रेम के शारीरिक आकर्षण को पहचानने के तरीके यही है। फिर भी इस विषय की समुचित शिक्षा का पाठ्यक्रम मे विधान नही। कितना भारी खतरा इस महत्व-पूर्ण मूल विषय की उपेक्षा कर समाज ने मोल लिया है—बाबू रूपकिशोर सोचते रहे।

"क्या सोच रहे हो?"—जान्हवी ने पति के गम्भीर भाव को देख कर पूछा।

"जगमोहन के बारे मे तुम जो कह रही थी, उसी पर सोच रहा था। उसकी माँ-बहू कितने बजे आने को कह गयी है?"

"आती ही होगी। मैने कह दिया था कि दोपहर ढले आ जाना।"

नीचे से माधुरी ने आवाज दी, "माँ, सेठ जी के घर से आयी है।"

"दफ्तर मे बैठाओ। तुम्हारे बाबू जी जाते है।"—जान्हवी ने कहा।

वकील साहब जब ऊपर से नीचे दफ्तर मे पहुँचे तो सेठ घासीराम की धर्म-पत्नी दहाडे मार कर रोने लगी, "वकील साहब, मेरे लाल को बचाइए। वह निर्दोप है। उसे किसी ने झूठे ही फँसाया है। यह देखिये लाखो मे एक मेरी बहू, भला इसको छोड कर वह जूठन चाटेगा!"

वकील साहब की नजर बहू पर गयी। गोरा-चिट्टा रग, कमनीय काति,

घूँघट के अन्दर चाँद की-सी आभा, आँखे वरसात के सरोवर सी लबालब, गुडिया-सी चुपचाप अपने को समेटे दु ख से स्याह पड गयी थी।

उसके दु ख का अनुमान कर वकील साहब ने कहा, "सेठानी जी, मै हर कोशिश करूँगा । आप दोनो से कुछ जरूरी बाते पूछनी हे ।"

वकील साहब सास-बहू से अलग-अलग बात करना चाहते थे । इसे उचित न समझ उन्होने कहा, "सेठानी जी, मै जो पूछूँ, उसे सच-सच बताइयेगा। वकील का काम होमियोपैथिक डाक्टर की तरह मरीज का पिछला इतिहास जानना होता है। सब कुछ सच-सच जान कर ही रोग का सही निदान बताया जा सकता है।"

"सच ही कहूँगी, वकील साहब, "—सेठानी ने कहा ।

"पहली बात तो मै यह जानना चाहता हूँ कि क्या यह लडकी सुखजीत कभी भी आपके घर आई थी ?"

"नही , वकील साहब, एकदम झूठी बात है। हमारा जगमोहन ऐसा नही जो ऐसी लडकियो से जान-पहचान करे ।"

वकील साहब को इसी उत्तर की आशा थी। दूसरा प्रश्न उन्होने पूछा, "जग-मोहन की दिनचर्या बताइये—रोज का साधारण नियम। समय वह कैसे बिताता है ?"

"सुबह नहा-धो कर, हनुमान चालीसा का पाठ कर, दूध पी कर, वह नौ बजे तक दुकान पहुँच जाता था। दोपहर को खाने घर आता था। फिर पाँच बजे दुकान चला जाता था। नौ-दस बजे रात को दुकान बन्द कर फिर घर आ कर खा-पी कर सो जाता था ।"

वकील साहब ने सच ही समझा कि जगमोहन की माँ से कुछ भी लाभदायक बात नही जानी जा सकती। मगर उन्होने फिर पूछा, "उसकी कोई विशेष रुचि-दिलचस्पी—आप जानती हो तो बताये ।"

"विशेष रुचि उसकी हनुमान जी की अटूट भक्ति है। बिला नागा हर मगल को वह महावीर जी का दर्शन करने बाँध जाता है ।"

वकील साहब बडी मुश्किल से अपनी हँसी दवा पाये । जगमोहन की पत्नी की तरफ देख कर उन्होने पूछा, "आप अपने पति के स्वभाव के बारे मे कोई खास बात बता सके ?"

वह चुप, शात, मौन बनी रही। सास ने ही प्रश्न का उत्तर दिया, "यह बे-जबान उसकी रुचि के बारे मे क्या बता सकती है? जो कुछ मैने आपको बताया है वह एकदम सच है। मेरा जगमोहन कभी कही नही जाता। दुकान से घर, घर से दुकान, यही उसकी दुनिया है। वह सौ मे एक लडका है वकील साहब। उसे निरपराध फँसाया है, आप उसे अभी छुडा लाये।"—कह कर सेठानी वकील साहब के पैरो पर गिर गयी।

वकील साहब ने सेठानी को सँभाला। फिर यह सोचते हुए कि सास के सामने बहू से कोई भी जानकारी प्राप्त करना सभव नही, एकात मे वे बात करना नही चाहते थे, उन्होने बहू की ओर देखते हुए कहा, "अगर जरूरत पड़ी तो आपसे फिर बात करनी पडेगी। इस समय केवल जमानत का प्रश्न है। कल नतीजा आपको मालूम हो जायगा।"

सेठानी ने अपना आँचल फैला कर निहोरा किया, "वकील साहब, इस वूढी के आँचल की लाज तुम्हारे ही हाथ है। मेरा बेटा सतयुगी है।"

माँ-बहू के जाते ही जान्हवी आ गयी। उत्सुकता से उसने पूछा, "क्या सास-बहू ने जगमोहन के बारे मे कुछ बताया?"

"नही"—वकील साहब किसी सोच मे पडे थे।

"क्यो बताया नही उन्होने?"—जान्हवी ने फिर पूछा।

"जान्हवी, समझ की बात करो। अगर कोई तुमसे मेरे स्वभाव का गुण-दोष जानना चाहे तो तुम सब कुछ जानते हुए भी क्या कभी कोई बुरी बात मुँह से निका-लोगी?"

"कैसी बात कर रहे हो! मै क्या कभी तुम्हारे दोष देख भी सकती हूँ?"

"अगर मान लो, देख भी लो, तो क्या कभी तुम उसे कह सकोगी?"

"यह कैसे सम्भव होगा? बिलकुल एकात मे भी ऐसा सोचने के पहले जीभ गल जायेगी।"

"तब जगमोहन की माँ से और उसकी स्त्री से, उसके स्वभाव के बुरे पहलू की जानकारी कैसे की जा सकती है? उसकी स्त्री बिचारी की तो जीभ शायद बिलकुल ही गली हुई है।"

"तो होगा क्या ?"—जान्हवी ने उत्कठा प्रकट की ।

"जमानत की पूरी कोशिश तो करूँगा ही। फिर देखी जायगी। पहले पुलिस के आरोपो के आधार का तो पता चले ।"

वकील साहब ने दफ्तर की मेज मे लगी घण्टी बजायी । मुशी जी कमरे मे आये ।

"मुशी जी जरा अरविन्द घर पर हो तो बुला लाइये ।"

मुशी जी चले गये । जान्हवी से वकील साहब ने कहा, "दो प्याला चाय यही भिजवा दो । अरविन्द के लिए भी । इस मुकदमे के सिलसिले मे उससे कुछ काम कराना है ।"

अरविन्द नया वकील था । युवक था । बाबू रूपकिशोर के सहकारी के रूप मे फौजदारी का काम सीख रहा था। उसकी वकालत अभी दो-तीन साल पुरानी ही थी । पडोस ही मे रहता था ।

अरविन्द पहुँचे तब तक चाय भी आ गयी। चाय पीते समय बाबू रूपकिशोर ने कहा, "अरविन्द, तुम जरा कटरे चले जाओ। जगमोहन वाले मुकदमे की सुखजीत के पिता की वहाँ परचून की दुकान है। जानकारी यह करनी है कि जगमोहन सुखजीत के पिता का परिचित है या नही । उसके पिता की आमदनी क्या है ? उसका रहन-सहन कैसा है ? घर मे कितने प्राणी है, क्या करते है और उसका पिता आदमी कैसा है आदि-आदि ?"

अरविन्द ने आदर पूर्वक कहा, "वकालत के पेशे मे काफी खुफियागीरी भी करनी पडती है ।"

"हाँ अरविन्द, फौजदारी के सगीन मुकदमो मे खास कर । पुलिस जो प्रमाण अपराध के समर्थन मे पेश करती है, उसका आधार जानना बडा जरूरी होता है। तभी सही पता चलता है कि पुलिस किस तरह अपराधी का निर्णय करती है और तभी उसका बचाव सम्भव है ।"

"लेकिन पुलिस की तफतीश की डायरी से भी तो वह जाना जा सकता है ?"

"हाँ, पर डायरी से यह नही जाना जा सकता है कि पुलिस ने अपनी तफतीश मे क्या-क्या छोड दिया है । फौजदारी के मुकदमे की तैयारी मे छोटी-से-छोटी

बात की जानकारी भी जरूरी है। किस उद्देश्य से कोई अपराध किया गया, यह महत्त्वपूर्ण है। कत्ल मे तो उद्देश्य का सर्वोपरि महत्त्व है। इसे ठीक-ठीक जानना बहुत जरूरी है।"

"कई बार तो अपराधी इतना चतुर होता है कि अपराध का कोई सुराग नही छोडता।"

"आम तौर पर ऐसा होता है। लेकिन मेरे जीवन की एक धारणा है कि सत्य कभी छिपता नही। लाख छिपाने की कोई कोशिश क्यो न करे, सत्य किसी-न-किसी तरह प्रकट हो ही जाता है।"

"क्या आपको आशा है कि मैजिस्ट्रेट के यहाँ से जमानत हो जायेगी ?"

"कहा नही जा सकता। कपूर का, जिसके यहाँ जमानत पेश होगी, दिमाग भोदा है। पता नही मैजिस्ट्रेट कैसे बना ! तुम तो जानते ही हो वह पहले वकालत करता था। जब वकालत नही चली तो मैजिस्ट्रेट हो गया।"

"कपूर क्या जितने है प्राय सभी वैसे ही है।"—अरविन्द ने कहा।

"क्यो न हो ? सरकार आज की महँगाई के जमाने मे भी उन्हे वही वेतन देती है जो आज से तीस साल पहले सस्ती मे देती थी। एक पान की दुकान वाला भी शायद किसी वयस्क मैजिस्ट्रेट से अच्छा कमा लेता है। जब समाज मे उनका आदर-मान ही नही, जब वे सुखी नही, तो प्रतिभाशाली लडके उसमे जायेगे क्यो ?"

"तर्क तो आपका समीचीन है। लेकिन उनकी ऊपरी आमदनी भी तो है।"

"शायद तुम सच कह रहे हो। अन्यथा वे रोटी भी कैसे चला पाते है, मै तो समझ नही पाता। फिर कानून की पुस्तके, उनका अध्ययन, व्यक्तिगत जीवन मे शाति, सुख, यह सब भी जरूरी है। न्यायकर्त्ता का जीवन तो बड़ा ही सुखी और स्वस्थ होना चाहिए। और ऊपरी आमदनी तो जो पुलिस विभाग मे होती है, वैसी किसी भी नौकरी मे किसी की क्या होती होगी ? लेकिन पैसा ही सब कुछ तो है नही अरविन्द ! पुलिस वाले, जैसा वे आज है, उनका समाज मे आदर ही कितना है ?"

चाय समाप्त हो गयी। बाबू रूपकिशोर ने अरविन्द को आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के लिए फिर आगाह किया। अरविन्द चला गया।

उस रात बडी देर तक बाबू रूपकिशोर कानूनी किताबो मे उलझे रहे, नजीरे पढते रहे ।

दूसरे दिन मुकदमा उन्होने स्वीकार कर लिया, दो हजार फीस पर । अगर जमानत के लिए ही जज के यहाँ जाने की नौबत आई तो एक हजार और फीस तय हुई । लेकिन मैजिस्ट्रेट के यहाँ ही सफलता की आशा थी, इसका वकील साहब ने लाला घासीराम को आश्वासन दिया ।

बाबू रूपकिशोर जब दस बजे कचहरी पहुँचे, तो उनके कमरे मे वकीलो की भीड लग गई ।

"किस आधार पर जमानत की माँग पेश की जा रही है ?"—श्री त्रिपाठी, उनके मित्र वकील ने पूछा ।

"बिना प्रमाण के पुलिस ने गिरफ्तार किया तो होगा नही ।"—एक दूसरे वकील ने कहा ।

"हाँ, पर जमानत से मुकदमा तो छूट नही जायेगा । मुकदमे का जब चालान हुआ है तो वह पूरा चलेगा ही ।"—बाबू रूपकिशोर ने उत्तर मे कहा ।

"मुकदमा सगीन होने के साथ ही रोमाचकारी है ।"—उपस्थित सभी वकीलो ने कहा ।

"सगीन है, तभी तो मेरे विद्वान दोस्त रूपकिशोर ने इस मुकदमे की जिम्मेदारी उठायी है ।"—श्री त्रिपाठी ने कहा ।

वकील साहबान थोडी देर बाद अपने-अपने काम पर चले गये । तब अरविन्द ने बताया, "कल बडी कोशिश की । लेकिन कोई विशेष जानकारी मिल नही सकी । सुखजीत का बाप सीधा-सादा भोला आदमी है । सुखजीत पढने मे तेज थी । कालेज की पढाई के साथ-साथ सिलाई का भी काम वह ऊषा कम्पनी मे सीखा करती थी । पहनने-ओढने की शौकीन थी । उसके चरित्र की सभी प्रशसा कर रहे थे ।"

"ऊषा कम्पनी का मैनेजर वही नागर तो नही है ?"

"जी, वही है। जगमोहन से उसका परिचय है। उससे भी मै मिल आया। वह कह रहा था—'जगमोहन को झूठे ही फँसाया गया है। वह बेचारा तो सुख-जीत को जानता भी नही था।' सुखजीत की नागर भी तारीफ कर रहा था।"

"अच्छी बात है। तुम दरख्वास्त तो अदालत मे दे आये ?"

"दरख्वास्त दस बजे अदालत खुलते ही मैंने दे दी। उस पर बहस के लिए एक बजे का समय निश्चित हुआ है। मैजिस्ट्रेट ने रिपोर्ट नही माँगी है। सरकारी पक्ष को सारे कागजात के साथ उपस्थित होने का आदेश दिया है। वैसे मुलजिम का भी आज पेश होना जरूरी है।"

एक बजे कपूर की अदालत वकीलो और मुवक्किलो से भरी हुई थी।

जगमोहन पुलिस की हिरासत मे पेश हुआ।

श्री कपूर बोले, "अपराधी की ओर से जमानत के लिए आवेदन-पत्र प्राप्त हुआ है। प्रतिलिपि सरकारी वकील को भेज दी गयी है। उन्हे क्या कहना है ?"

सरकारी वकील श्री सिह उठे। श्री कपूर की ओर देखते हुए उन्होने कहा, "श्रीमान्, अपराधी को बलात्कार और कत्ल के सगीन जुर्म मे गिरफ्तार किया गया है। दोनो जुर्म ऐसे है जिनमे तफतीश समाप्त होने के पहले अपराधी को जमानत पर छोड देना मुकदमे के लिए कठिनाइयाँ उपस्थित कर सकता है।"

"कारण" ?—बाबू रूप किशोर ने नम्रता पूर्वक श्री सिह को बीच मे ही टोका।

श्री सिह ने आवेश से कहा, "कारण साफ है श्रीमान्! अपराधी नगर के एक बडे धनी परिवार का है। वह सबूत के गवाहो को तोड-फोड सकता है। दूसरे इतने सगीन आरोप उसके विरुद्ध है कि वह जमानत की रकम की परवाह न कर रूपोश हो सकता है। इस सम्बन्ध मे श्रीमान् का ध्यान मै इस तथ्य पर दिलाऊँ कि घटना के तीन महीने बाद अपराधी को पकडा जा सका। अपराधी, श्रीमान्, निहायत ही सरकश और चालाक है। उसके जमानत पर छूटने से मुकदमे के बिगडने का भारी खतरा है। फिर कानूनन ऐसे अपराधो मे सेशन जज की अदालत से ही जमानत होनी चाहिए। कानून का यही मशा है।"

श्री कपूर ने बाबू रूपकिशोर से पूछा, "आपका कोई प्रतिवेदन है ?"

"श्रीमान्, मुझे निहायत अदब से यह निवेदन करना है कि मेरे योग्य मित्र

की दलीले मेरी समझ मे नही आई। पहला तर्क यह है कि अपराधी धनी परिवार का है । यह सबको मालूम है । उसके पिता यहाँ के प्रतिष्ठित व्यापारी है । अपने पुत्र को सकट मे देख कर वे जो प्रयत्न भी कर सकते है, जरूर करेगे । श्रीमान् इस समय तो मै यह निवेदन करना उचित नही समझता कि पुलिस के गवाह इतने कमजोर है कि वे टूट-फूट सकते है । अगर गवाह बनावटी है तो अदालत के सामने उनका झूठ छिप नही सकता । और यदि धन के बल पर वे तोडे-फोडे जा सकते है तो अपराधी ही नही उसके पिता और परिवार के अन्य शुभेच्छुओ को भी तब गिरफ्तार कर लेना चाहिए। श्रीमान्, गवाह यदि सच्चे हो तो उनके तोड-फोड का सवाल ही नही उठता । और यदि गवाहो की साक्षी का आधार ही असत्य हो तो मेरे विद्वान मित्र सरकारी वकील का योग्य परामर्श भी ऊसर मे गुलाब नही उगा सकती ।

दूसरा तर्क यह है कि अपराधी जमानत की रकम की परवाह न कर भाग सकता है। भविष्य मे कोई क्या करेगा, यह तो मेरे विद्वान् मित्र सरकारी वकील ही बता सकते है। शायद उन्होंने ज्योतिषशास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया है । पर इसके लिए श्रीमान्, यदि चाहे तो जमानत की रकम अपेक्षाकृत ऊँची कर सकते है और ऐसे जामिन स्वीकार कर सकते है जिससे अपराधी के भागने की कल्पना भी हास्यास्पद होगी ।

तीसरी दलील है कि अपराधी को पकडने मे पुलिस को तीन महीना लगा । पता नही पुलिस की अकर्मण्यता और अक्षमता पर मेरे लायक दोस्त पर्दा डालने की कोशिश कर रहे थे या केवल तर्क के लिए उन्होने यह दलील पेश की ? मै श्रीमान् का ध्यान तफतीश की डायरी पर दिलाना चाहता हूँ । अपराधी जग-मोहन के खिलाफ प्रमाण क्या है ? पुलिस का कहना है कि उसकी कार थी और उसमें तीन आदमी थे । कार अपराधी की थी या नही, इस समय इस पर बहस कर मैं श्रीमान् का बहुमूल्य समय बरबाद नही करना चाहता । अगर यह भी मान लिया जाय कि कार अपराधी की ही थी तो इसका क्या सबूत है कि जो असली अपराधी थे वे उसे चुरा नही ले गये थे ? कार मे जिन तीन व्यक्तियो का होना पुलिस बताती है, वे कौन थे ? श्रीमान्, मैने तफतीश की

डायरी को बडे गौर से पढा है । उसे आपने भी देखा होगा । अपराधी जगमोहन के विरुद्ध एक भी चश्मदीदी-गवाह नही ।

श्रीमान्, हमारे सविधान मे जब तक मुकदमे की कार्यवाही को पूरा कर अदालत अपराधी को कसूरवार नही ठहरा देती है तब तक वह निरपराध माना जाता है। ऐसी हालत मे उसकी जमानत न स्वीकार करना ही कानून की अवज्ञा होगी।

श्रीमान्, मै अपने विद्वान सरकारी वकील के अन्तिम तर्क पर कि इस अदालत को सेशन वाले मुकदमो मे जमानत स्वीकार नही करना चाहिए, कुछ भी निवेदन करना अपने विद्वान् मित्र की योग्यता पर आक्षेप समझता हूँ । जिस अदालत को जमानत अस्वीकार करने का अधिकार है उसे स्वीकार करने का भी पूरा-पूरा अधिकार है। मेरे विद्वान् मित्र शायद इस बात से सहमत हो कि जब तक जमानत यहाँ से अस्वीकार न हो जाय, सेशन की अदालत मे वह पेश ही नही की जा सकती ।"

बाबू रूपकिशोर ने जिस शालीनता और गम्भीरता से अपने तर्क उपस्थित किये उससे अदालत के कमरे मे सन्नाटा छा गया । जब बाबू रूपकिशोर अपनी बहस समाप्त कर बैठ गये तब सारे उपस्थित वकील और जन-समुदाय श्री कपूर की ओर उत्सुकता से देखने लगे ।

श्री कपूर ने श्री सिह से पूछा, "कोई चश्मदीदी गवाह अपराधी के खिलाफ है ?"

"अब तक नही श्रीमान्, पर अन्य प्रमाण इतने गम्भीर और सटीक है कि अपराधी पर दोष साबित होने मे कोई शक-शुबहा नही रह जाता ।"

"श्रीमान्, मेरा बीच मे बोलना क्षमा किया जाय । जमानत स्वीकार न करने का कोई भी कारण हमारे मित्र विद्वान् सरकारी वकील उपस्थित नही कर पा रहे है । वे सामुद्रिक शास्त्र का अपना ज्ञान प्रकट कर रहे है ।"—बाबू रूपकिशोर ने जोश से निवेदन किया ।

श्री सिह ने तत्परता से उत्तर दिया, "मेरी व्यक्तिगत रुचि के बारे मे मेरे विद्वान् मित्र को इतना घनिष्ठ ज्ञान है कि इसके लिए मै उनका आभारी हूँ । मेरा निवेदन यह है कि बलात्कार और कत्ल के ऐसे सगीन मुकदमो मे जमानत साधारणतया स्वीकार नही की जाती है ।"

"श्रीमान्, बाबू रूपकिशोर ने फिर खड़े होकर निवेदन किया, "मैं विद्वान सरकारी वकील का आभारी हूँ कि उन्होंने साफ शब्दों में यह कहना उचित नहीं समझा कि श्रीमान् की अदालत को जमानत स्वीकार करने का अधिकार नहीं है। जो निवेदन उन्होंने किया है उससे साफ है कि अपराधी की जमानत हो सकती है। वे इस अधिकार को विलम्ब से प्रदान करना चाहते हैं, सेशन से या उससे भी ऊपर की अदालत से। मैं अपने ही उच्चतम न्यायालय की नज़ीरें श्रीमान् के समक्ष प्रस्तुत करने की अनुमति चाहता हूँ जिसमें माननीय न्यायाधीशों ने निर्धारित किया है कि वर्तमान परिस्थितियों में जमानत जरूर स्वीकार कर लेनी चाहिए।"

श्री कपूर ने नज़ीर को बड़े ध्यान से पढ़ा। फिर बोले, "आपने जमानत की रकम ऊँची समर्पित करने का निवेदन किया है। क्या रकम होनी चाहिए?"

"यह मेरे विद्वान मित्र सरकारी वकील से पूछा जाना चाहिए। इस पर मुझे आपत्ति न होगी।"

"दस हजार के दो ज़ामिन और उतने का ही व्यक्तिगत मुचलका, इतना तो कम-से-कम होना ही चाहिए।"––श्री सिंह ने कहा।

"मुझे इसमें आपत्ति नहीं है।"––बाबू रूपकिशोर कह कर बैठ गये।

जमानत स्वीकार कर ली गयी। जामिन नगर के ही प्रसिद्ध व्यापारी थे। उनकी हैसियत की तसदीक का सवाल उठाना भी श्री सिंह ने उचित नहीं समझा। जगमोहन जमानत पर अदालत में ही रिहा कर दिया गया।

अदालत के बाहर श्री सिंह ने बाबू रूप किशोर से कहा, "तुमने मुकदमे को इतना व्यक्तिगत बना दिया! मैं इसका अनुमान भी नहीं कर सकता था।"

"व्यक्तिगत का कोई सवाल ही नहीं था। पुलिस की डायरी इतनी लचर थी कि जमानत होती ही, यहाँ से नहीं, तो सेशन से होती। तुमने अपना कर्त्तव्य निभाया।"––बाबू रूपकिशोर ने हँस कर श्री सिंह को उत्तर दिया।

कमरे में लाला घासीराम और जगमोहन उनसे मिले। लाला का हृदय कृतज्ञता से भरा था। उन्होंने हार्दिक आभार प्रकट किया और वकील साहब की जय-जयकार की।

बाबू रूपकिशोर ने जगमोहन से जल्दी ही आकर मिल लेने के लिए कहा और दूसरे काम मे लग गये ।

: ५ :

"भैया दूज का दिन था । माधुरी ने माँ से पूछा, "माँ, आज ताईजी के यहाँ हो आये । करुणा-केदार भी जाने के लिए कह रहे है ।"

"पर ताईजी ने जब से वे दारागज गई, हम लोगो की खबर भी तो नही ली है ।"

"न ले पाये होगे, माँ ! उनकी अपनी मुसीबते है। पर हम लोगो को चाहते, बहुत है । अपने बडे है। आज हो आने दो। सुरेश को राखी बाँध आयेगे ।"

"अपने पिता जी से पूछ ले ।"—जान्हवी यह नही चाहती थी कि जेठ जी से सम्बन्ध एक दम टूट जाय । उसका तर्क था कि पारिवारिक मकान को नये सिरे से उसके पति ने नवनिर्मित कराया, दूसरा मकान तो पति ने नयी जमीन मोल ले कर अपनी वकालत की आमदनी से बनवाया, बलुआ घाट की कोठी मेहनताने के एवज मे मिली। इन तीनो मकानो पर उसके पति का धन खर्च हुआ था और पति के नाम से वे दर्ज भी थे। किसी दूसरे का हिस्सा उनमे या पारिवारिक मकान मे भी नैतिक रूप से नही था । पारिवारिक मकान मे केवल वह जमीन, जिस पर मकान खडा था, वकील साहब के पिता की खरीदी हुई थी। उसके अलावा मकान के बनवाने मे सारा धन वकील साहब का ही लगा था । जमीन की कीमत, आज के हिसाब से नाम मात्र ही थी—ऐसा जान्हवी ने सुना था और जमीन की शक्ल अब बदल गयी थी। मकान निर्माण का नक्शा, टैक्स की अदायगी, मकान की मिल्कियत सब वकील साहब के नाम थे । जमीन की दी हुई कीमत से कितना गुना अधिक वकील साहब ने उस जमीन को बनाने मे खर्च किया । अब किसी दूसरे का उसमे हक नही पहुँचता—यह जान्हवी का निश्चित मत था । जब जेठ जी किराये के पचहत्तर रुपये बच्चो को दे गये थे ।

तब उसे कम दु ख नही हुआ था। वह किराया चाहती नही थी। उसका मतलब केवल इतना था कि जेठ जी वहाँ जम न जाये। कई कारणो से वह चाहती थी कि जेठजी कही अपना अलग प्रबन्ध कर ले। अपनी जेठानी से उसकी कभी नही पटी थी। इस घर मे आने के बाद से ही उसके मन मे उनके प्रति एक ईर्ष्या की भावना पैदा हो गयी थी। जेठानी उससे उम्र मे बहुत बडी थी, वृद्धा थी। इस घर मे जब जान्हवी आयी तो उसने जेठानी को सास की जगह पाया। जेठानी सास की तरह व्यवहार भी करती थी। जान्हवी का और उनका जब मैत्री-पूर्ण सम्बन्ध नही स्थापित हो सका तो बात-बात मे महेश की माँ की जेठानी ने प्रशसा करनी शुरू कर दी। जान्हवी का तो दूसरा विवाह था नही। वह प्रेम के अरमान से भरी-पूरी इस घर मे आयी थी। उसे तो नयी बहू को जो आदर-सत्कार मिलना चाहिए था, उसकी अपेक्षा थी। पर जेठानी की बातो से उसे हर क्षण अपनी दूसरी होने का बोध हो चला और उनकी बातो से यह भी लगा कि महेश की माँ का जो स्थान इस घर मे था, वह जान्हवी का कभी नही हो सकता था। उसे एक घटना की याद आई। वकील साहब कचहरी जाने को तैयार हो रहे थे। कफ के बटन ढूँढने पर भी नही मिले। माधुरी के हाथो वह पड चुके थे। उसने उसे अपने तस्वीरो के डब्बे मे बन्द कर दिया था। डब्बे पर बटन ढूँढते समय किसी का ध्यान ही नही गया। बाबू रूपकिशोर को देर हो रही थी। उन्होने ऊँची आवाज से कहा, "सुई से सिल दो।" जान्हवी सुई-डोरा लेकर कफ सिलने ही जा रही थी कि महेश ने माधुरी के डब्बे से बटनो को निकाल कर दे दिया। माधुरी आठ-नौ साल की बच्ची ही थी तब। जान्हवी ने गुस्से मे उसे डपट दिया। माधुरी रोने लगी। जेठानी आ गई। माधुरी को गोदी मे उठा कर उसे दुलारते हुए उन्होने कहा, "चुप हो जा माधुरी, अब तुझे यह सब सुनना-देखना पडेगा ही। तेरे भाग्य अच्छे होते तो वह देवी तुझे छोड कर क्यो चली जाती ?" फिर जेठानी ने आगे कहा था, "पहले यह सब नही होता था। महेश की माँ आठ ही बजे कपडे वगैरह तैयार कर पलँग पर फैला देती थी।"

देरी के कारण पति ने भी उसे रोष से देखा था। बिना बात की बात पर

जान्हवी को उस दिन बहुत दु ख पहुँचा था । उसके बाद और पहले भी जेठानी ने महेश की माँ की दोहाई बात-बात पर देना शुरू किया था । बाद मे तो वह निस्सकोच कहती, "उस देवी के भाग्य से ही यह राज-पाट मिला है । उसके बच्चो को दु ख न होने पाये ।" जान्हवी तब नयी-नयी आई थी । जेठानी को, उम्र मे दुगुनी से भी अधिक जेठानी को, वह क्या उत्तर दे पाती ? वह मन मसोस कर रह जाती । तभी से जान्हवी के मन मे जेठानी के प्रति कलह हो गया । यह तो गनीमत हुई कि जेठ जी की छुट्टी खतम हो गयी और वह सपरिवार अपनी नौकरी पर चले गये ।

जान्हवी को एक और बात से चिढ हुई थी । जेठानी यह बतलाना कभी नही भूलती थी कि उसके पति को उन लोगो ने ही पढा-लिखा कर वकील बनाया । न मालूम कितना धन, जेठानी के कथनानुसार, उसके पति की शिक्षा पर उन लोगो का खर्च हुआ था । जान्हवी ने मन-ही-मन जेठ जी की मौजूदा तनख्वाह से एक हिसाब लगाया था । जितना धन जेठानी शिक्षा पर खर्च हुआ बताती थी उतना तो जीवन भर मे जेठ जी के मासिक वेतन का कुल योग भी नही था । लेकिन जेठानी कहती, "हमने अपना तन-पेट काट कर रूपकिशोर को पढाया ।" जान्हवी को मालूम था कि जेठ जी ने ही पति को पढाया था और वह भी काफी तगी सह कर । पर वे बडे भाई थे और कमासुत थे । उसके पति उनके छोटे भाई थे । वह सोचती कि जेठ जी पढाते-लिखाते नही तो क्या छोटे भाई को बोटी-बोटी काट कर फेक देते । जेठ जी तब घर के कर्त्ता थे । उन्होने अपना कर्त्तव्य पूरा किया जो उन्हे करना ही चाहिए था । लेकिन उसका ढिढोरा पीटने की क्या जरूरत थी ?

पति आ गये । जान्हवी ने कहा, "माधुरी कह रही है कि ये लोग दारागज हो आते ।"

"दारागज क्यो ?"—वकील साहब किसी दूसरी चिन्ता मे खोये थे ।

"भैया दूज है । ताऊ-ताई का प्रेम जगा है ।"

"तुम जैसा उचित समझो।"—वकील साहब ने नितात शून्य भाव से कहा ।

"मै क्या कह सकती हूँ ?"—जान्हवी सचमुच असमजस मे पडी ।

"तुम सोच लो कि जो कुछ हो चुका है उसके बाद क्या बच्चो को वहॉ भेजना उचित होगा ?"––वकील साहब जो कुछ हुआ था उसके लिए मन-ही-मन दुखी थे । लेकिन मनुष्य कई बाते ऐसी कर बैठता है जिसे बुद्धि से वह कभी करना पसन्द नही करता। जान्हवी बोली, "बडो मे कुछ भी हुआ हो, यद्यपि कुछ हुआ नही, पर बच्चो को आने-जाने से रोकना उचित नही ?"

"तुम तो कहती हो बडो मे कुछ हुआ ही नही । तुम भी क्यो नही हो आती ?"

"तुम मुझे ही दोष देते हो। क्या किया है मैने ? केवल यही न कि उनकी-हमारी स्थिति मे अन्तर है, इसलिए मैने सबका भला सोच कर तुमसे यह कहा कि वह अलग ही रहे तो अच्छा है । महल्ले मे रहते तो उनके रहन-सहन से तुम्हारी कितनी बदनामी होती । इसी से तो मैने तुम्हे बचाया । लेकिन शायद मेरी गलती थी । तुम अब भी चाहो तो उन्हे ला कर यही रखो । मै कान पकडती हूँ जो एक आवाज भी निकालूँ ।"

पत्नी का रुष्ट भाव देख कर बाबू रूपकिशोर बोले, "अकारण नाराज होती हो । मै कब कहता हूँ कि वे यही रहते । जो कुछ जिस तरह से हुआ, वह अच्छा नही हुआ । शायद दोषी वे ही है । मगर भाई तो है ही । इससे तो इनकार किया नही जा सकता । हो आने दो बच्चो को अगर तुम्हारी राय है तो । लेकिन सुना है उन्होने कोई मकान ले लिया है । अब धर्मशाला मे नही है ।"

माधुरी आ गयी । पिता का अन्तिम वाक्य उसने सुन लिया था । वह बोल उठी, "सुरेश दद्दा को कल चौक मे मिल गया था । उसने मकान का पता बता दिया है ।"

जान्हवी ने तब माधुरी से कहा, "अच्छा तुम लोग हो आओ ।"

महेश साइकिल पर, माधुरी, केदार और करुणा रिक्शे पर दारागग पहुँचे । एक पतली तग गली मे जाकर एक खण्डहरनुमा जीर्ण-शीर्ण मकान था । उसी के एक हिस्से मे बाबू रामकिशोर रहते थे । सामने एक छोटा कमरा, पीछे उतना ही छोटा ऑगन, ऑगन मे एक ओर रसोई और पास ही नहाने के लिए खुला नल, यही कुल मकानियत थी । मकान देखने मे भी निहायत ही गन्दा

लगता था और उसमे सीलन इतनी थी कि कमरे की आबोहवा नाक को जकड लेती थी। मकान के पिछले दूसरे हिस्से मे किसी प्रारम्भिक स्कूल के एक अध्यापक रहते थे ।

सामने वाले कमरे मे ही ताऊजी, ताईजी, बैठे मिले। बच्चो को देख कर वे बहुत प्रसन्न हुए। बाबू रामकिशोर ने प्रेम से गद्‌गद् हो कर कहा, "आओ माधुरी, कैसे भूल पडी ?"

"आज भैया दूज है। सुरेश से मिलने आये। पर ताऊजी, इस मकान मे तो बडी सीलन और अँधेरा है। छत की वह कडी देखिए, लचक गयी है। इसके कभी भी गिर जाने का डर है।"—माधुरी कह ही गई।

"अपना-अपना भाग्य है, बेटा! यह भी मिल गया, यही गनीमत जानो।"—ताई जी ने उसाँस भर कर कहा। अपनी दयनीय स्थिति के प्रकट हो जाने पर मानो बच्चो के सामने उन्हे घोर लज्जा हो आयी।

माधुरी का हृदय भर आया। वह जानती थी कि अपने पडोस के मकान में रहने के लिए ताऊ जी को किराया देना पडा और किराया दे कर भी वह वहाँ रह नही पाये। वह गुम-सुम लज्जा मे बही जा रही थी। तब तक बाबू रामकिशोर ने पत्नी से कहा, "बच्चो के कुछ खाने-पीने का प्रबन्ध करो।"

"खा-पी कर आये है, ताऊजी!" —माधुरी ने भरे कण्ठ से कहा।

"फिर भी चाय बना लो। बाजार से कुछ नमकीन-मीठा मँगा लो। त्योहार के दिन बच्चे आये है"—बाबू रामकिशोर ने पत्नी से कहा।

पत्नी पति का मुँह ताक रही थी। त्योहार का दिन, उनके घर खिचडी बनी थी। घोर आर्थिक सकट मे भी, वे सोच रही थी, कभी भी त्योहार का दिन उनके यहाँ ऐसा नही बीता था। हमेशा त्योहार के दिन पक्का खाना और कोई मिठाई बनती थी। पर तब दिन दूसरे थे और सस्ती थी और आज . । एक बार तो उन्होने सोचा कि ये बच्चे न आये होते तभी अच्छा होता। उनका पर्दा ढका रहता।

सुरेश कही गया था, आ गया। माँ ने उससे बाजार से पाव भर दूध और

पाव भर चीनी लाने को कहा। मिठाई और नमकीन भी मँगाया। एक बक्स से दो रुपये निकाल कर उन्होंने सुरेश को दिया।

ताईजी चूल्हा जला कर पानी गरम करने लगी। माधुरी ताईजी की मदद करने रसोई मे गयी। जूठे बर्तनो से छिपा नही रहा कि आज खिचडी बनी थी। माधुरी—सयानी माधुरी—का मन रो उठा। आँखे पिघल जाना चाहती थी। माधुरी ने कोशिश से अपने मन के भाव को प्रकट होने से रोका।

ताऊजी — बूढे ताऊजी—करुणा भाव से भरे करुणा से खेल रहे थे और कह रहे थे, "जीजी की तरह तुम भी हमारा ध्यान रखना। रखोगी न ?"

"ताऊजी, मै यही रहूँगी।"—करुणा ने अनुराग पूर्वक कहा।

"हाँ बेटा, तुम मेरी राजा बेटा हो। अपनी माँ से पूछ लेना।"

"माँ से नही पूछूँगी। वह खेलने भी नही जाने देती है। यहाँ खूब खेलूँगी। यहाँ पास मे कोई पार्क तो होगा ही ताऊजी! हाँ, चलिए गगा देख आये।"—करुणा गंगा चलने के लिए जिद करने लगी।

गगा गली के अन्त के मकान के पीछे से ही दिखायी पडती थी। ताऊजी करुणा को गगा दिखाने ले गये। केदार भी साथ हो लिया। महेश रुक गया। सुरेश की कोई कहानी की पत्रिका पडी थी। चटाई पर औधा लेटे वह उसे पढ रहा था।

सुरेश सामान लाया। माँ के पास ले जा कर रख दिया।

माधुरी ने सुरेश से पूछा, "पढाई कैसी चल रही है ?"

"पढना तो मैने छोड दिया है। अब टाइप सीखता हूँ। एक दुकान मे काम भी मिल गया है।"

"क्या मिलता है ?"—माधुरी पूछा बैठी।

"अभी पचीस रुपये मिलते है, काम सीख रहा हूँ। काम सीखने के बाद वेतन तय होगा।"

"कितना समय देते हो ?"

"दस से चार तक काम करना पड़ता है। शाम को दो घण्टे टाइप सीखता हूँ।"

माधुरी सुरेश की बाते सुनकर सिहर उठी। प्रसग बदलने के लिए उसने महेश से पूछा, "दद्दा, तुम किसकी कहानी पढ रहे हो ?"

"लेखक का नाम तो मालूम नही, वह पन्ना ही फटा है। जासूसी कहानी है, रोचक है।"

ताऊजी केदार, करुणा के साथ कुछ देर मे लौट आये । ताईजी ने एक तश्तरी मे मिठाई, एक मे नमकीन और प्यालो मे चाय सजा कर कमरे मे बिछी चटाई के बीचो-बीच रख दिया। बच्चो ने प्रेम से नाश्ता किया।

फिर सब बच्चे सुरेश के साथ नागवासुकी के मन्दिर और अन्य दर्शनीय स्थानो को देखने गये ।

ताईजी ने बाबू रामकिशोर से दु खी स्वर मे कहा, "बच्चो को भेज दिया । प्रेम जताती है। भगवान फल देगा।"

"क्यो अपशकुन सोचती हो ? बच्चो का क्या दोष है ? माधुरी जबरदस्ती आयी होगी।"

"माधुरी बडी सुशील लडकी है। वह बेचारी क्या सुखी होगी ? लेकिन है वह व्यवहार-कुशल। समझती सब है। महेश को देखो, चेहरे से हमेशा मौन उदासी टपकती रहती है।"

"हमसे तो अच्छा ही रहता है"—पति बोले" जानती हो, वकालत की परीक्षा पास करते समय तक रूपकिशोर ने पैंट नही पहना था। मैने उनके लिए पहला पैंट दानापुर मे सिलवाया, जब यह तय हुआ कि वह वकालत करेंगे। एक बरस तक वे दूसरा पैंट नही सिला सके। लेकिन जब भगवान देता है तो छप्पर फाड कर देता है। बाद मे तो रूपकिशोर मेरे लिए गरम पैंट जिद कर के सिलवाते थे।"

पत्नी ने पति के भाव का आदर करते हुए कहा, "रूपकिशोर का दोष नही। उस देवी ने ही उस पर टोना कर दिया है। है भी तो किस खानदान की। गोलगप्पो का खोचा उनके दादा लगाते थे, खोचा छोड कर बाप व्यवसायी बन बैठा। सुना, अपनी सगी माँ को भी बाप ने दगा दिया। वे बेचारी कलप-कलप कर मरी। मैने तो तुम्हारा विरोध नही किया, मै वहाँ शादी चाहती

ही नही थी । तुम्ही ने जोर दिया । अब उसका फल दे रही है वह देवी । रूपकिशोर तो शादी करना नही चाहते थे । कहते थे—'भाभी ! दो बच्चे है, शादी के बखेडे मे क्यो डाल रही हो ?' वह दु खी थे। तुम्ही ने जोर दे कर शादी करायी ।"

बाबू रामकिशोर चुपचाप सुनते रहे । जान्हवी के पिता उन्ही के पास विवाह का प्रस्ताव ले कर दानापुर आये थे। उन्हें रूपकिशोर की मुख-मुद्रा का ध्यान आया, जब उन्होने उनसे विवाह करने के लिए कहा था। उन्होने कहा था, "दद्दा, महेश-माधुरी है, सुरेश है, तुम-भाभी हो, हर तरह परिवार भरा-पूरा है । फिर विवाह का बखेडा क्यो ?"

तब रूपकिशोर की उम्र तीस की भी नही थी । सुडौल बदन के बलिष्ठ सुन्दर युवक थे । जीवन का लम्बा रास्ता पार करने के लिए साथी जरूरी होता है, बडे भाई ने सोचा था । यह भी सोचा था—मन की बात कौन जानता है ? अभी तो रूपकिशोर के विवाह की उमर उभरी है । छोटे भाई से उन्होने कहा था, "भैया, तुम्हारे विचारो का मै आदर करता हूॅ । पर महेश और माधुरी की देख-भाल के ही लिए मॉ की जरूरत है। लडकी सुन्दर, पढी-लिखी और सुशील है । पिता अच्छे व्यवसायी है। परिवार अच्छा है । स्वजातीय है । अपने लिए अगर नही, तो इन नन्हे-मुन्नो के भविष्य के लिए विवाह करना ही उचित है।" विवश किया था बाबू रामकिशोर ने छोटे भाई को दूसरी शादी के लिए और बाबू रूपकिशोर ने निरुत्साहित-सा बडे भाई की आज्ञा का पालन किया था ।

'पर आज .', सोचा बाबू रामकिशोर ने 'खूब बहू निकली—' फिर उन्होने सोचा—'पर बहू का क्या दोष ? कोई भी कुमारी लडकी एक पति को पा कर जिसकी पहली पत्नी बच्चे छोडकर मर चुकी हो ऐसा ही आचरण करती । शायद महेश की मॉ भी यदि जान्हवी की जगह आयी होती तो वैसी ही होती जैसे जान्हवी थी । किसी का भी दोष नही । सबका करम होता है और फिर अपना-अपना भाग्य है । अपना-अपना सोचने-समझने का ढग है ।'

मन ने फिर कहा—लेकिन छोटा भाई कितना उनका आदर करता था ।

अब उसको क्या हो गया है ? वह क्यो नही समझता कि और किसी चीज मे न सही, पारिवारिक मकान मे तो उनका आधा हिस्सा है ही ? वकील है, न्याय दिलाने का पेशा है उसका । स्वय वह किस मजबूरी से अन्याय कर रहा है ? और वह छोटा भाई, जिसे आदमी बनाने के लिए बाबू रामकिशोर को कौन-कौन अभाव, क्या-क्या दु ख नही सहना पड़ा ।

बाबू रामकिशोर अपने दु ख की चिन्ता मे लीन चटाई पर पडे-पडे सो गये । वही वे सोया करते थे ।

बच्चो का दल जब सैर-सपाटे से लौट आया तब तीन बज चुके थे । माधुरी बोली, "ताईजी, अब चलेगे ।"

करुणा ने कहा, "मै यही रहूँगी ।"

माधुरी ने उसे फुसला कर कहा, "माँ से पूछ कर तुम आज ही शाम को चली आना । दद्दा तुम्हे छोड जायेंगे ।"

"माँ आने नही देगी ।"—करुणा मचल पडी ।

"मै कह दूँगी ।"—माधुरी ने करुणार्द्र होकर कहा । तब किसी प्रकार वह चलने को तैयार हुई । चलते समय दस रुपये का एक नोट ताऊजी ने करुणा के हाथ मे रख दिया ।

घर पहुँच कर माधुरी माँ के कमरे मे ऊपर गयी । जान्हवी मशीन पर सिलाई कर रही थी । वकील साहब पलँग पर लेटे कुछ पढ़ रहे थे ।

"आ गये तुम लोग ।"—जान्हवी ने पूछा ।

"हाँ माँ, करुणा आ ही नही रही थी । कहती थी ताऊजी के पास ही रहेगी । बड़ी मुश्किल से उसे ला पायी ।"—माधुरी की आँखो से उदासी टपक रही थी ।

"लेकिन तुम्हारा चेहरा क्यो उतरा हुआ है ? कोई बात हुई है क्या ?"-जान्हवी ने पूछा ।

"नही माँ, ताऊजी और ताईजी का दु ख देखा नही जा सका । एक अँधेरे कमरे का टूटा-फूटा मकान जो कब गिर पड़े, उसका ठिकाना नही; न कुर्सी, न मेज, न पलँग । एक चटाई बिछा रखी है । उसी पर उठते-बैठते है । उसी

पर दरी बिछा कर सोते है । और आज त्योहार के दिन खिचडी पकी थी, न सब्जी, न भर्ता ही ।"

"तुम लोगो को क्या कुछ नाश्ता-पानी मिला ?"—माँ ने पूछा ।

"हम लोगो के लिए बाजार से नमकीन-मिठाई मँगवाया, चाय बना कर ताईजी ने पिलाया, लेकिन उनकी अपनी दशा बहुत ही खराब है । ताऊजी बिलकुल बूढे नजर आ रहे थे । एकदम कमजोर हो गये हैं ।"

करुणा आ गयी । दस का नोट माँ को दिखाकर उसने कहा, "ताऊजी ने दिया है । माँ, मै ताऊजी के पास अभी लौट जाऊँगी, वही रहूँगी ।"

बाबू रूपकिशोर ने माधुरी की बात सुनी थी । वे विचलित हो उठे थे । दस रुपये का नोट ताऊजी ने दिया, करुणा से यह सुनकर उनका मन भर आया । तभी पत्नी के शब्द सुनायी पडे, "सुना, सुरेश किसी दुकान मे काम करने लगा है ?"

"उसने पढना छोड दिया है । दुकान मे काम अभी सीख रहा है ।"—माधुरी ने बताया ।

"क्या मिलता है ?"

"पच्चीस रुपया महीना, दस से चार तक खटना पडता है ।"—माधुरी का गला यह कहते हुए सकोच से भर आया मानो वह किसी घोर अपराध की बात कह रही हो ।

जान्हवी भी सहम उठी । बात बदलने के लिए उसने पूछा, "आज भैया-दूज थी । तुम्हे कुछ नही दिया ?"

माधुरी झूठ बोली, "मुझे रुपये दे रहे थे । मैने इनकार कर दिया । माँ, उन लोगो की दशा दयनीय है ।"

बाबू रूपकिशोर बडे [illegible] थे, वही उनको विह्वल करने के लिए काफी था । अधिक कुछ सुनने की सामर्थ्य नही थी । वह उठ कर चुपचाप नीचे दफ्तर के कमरे मे चले गये ।

पति के जाने के बाद जान्हवी ने माधुरी से कहा, "तुमने करुणा को रुपये लेने क्यो दिया ?"

"ताऊजी माने ही नही और करुणा किसी तरह आ नही रही थी।"

जान्हवी ने फिर पूछा, "सचमुच क्या एक ही कमरा है उस मकान मे। किराया क्या है ?"

माधुरी ने माँ को मकान का नकशा बताया और कहा, "मकान क्या है, खण्डहर है। बरसो से शायद कोई उसमे रहा ही नही, इतना खतरनाक है। सुरेश किराया दस रुपये बता रहा था।"

"बिजली है कि नही ?"

"वैसे मकान मे भला बिजली हो सकती है ? हमारे महल्ले के धोबियो के घर भी उससे साफ और खुले है। वह तो उजाड खण्डहर है, सीलन और अँधेरे से भरा हुआ। आदमी के रहने लायक जगह नही है।"—माधुरी कह कर पीडा से आर्द्र हो उठी।

जान्हवी भी यह सब सुनकर अतिशय दु खी हुई। बडी देर तक खामोश रही। कुछ देर बाद माधुरी से चाय लगवाने को कह पति के पास नीचे दफ्तर मे गयी। पति ने गौर से पत्नी के मुँह की ओर निहारा।

जान्हवी कुछ कहना चाहती थी जेठ और जेठानी के सम्बन्ध मे। लेकिन पति के उदास मुँह को देख वह केवल इतना कह सकी, "चलो, चाय पी लो।"

बाबू रूपकिशोर कहना चाहते थे—'आज चाय नही पीना चाहता।' लेकिन पत्नी की मुखमुद्रा देख कर वह उठ आये।

चाय पर मठरी और लोकनाथ से मँगायी हुई मेवे की मिठाई तश्तरियों में सजी थी। महरिन गरम पकौडियाँ तल कर ला रही थी।

महेश अपना चाय का प्याला लेकर बाहर चला गया। माधुरी ने भी केवल चाय पी। केदार करुणा ने पकौडियाँ खाई। मिठाइयो की ओर उन्होने आँख भी नही उठाई। वकील साहब भी चाय ही पी सके। नाश्ते का सारा सामान धरा रह गया। जान्हवी ने भी इस क्षुब्ध वातावरण मे किसी कदर अपनी प्याली की चाय को खतम किया।

: ६ :

बाबू रूपकिशोर उस दिन बडे भाई की दयनीय हालत सुन कर केवल दु खी हुए हो, यह बात नही। उनका मन बेचैनी से सॉय-सॉय करने लगा। जिस भाई ने अपने बेटे की तरह उन्हे पाला-पोसा, अपना पेट काट कर उनको कोई अभाव नही होने दिया, वह अपने जीवन के सन्ध्या-काल मे इतना अभावग्रस्त है। सत्तर रुपये महीने आजकल होते ही क्या है--उन्होने सोचा। कुल जमा-पूँजी, दो-चार हजार रुपये, अगर बैंक मे हो भी तो शेष सारे जीवन के लिए, तीन प्राणियो के बीच, उसकी कीमत ही क्या ? और इतना था भी, यह कहाँ निश्चित था। बाबू रूपकिशोर मर्माहत हो उठे यह सोच कर कि मकान होते हुए भी आज उनका पिता-तुल्य बडा भाई धोबियो के मकान से भी बदतर मकान मे, जैसा माधुरी ने बताया था, रह रहा है। पैतृक मकान मे बडे भाई का आधा हिस्सा था, यह बाबू रूपकिशोर अच्छी तरह जानते थे। पत्नी के कारण वह उसे प्रकट रूप मे स्वीकार नही कर पाते थे और बडे भाई ने कभी कोई बात इस बारे मे अपने मुँह से निकाली नही। चुपचाप वह छोटे भाई का अन्याय सह रहा है--बाबू रूपकिशोर की आँखे इस खयाल से सजल हो आयी। त्योहार के दिन खिचडी ! यह सोच कर तो वे विक्षिप्त हो जाना चाहते थे। उन्होने सोचा कि क्या उनकी हैसियत इतनी नहीं थी और क्या यह उनका कर्त्तव्य नही था कि अपने बडे भाई को उनकी आखिरी वय मे वे सहारा देते ? क्या वे बडे भाई को पैतृक नही तो दूसरे मकान के जिस हिस्से मे वह आकर ठहरे थे, वही नही रहने दे सकते थे ? अभी तक वह हिस्सा खाली पडा था। बाबू रूपकिशोर यह सोच कर कि उस हिस्से के लिए बडे भाई ने उन्हे किराया दिया, लाज से गड जाना चाहते थे। देवता सरीखे बडे भाई की दुर्दशा, दयनीय हालत, का ध्यान कर बाबू रूपकिशोर व्यग्र हो उठे। पत्नी के कारण यह सब हो रहा था। क्या पत्नी को वे समझा नही सकेगे ? उन्होने सोचा कि बडे भाई की वह सहायता करेगे, कुछ नही तो सौ रुपये महीने देगे, उन्हे एक अच्छा मकान अपनी ओर से किराये पर ले देगे। दु ख से पीडित वह पत्नी से या किसी से बिना कुछ कहे बाहर निकल पड़े। सोचा था दारागज जाकर बडे भाई से मिल कर क्षमा माँग

आयेगे। लेकिन घर से बाहर निकल वह दारागज की ओर न जाकर क्लब की ओर मुड पडे।

क्लब मे जिला के कलक्टर श्री तनेजा मिल गये। "आइये, बाबू रूपकिशोर आइये। उस जमानत मे तो आपने कमाल कर दिया। श्री सिह को आपकी वहस के सामने मुँह की खानी पडी।"

बाबू रूपकिशोर श्री तनेजा के पास बैठ तो गये लेकिन मन की जो हालत थी उसमे वह किसी मुकदमे या गम्भीर विषय पर कोई चर्चा नही करना चाहते थे। उन्होने पूछा, "कहिए श्री तनेजा, ब्रिज मे किस्मत साथ दे रही है ?"

श्री तनेजा ब्रिज के बडे शौकीन थे। लखनऊ के उन नवाब साहब की तरह, जिनका 'शतरज के खिलाडी' मे जिक्र है, जिले मे चाहे आग लग जाय या शहर भूचाल से धरती के बराबर हो जाय, श्री तनेजा का शाम का ब्रिज खेलना नही छूटता था। उनके जीवन मे दो ही शौक थे––ब्रिज खेलने का और पीने का। कलक्टर थे ही और जैसा उनके समकक्ष ऊँचे अधिकारियो का नियम था, वे कभी अपने पैसे से नही पीते थे। उन्होने क्लब के बेयरे को आदेश दिया, "दो ह्विस्की-सोडा।"

बेयरा ह्विस्की लाकर मेज पर रख गया। बेयरा पुर्जी पर श्री तनेजा का दस्तखत करा ले गया कि कीमत उनके हिसाब मे पड जाय। पुर्जी पर दस्तखत बनाने के पहले श्री तनेजा एक मिनट तक यह देखते रहे कि शायद बाबू रूपकिशोर ही दस्तखत कर दे। लेकिन बाबू रूपकिशोर की मन स्थिति ऐसी नही थी कि वह दस्तखत करने का खयाल भी करते।

श्री तनेजा ने तब पुर्जी पर दस्तखत बना ह्विस्की का एक गिलास बाबू रूपकिशोर की ओर बढाया और स्वय दूसरी से चुस्की लेते हुए बोले, "कल ब्रिज मे राजा साहब का साथ था। सिह और खन्ना विरोधी थे। पहले ही हाथ मे मै सात पान बोला। सिह ने डबल किया। मैने रिडबल किया और बेखटके मै हाथ बना गया। बड़ा दिलचस्प और पेचीदा खेल था। एक अरदब की जरूरत थी। वह सही पड़ा और हाथ बन गया। इस क्लब मे तो 'ग्रैण्डस्लाम' शायद पहली बार बोला गया हो।"

बाबू रूपकिशोर किसी दूसरे समय श्री तनेजा के खेल की, जिसे उन्होने देखा नही था, दाद दिये बिना नही रहते। पर जो बात उन्होने कही वह कुछ और थी। उन्होने पूछा, "श्रीमती तनेजा आज नही दिखायी पडती ?"

श्री तनेजा एक क्षण के लिए चौके तो जरूर, पर उत्तर मे उन्होने कहा, "आज वह कमिश्नर की बीवी को बाजार कराने ले गयी है, आती ही होगी।"

"कमिश्नर श्री घोष सुना, सुबह घण्टो पूजा करते है।"—बाबू रूपकिशोर ने अकारण पूछा।

श्री तनेजा हँस पडे, बोले, "अब मै भी पूजा करने लगा हूँ। प्राय सारे अधिकारी पूजा करने लगे है। सरकार मद्य-निषेध आन्दोलन चला रही है। समाज-कल्याण चला रही है। विकास की समितियाँ बनी है तो वगैर पूजा चल कैसे सकता है ? प्रजातत्र मे पूजा आवश्यक है।"

पूजा और प्रजातत्र मे दो अक्षर के अनुप्रास के अतिरिक्त और कोई भी सम्बन्ध है, यह सुन कर बाबू रूपकिशोर चकित हुए। आश्चर्य के स्वर से उन्होने पूछा, "अधिकारियो को एकाएक यह भक्तिभाव कहाँ से टपक पडा और प्रजातत्र से पूजा का क्या सम्बन्ध ?"

"बाबू रूपकिशोर, आश्चर्य है कि आपजैसा पारगत वकील भी युग के इस महान पवित्र आन्दोलन के अधिकारी वर्ग मे विकास को नही जानता। पहले ब्रिटिश शासनकाल मे 'साहब गुसलखाने मे है,' चलता था। अँगरेज अधिकारी बिना प्रतीक्षा करायें, चाहे वह कोई भी क्यो न हो, मिलता नही था। प्रजातत्र मे 'गुसलखाना' वाला नुस्खा चला नही। जनता जनार्दन के नेताओ को प्रतीक्षा कराने मे कई वरिष्ठ अधिकारियो को अपनी तरक्की खोनी पडी। लेकिन अधिकारी तो जो अँगरेज के समय मे साहब था, आज भी वही है। उसी तेज दिमाग ने 'पूजा कर रहे है' की ईजाद की।"—कह कर श्री तनेजा हँस पडे। ह्विस्की का गिलास उन्होने खाली कर दिया।

बाबू रूपकिशोर ने शालीनता का व्यवहार किया। ह्विस्की का दूसरा दौर उनके आदेश पर चला। श्री तनेजा जब बाबू रूपकिशोर दूसरी ह्विस्की की पुर्जी पर दस्तखत बना रहे थे, प्रसन्नता से भर उठे थे।

नयी ह्विस्की की चुस्की लेते हुए बाबू रूपकिशोर ने पूछा, "लेकिन पूजा की भी तो कोई अवधि होगी ?"

"आप टेलीफोन नहीं रखते, वकील साहब ! इसीलिए अभी तक यह गुर आप पर प्रकट नहीं हुआ। सुबह दस बजे तक किसी अधिकारी को टेलीफोन करिये, चपरासी कहेगा—'पूजा पर हैं।' और इससे जान बची है। अब नेतागण नाराज़ नहीं हो सकते। धर्म की बात की वह शिकायत नहीं कर सकते। संविधान धर्म-निरपेक्षता पर जोर देता है। वकील साहब, सुबह तो मैं पूजा करता ही हूँ, शाम को भी कभी-कभी करता हूँ।"—श्री तनेजा अपनी उक्ति की सरसता पर ठठा कर हँस पड़े।

"लेकिन श्री घोष तो सुना, वास्तव में पुजारी हैं। कोई साधु आये थे। उनके दर्शनों को भी गये थे।"—बाबू रूपकिशोर ने अविचल गम्भीरता से पूछा।

"यह भी आजकल चल पड़ा है। तरक्की पहले वरिष्ठता पर होती थी। अब योग्यता पर होती है। योग्यता का कोई मापदण्ड तो है नहीं। मेरे मनोनुकूल कोई कर्मचारी काम करता है तो वह योग्य है। मेरी इच्छा के खिलाफ उसने ज़रा भी गर्दन उठायी कि उसकी सारी योग्यता, कर्त्तव्य-परायणता धरी रह गयी। अतः अपना उचित न्याय माँगने पहले अधिकारी नेता के पास दौड़ता है और जब नेता से भी न्याय नहीं मिलता तो घोर निराशा में अन्धविश्वास की शरण लेता है, साधु-महात्माओं के चक्कर में फँसता है। नियतिवाद, निराश व्यक्तियों के संतोष का अमोघ अस्त्र, आज समाज के अन्य वर्गों से कहीं अधिक सरकारी अधिकारियों में घर किये है।"

"साधु-महात्माओं के चक्कर में तो वज़ीर लोग भी पड़ते हैं"—बाबू रूप-किशोर ने कुछ कहने के लिए कहा।

"हाँ वकील साहब। पर साधु-महात्माओं से भी अधिक ज्योतिषियों की चाँदी है। मैं तो कभी-कभी सोचता हूँ कि यह नौकरी छोड़ कर ज्योतिषी बन जाऊँ। आप जितना मासिक कमा लूँगा, शायद अधिक भी।"

वकील साहब का मन दो ह्विस्की के बाद भी भारी था। लेकिन श्री तनेजा की उक्ति पर वह हँस पड़े।

तब तक राजा रमणीमोहन प्रसाद और श्री गुप्ता जज आ गये ।

"वकील साहब, ब्रिज हो जाय।"—श्री तनेजा ने कहा ।

ब्रिज की चौकड़ी जम गयी। ताश काटे गये तो राजा रमणीमोहन और बाबू रूपकिशोर साथ पड़े और श्री तनेजा और श्री गुप्ता एक साथ ।

पहला हाथ जब बँटा तो बाबू रूपकिशोर ने एक 'हुकुम' कहा। राजा रमणी-मोहन ने उसे छः हुकुम कर दिया। हाथ खेला गया। राजा के पत्ते जोरदार थे। सातों हाथ बन गये ।

श्री तनेजा ने हँस कर व्यंग कसा, "राजा साहब, ब्रिज में ऐसी ग़लती अक्षम्य है। सात बने और छः ही बोला गया। यह खेल नहीं। ब्रिज में पत्तों का उपयोग ही तो कुशलता है।"

राजा रमणीमोहन प्रसाद के कोई रियासत नहीं थी। उनके परदादा सन् सत्तावन की लड़ाई के समय एक अँगरेज नील की कोठीवाले के दरबान थे। लड़ाई में उस कोठीवाले को उन्होंने अपने गाँव में ले जाकर छिपाया। लड़ाई में जब अँग-रेजों के धोखा और कूटनीति से हिन्दुस्तानी सेना परास्त हो गयी तब इनके परदादा के कृत्य पर प्रसन्न होकर अँगरेजों ने उनकी पेंशन बाँध दी और उनके गाँव का तालुका, जिसमें सात मजरे थे, उन्हें जागीर में दे दिया। बाद में भी परदादा ने अँगरेजों की सेवा की। उनकी राजभक्ति से प्रसन्न होकर उन्होंने उन्हें राजा का खिताब दिया। आज तक यह कोई जान नहीं सका कि राजा की पदवी केवल पर-दादा के जीवन-काल के लिए थी या वंशगत । लेकिन तभी से खानदान के बड़े लड़के अपने को राजा कहलवाते थे और छोटे कुँवर साहब। परिवार में सत्तावन में जो राजभक्ति का गुण आया वह आज तक टूटा नहीं।

सन् सैंतालीस के पहले राजा रमणीमोहन अँगरेजी सभ्यता, खान-पान, रीति-रिवाज़, शिष्टाचार, रहन-सहन के इस क़दर गुलाम थे कि अपने को वह अँगरेज कहलवाने में गौरव-बोध करते थे। मगर सैंतालीस के बाद एक छब्बीस जनवरी के समारोह में वे विशुद्ध खद्दर के चूड़ीदार और अचकन में देखे गये। तब से उन्हें खद्दर में ही देखा गया। उनकी राजभक्ति अब भी अटूट थी। वज़ीरों के स्वागत-समारोह में वह सबसे आगे खड़े होने की कोशिश करते थे। बड़े वज़ीरों को

अपने यहाँ दावत देते थे और पार्टी के वह चार आना वाले सदस्य भी हो गये थे।

राजा रमणीमोहन जानते थे कि अँगरेजो की जो शासन-पद्धति थी, देश मे अब भी वही चल रही है। कलक्टर शासन का प्रतिनिधि था। कलक्टर के पद के महत्त्व को राजा रमणीमोहन अच्छी तरह जानते थे। कलक्टर की उक्ति पर उन्होने जवाब मे कहा "श्री तनेजा, आपकी बात सच है। मै सात कहते कहते रह गया।"

श्री तनेजा की बॉछे खिल गयी। बेयरे को बुला कर उन्होने ह्विस्की का आदेश दिया। बाबू रूपकिशोर ने कहा, "मेरे लिए नही।"

तीन ह्विस्की आई। तत्परता से राजा रमणीमोहन ने उसके लिए पुर्जी पर हस्ताक्षर बनाया।

दूसरे हाथ मे पत्ते फिर अच्छे आये। वकील साहब एक हुकुम बोले। श्री तनेजा ने दो पान कहा। राजा रमणीमोहन ने पास कर दिया। श्री गुप्ता चार पान बोले। वकील साहब ने अकेले चार हुकुम बोलने का साहस नही किया, पास कर दिया।

हाथ जब खेला गया तो श्री तनेजा के चार पान बन गये। लेकिन वकील साहब ने देखा कि राजा रमणीमोहन के पत्ते इतने अच्छे थे कि चार हुकुम भी बन सकते थे। साफ बात थी कि श्री तनेजा को प्रसन्न करने के लिए राजा साहब अपना हाथ दबा गये।

तीसरे हाथ मे राजा रमणीमोहन और वकील साहब ने गेम बनाकर 'रबर' जीत लिया।

तब तक श्रीमती तनेजा और श्रीमती घोष आ गयी। श्रीमती घोष ब्रिज की शौकीन थी। बाबू रूपकिशोर कब से उठना चाहते थे। वे अलग जा बैठे। श्रीमती घोष उनकी जगह आ गयी।

श्रीमती तनेजा बाबू रूपकिशोर के पास आकर बैठ गयी। बोली, "क्या आप सुखजीत वाले कत्ल के मुकदमे मे जगमोहन को निर्दोष करार पायेगे ?"

"जब तक सबूत पक्ष का पूरा बयान सामने न आ जाय, तब तक तो कुछ कहा नही जा सकता ?"—बाबू रूपकिशोर श्रीमती तनेजा के प्रश्न पर चकित हुए और सोच-समझ कर उन्होने उत्तर दिया।

"सेठ घासीराम आये थे, बहुत रो-गा रहे थे। आप तो जानते हैं कि प्रजातंत्र में शहर के बड़े रईसों और व्यापारियों से हम लोगों को बना कर रखना पड़ता है। फिर हम उन्हीं की दुकान से कपड़ा खरीदते हैं। मेरी तो हार्दिक इच्छा है कि जगमोहन निर्दोष करार दिया जाय। मैं तनेजा की बात नहीं कहती। उनका सरकारी कर्त्तव्य है। मैं तो एक नागरिक मात्र हूँ, मुझे विचार-स्वातंत्र्य है।"

बाबू रूपकिशोर ने श्रीमती तनेजा का भाव अच्छी तरह समझ कर कहा, "मैं वकील हूँ। जब मैंने मुकदमा हाथ में लिया है तो पूरी-पूरी कोशिश करना मेरा कर्त्तव्य है। लेकिन अभी से कुछ भी कहना असम्भव है।"

"जगमोहन को छुड़ाने की आप हर मुमकिन कोशिश करें"––कह कर श्रीमती तनेजा ने वकील साहब की ओर जिन नयनों से देखा, उससे बाबू रूपकिशोर पुनः चकित हुए बिना नहीं रहे।

तब तक और महिलाएँ आ पहुँचीं। वे श्रीमती तनेजा को घेर कर बैठ गयीं। बाबू रूपकिशोर सबको नमस्ते कर चल दिए।

बाबू रूपकिशोर का मन क्लब में जब तक वे रहे, कुछ हल्का रहा। बाहर खुली हवा में आते ही बड़े भाई की दयनीय दशा ने मस्तिष्क को पुनः आ दबोचा। दारागंज जाने का उन्होंने निश्चय किया। लेकिन रिक्शे पर बैठ कर उन्होंने उसे लूकरगंज ले चलने का आदेश दिया।

नौ बजे रात को वकील साहब को देख कर रानी बिल्वमाला को कुछ विशेष आश्चर्य नहीं हुआ। कई बार ऐसा हो चुका था। अनुभव से वह जान गयी थीं कि परेशानियों से घिर कर वकील साहब वहीं पनाह लेते थे। अपनी स्थिति वह जानती थीं कि वह जान्हवी के बाद हैं। जान्हवी, जिनको वह 'बहन' जी कहती थीं, उनके मतानुसार और ठीक ही––प्रधान रानी थीं। स्वयं वे दूसरी थीं। दूसरी को प्रेमी को अपने में बिंधे रखने के लिए जो जतन-उपाय करना चाहिए, उसका वह भरपूर प्रयत्न करती थीं।

बिल्वमाला ने पेय लाने का आदेश दिया और बाबू रूपकिशोर से पूछा, "आज कुछ उदास हो। क्या बात है ?"

"उदास था तभी तो भागा-भागा यहाँ आया। लेकिन कोई खास कारण नही।"

वकील साहब कुछ छिपा रहे है, बिल्वमाला ने समझा। उसने पूछा, "क्या बहन जी से कुछ कहा-सुनी हो गयी ?"

"नहीं कोई ऐसी बात नहीं। [illegible] तुमसे दूर लगता ही कब है ? हाँ, दिल्ली चलने का कब विचार है ?"

"जब तुम आज्ञा दो।"

"कल-परसो बताऊँगा। कम्पनी की चिट्ठी आ गयी है। गाडी चल कर ही लायी जाय। कुछ सैर भी रहेगी। स्वच्छन्दता से हम-तुम दो-चार दिन तो रह सकेंगे ?"

बीरा पेय ले आयी। सुन्दर नौकरानी, सोने-सी चमक रही थी। जवानी शरीर के रोम-रोम से फूट पडना चाहती थी। बिल्वमाला उसे हमेशा सजा कर रखती भी थी। वकील साहब बीरा का चेहरा, उसकी भावपूर्ण आँखे और उसके यौवन के उभार को देखते रहे। ह्विस्की का जोश, वकील साहब की आँखे बीरा के वक्ष पर गड-सी गयी।

बिल्वमाला से वकील साहब की आँखो की हरकत छिपी न रह सकी। बीरा से उसने परिहास किया, "बीरा, आज वकील साहब तुझे पेय देगे।"

"नही बीरा, रानी मजाक कर रही है।"—बाबू रूपकिशोर रँगे हाथो पकडे जाने के भाव से शरमा कर बोल उठे।

बीरा लाज से गडी जा रही थी। पेय रख कर वह भाग गयी, इतनी तेजी से कि गिरते-गिरते बची।

बिल्वमाला बोली, "आज मेरी तबियत खराब है।"

"ऐसा न कहो"—बिल्वमाला के मुँह को अपने अक मे छिपाते हुए बाबू रूप-किशोर ने कहा।

बिल्वमाला अपना आधा शरीर उनकी गोद मे छोड कर बैठी और बोली, "सचमुच मेरी तबियत खराब है। आज बीरा के भाग्य खुल गये।"

"मैने तुमसे कब का कह दिया है कि मुझसे ऐसी बाते न किया करो, मै ऐसा आदमी नही ।"—बाबू रूपकिशोर ने क्रोध का भाव जताया ।

"तुम नाहक नाराज होते हो," उनके गले मे अपनी बाहो का हार डाल कर बिल्वमाला ने कहा, [illegible] धर्म है । हमारे राजकुल की प्रतिष्ठा का प्रश्न है । अगर नही तो दासी का अपमान होगा । बीरा अब तुम्हारी प्रतीक्षा किया करती है । जानते हो, वह क्या समझती है ?"

"नही ।"

हँस कर बिल्वमाला बोली, "वह समझती है कि राजा मर्द आदमी नही । तुम ऐसा चाहोगे कि तुम्हारे बारे मे मेरे दास-दासी ऐसा सोचे ?"

"बिल्वमाला ! वह कुछ भी समझा करे, कोई बात नही । एक तो तुमको पाकर भी मेरा समाज का विवाहित जीवन है ही । ऊपर से फिर ऐसा ! यह असम्भव है । क्यो मुझे पाप मे घसीटती हो ?"

बिल्वमाला हँस कर बोली, "नही जी, पाप नही । पाप वह है जिसको तुम मुझसे छिपा कर करो । तुम मेरे सर्वस्व हो । इन्द्रपुर का सुख भाग्य मे जब बदा होता है तभी राजकुल मे आदमी पैदा होता है । तुम मेरे राजा हो, जेनरल से कही अधिक प्रिय, अगर तुम इसका विश्वास कर सको । तुम्हे इस घर मे मेरा धर्म निभाना चाहिए । नही तो पाप की भागी मैं बनूँगी ।"

धीरा भोजन का थाल लेकर आयी । वकील साहब जब कभी देर से आते थे तब भोजन यही करते थे । बीरा धीरा के पीछे थी । लाज से उसके पॉव उठते ही नही थे ।

थाल आसन पर रख कर धीरा को चला जाना चाहिए था । लेकिन वह गई नही, खडी रही । बीरा अपने हाथ का सामान रख कर कमरे के बाहर हो गयी ।

बिल्वमाला ने धीरा का मतलब समझ लिया । पूछा, "क्या लोगी ?"

"भुजदण्ड"—धीरा ने कहा और अपना दाहिना बाजू दिखा दिया ।

"अच्छा जा, मिल जायगा ।"

प्रसन्नमन धीरा तब गयी । वकील साहब धीरा और बीरा की मन-ही-मन तुलना कर रहे थे । धीरा उमर मे बीरा से कुछ अधिक थी । लेकिन देखने मे, यौवन

के आकर्षण मे, वह बीरा से उन्नीस नही थी। क्षण भर के लिए तो उन्हे अपने पूर्व-वर्ती जेनरल पर ईर्ष्या हो आयी। फिर उन्होने सोचा, 'बीरा अस्पृश्या है, उसकी और धीरा की समता कैसी ?'

बिल्वमाला ने शायद वकील साहब के भाव को ताड लिया। हँस कर बोली, "सोच क्या रहे हो ? पेय लो, ब्यालू करो।"

पेय लेकर बाबू रूपकिशोर ने बिल्वमाला के साथ ही ब्यालू किया। फिर जब भीतर के पलँग कमरे मे लेट कर हुक्के का कश लेने लगे तब सहसा बीरा के नये यौवन के जादू का असर मन में आशा का पख फडफडा गया। मन के कोने मे कही दूर छिपा विरोध टूक-टूक हो चूर हो गया। सारे तन-मन पर बीरा की आभा छा गयी। बिल्वमाला पास आकर जब बैठी तब केवल कहने भर के लिए बाबू रूपकिशोर ने कहा, "रानी, आँखो मे अँधेरा छाता जा रहा है। ऐसा न हो तभी अच्छा है।"

[illegible] मतलब साफ दिखायी पडा। विनोद भाव से प्रेमी का मन रखने के लिए—और उत्तेजित करने के लिए—उसने कहा, "इस प्रश्न पर तुम नाहक डॉवाडोल हो रहे हो। यह मेरी कुल-प्रतिष्ठा और मर्यादा का सवाल है। अब इसे टाला नही जा सकता।" रानी ने परम विश्वास से प्रेमी की तरंगित आँखो मे आँख डाल कर बिना किसी शक-सुबहा की गुजाइश छोडे, आगे कहा "बीरा पान लेकर आती ही होगी। दो विशेष पेय भेजवाऊँगी। बीरा ही लायेगी, फिर चली जायेगी। मै जाकर उसे वापस भेजूँगी, तुम्हारा पाँव दबाने के लिए।"

प्रेमी पर असर का रग देख हँस कर फिर कहा, "एक पेय तुम उसे देना, एक उसके हाथो से स्वय लेना और आज उसे प्रस्फुटित कर देना। वह सचमुच अछूती कली है, खिलने को बेताब है। घबराना मत, तुम सुदृढ पुरुष हो, सावधानी बर्तना, उसकी तो सुहागरात है। मै बहिन जी को खबर भेज देती हूँ कि तुम प्रतापगढ गये हो। आज प्रताप की बहादुरी की बेला है और हॉ, जो कुछ भी वह मॉगे, दे देना। हम लोगो की प्रथा है, नेगचार है। पर्स तकिए के नीचे है।"

"लेकिन रानी, क्या दिल्ली-यात्रा तक यह रुक नही सकता ? दिल्ली मे तुम

जैसा हुक्म करोगी, मान लूँगा।"—बाबू रूपकिशोर ने न जाने कैसे यह कहा।
"नाहक सर न खपाओ, दिल्ली में भी वह साथ रहेगी। आज उसे मैं कह चुकी हूँ। धीरा भी भुजदण्ड माँग कर अपनी स्वीकृति दे चुकी है। अब इसे टालना उनका अपमान होगा। मैं जानती हूँ, तुम मुझसे पवित्र प्रेम करते हो। लेकिन मैं और मेरे साथ का सब कुछ तुम्हारा है—केवल तुम्हारा।"

बीरा चाँदी की तश्तरी में पान लेकर आयी। बिल्वमाला ने पान की तश्तरी अपने हाथ में लेकर उसके गाल में चिकोटी काट ली। पान की गिलौरी तश्तरी से लेकर वकील साहब ने तम्बाकू चाहा। तम्बाकू की सोने की डिबिया बीरा के हाथ में थी। उसने डिबिया खोलकर बढ़ायी। तम्बाकू लेते समय बीरा की उँगली वकील साहब की उँगली से छू गयी। परस मात्र से वकील साहब का शरीर सिहरन से भर उठा। बीस-बाईस साल के नौजवान की तरह उनकी रगों में बिजली दौड़ गयी। उनके शरीर और मन के भाव से मुस्कराहट की एक प्रकट रेखा बिल्वमाला के अधरों की कोर नाप गई।

बीरा को रानी ने आदेश दिया, "दो जोधपुरी आसव स्वर्ण-प्यालों में धीरा से बनवा कर ले आओ।"

बीरा के कदम शायद मन के असमंजस के कारण निमिष-पल को रुके। मन की गहराई में एक धुँधलका आ समाया। पर दासी का धर्म—आज्ञा पालन, बीरा क्रीतदासी, बिल्वमाला का आदेश-पालन करने पाँव दाबे चली गयी।

बीरा के जाने के कुछ देर बाद बिल्वमाला ने बाबू रूपकिशोर से परिहास के स्वर में कहा, "प्रतीक्षा की घड़ियाँ काट खाने न लगें, अब मैं चली। बीरा को अपने हाथों सजा कर भेजूँगी। उसकी तो यही शुभ रात्रि है, यही विवाह है। उसे ज़रा देर लगे तो अधीर न हो जाना।"

"मैं तुम्हारे लिए आया था बिल्वमाला"—बाबू रूपकिशोर के अन्तर की शालीनता ने कहने पर मजबूर किया, "जो शांति, जो सुख तुममें मिलता है, वह और कहाँ?"

"मैं जानती हूँ। मैं कहीं भागी तो नहीं जाती। बीरा हम लोगों की दासी ही तो है, उसका यही पुनीत धर्म है।"

बीरा स्वर्ण-खचित प्यालो मे पेय लेकर आ गयी । उसे तिपायी पर रख वह निःशब्द चली गई ।

बिल्वमाला ने मुस्करा कर कहा, "लो बीरा की भी स्वीकृति के प्याले आ गये, अब चलूँ, नही तो नल-दमयन्ती दोनो शाप देगे।" वह हँसती हुई कमरे से बाहर हो गयी । वकील साहब ने उसे रोकने के लिए क्या कहा, यह बिल्वमाला ने सुना ही नही ।

बाबू रूपकिशोर का मन आज वैसे ही सशकित था । पर इस अप्रत्याशित सकट ने—एकदम अप्रत्याशित तो था नही—उन्हे पल भर के लिए गम्भीर बना दिया । कहाँ उनका जीवन उतर आया है, उन्होने सोचा । बिल्वमाला से चाँदी प्राप्त करने के लिए उनका सपर्क हुआ था । बाद मे प्रेम हो गया—सच्चा प्रेम—इसे मन मानता था । लेकिन बीरा से—ज्ञात-अज्ञात के बीच की बीरा से, उनका सम्बन्ध शुद्ध वासना का होगा । यह क्या उन जैसे समाज के मेधावी, बुद्धिजीवी, प्राणी के लिए वाछनीय था ? 'क्यो नही'—उनके मन ने प्रश्न किया । और मन ने ही उत्तर दिया—'रानी के घर मे वह राजा है । राजाओ का यही गुण है जैसा कि बिल्वमाला ने बताया था और जैसा उन्होने इतिहास मे पढा था । इसमे अनुचित क्या है ?' बाबू रूपकिशोर किंचित् भाव-मग्न हो गये । फिर सोच कर कि जवानी से आदमी सदा जवान रहता है, वह हँस पडे ।

हुक्के की चिलम बुझ गयी थी । उन्होने पलँग की घण्टी दबायी । धीरा आ उपस्थित हुई ।

"चिलम, धीरा रानी ।"

धीरा मद-मद मुस्कराती चली गयी । चिलम भर लायी । जाने के पहले हँस कर उसने पूछा, "पाँव दबा दूँ ?"

वकील साहब नितात अनजान तो थे नही । धीरा की ओर एक क्षण उन्होने निर्निमेष निहारा और हँस कर कहा, "तुम फिर कभी दबाना ।"

धीरा भाग गयी । वकील साहब नयी चिलम की कश लेने लगे । तरगित थे बाबू रूपकिशोर । उनके अतर की तरग ने हिलोरे लेकर कठ को छू लिया । एक चुस्की स्वर्ण-प्याले के आसव की उन्होने ली । पीते ही दुनिया बदल गयी । कमरा

कुछ और नजर आने लगा। फर्नीचर आभामय हो उठा। जोधपुरी आसव तुरन्त असर करता है, यह उन्होने सुन रखा था। जोधपुरी आसव का गुण आज उन्होने पहली बार परखा।

हुक्के के कश मे वह बीरा की तरग मे डूब उतरा रहे थे कि बिल्वमाला आई।

"मै भूल गयी थी। यह अँगूठी पहले उसे पहना देना।"

"तुमने आज अच्छी मुसीबत मे फँसाया।"—बाबू रूपकिशोर की शालीनता फिर बोल उठी।

"मन तो लेकिन बाँसो उछलता दिखायी पड रहा है। हाँ, सावधानी बर्तना मत भूलना और घबराना मत।"—बिल्वमाला ने परिहास किया।

आसव बोल उठा, "तुम्हारा सिखाया हुआ हूँ, घबराना कैसा ? 'जब रानी का हुक्म है, तब सम्पूर्ण हृदय से उसे बजा लाना ही पड़ेगा।"

रानी बिल्वमाला वकील साहब के भाव से, मुखमुद्रा से अतिशय प्रसन्न दिखायी पडी। उनके मन की हिचक मिट गयी, बीरा खिल जायेगी,—रानी अपनी सफलता के गौरव-बोध की गरिमा से भरी चली गयी।

वकील साहब ने आसव की एक और चुस्की ली। हुक्के के कश ने आसव की तरग मे जादू भर दिया। रोमाचित बाबू रूपकिशोर सब तर्क-वितर्क, धर्म-अधर्म भूल, बीरा की आकुलता से प्रतीक्षा करने लगे।

बीरा के आने मे लेकिन देर हुई।

बाबू रूपकिशोर के शरीर की सनसनाहट बढती जा रही थी। उनका मन काम-शर की प्रत्यंचा पर पूरी तरह खिच चुका था। 'जीवन मे जब यही होना है तो सम्पूर्ण हृदय से क्यो न हो'—वह मन-ही-मन अपने भाग्य को एक बार सराह उठे।

बड़ी देर के बाद बीरा ने प्रवेश किया। उसके बनाव-श्रृगार ने उसकी काति और द्युति मे जादू की चमक भर दी थी, स्वर्ग की श्रेष्ठ रूपसी बन कर जैसे वह किसी तपस्वी का तप भग करने आयी हो। बाबू रूपकिशोर की आँखे रूप-लावण्य की आभा से, चकाचौध से, भर गयी। यूडोक्लीन की सुगन्ध जो रानी के बालो मे रहती थी, वही बीरा की केश-राशि से लहरा रही थी, द्युति पर स्नान के बाद चदन

का लेप कर जैसे वह चली आ रही हो। मक्खन की तरह उसकी स्निग्ध त्वचा दमक रही थी, आँखें उस पर बिछली जाती थीं। बिल्वमाला ने उसे अपने हाथों सजा-श्रृंगार कर भेजा था।

बीरा निःशब्द आकर कमरे में खड़ी हो गयी। सारे संसार की लाज का बोझ जैसे उसकी पलकों में समा आया हो, पलकें फर्श से उठ ही नहीं रही थीं। चाँद से मनोहारी मुखड़े पर गुलाब की आभा अपनी द्युति को छिपाने की कोशिश में मचल रही थी। चेहरे का भाव निर्भाव था। बाबू रूपकिशोर ने अपनी आँखों की चकाचौंध मिटते ही आह्लादपूर्ण स्वर में कहा, "आओ बीरा।" लेकिन बीरा की ओर आँखें उठाते समय उनकी पलकें सौन्दर्य-भार से झुक गयीं—अर्धनिमीलित हो गयीं।

बीरा हिली-डुली नहीं। बाबू रूपकिशोर तो मन की तरंग में और बीरा के श्रृंगार से प्रज्वलित रूप की ज्वाला में दूसरी दुनिया में पहुँच चुके थे। पलँग से उठकर बीरा की रूप राशि के पास पहुँच कर बाबू रूपकिशोर बोल उठे, "लजा रही हो। लाज के बन्धन के टूटने का दिन आ गया। आओ।"

बाहर से कमरे के दरवाजे के बन्द होने की आवाज़ आयी। बाबू रूपकिशोर ने दरवाजे की सिटकिनी भीतर से लगा दी। बीरा की नाजुक कमर को अपने हाथ का सहारा दे वह उसे पलँग के पास ले गये, पलँग पर अपनी बगल में उसे बैठा लिये। बीरा दासी सरक कर पाँव दबाने की कोशिश करने लगी। दासी थी, दासी का काम पसन्द आया उसे अपने जीवन की अहोरात्रि में भी। यही उसकी शिक्षा-दीक्षा थी, यही उसकी संस्कृति थी। बाबू रूपकिशोर प्रेम का अनादर न होने देने के लिए बीरा को अपने पार्श्व में बिठाना चाह रहे थे। लेकिन बीरा पाँवों के पास से टसमस नहीं हो रही थी, न जाने कहाँ की शक्ति पा मौन साधे अडिग थी।

बाबू रूपकिशोर की आकुलता अपनी सीमा के शिखर को छू रही थी। विस्मित हो उन्होंने सोचा, 'बात क्या है? सदा हँसी की फुलझड़ी बिखेरने वाली बीरा इतनी चुप क्यों है।' सहसा उन्हें अँगूठी का ध्यान आया। उन्होंने बीरा को अपने अंक-पाश में भर लिया। फूल की-सी कोमल किशोर तरुणी बीरा लचकती लवंग-लता-सी बाबू रूपकिशोर के वक्षस्थल पर आ टिकी। उसका हाथ अपने हाथ में

ले बाबू रूपकिशोर ने उसकी अनामिका में अँगूठी को पहना दिया । फिर पेय की स्वर्ण-प्याली उसके होठों से अपने हाथ से लगा दी ।

बीरा ने एक घूँट पी ही लिया—प्रेम के प्रथम उपहार को वह अस्वीकार न कर सकी । लेकिन प्याले को उसने अपने हाथ में लिया नहीं ।

बाबू रूपकिशोर को रनिवास का एक नया अन्दाज़ देखने को मिला । प्याली को उन्होंने तिपायी पर रख दिया । दूसरी प्याली उठा उन्होंने उसे एक घूँट में आधा खाली कर दिया । तरंगित बाबू रूपकिशोर ने बीरा के ब्लाउज के बटन उसके मौन विरोध की परवाह न कर खोल दिये । वक्ष की गोलाई के मुट्ठी में आते ही बाबू रूषकिशोर स्वर्गीय सुषमा की सनसनाहट से अभिभूत हो गये । अछूते वक्ष, यौवन का यह आकर्षण, आँचल की यह अनमोल विभूति, उन्होंने कभी पहले ऐसा अनुभव नहीं किया था । मादकता लबालब हो, फूट पड़ी । बीरा की प्याली उठा कर भावावेश में पुनः उसके होठों पर लगा दी । आधी प्याली जब तक रिक्त नहीं हुई तब तक वकील साहब ने प्याली को होठों से हटाया नहीं । प्याली को फिर तिपायी पर रखने के बाद वकील साहब ने बीरा के मुख को कपोलों के सहारे अपनी ओर खींच , पल मात्र के लिए अपने सामने कर, उसमें निहारा मानो दर्पण में वह अपनी नयी छबि देख रहे हों और तत्क्षण ही भाव-विभाव की संज्ञा खो उन्होंने अपने अधरों से बीरा के दाड़िम अधरों पर प्रेम-चिन्ह अंकित कर दिया—दीर्घ प्रेम चिन्ह, बीरा के होठों पर प्रथम प्रेम चिन्ह ।

बीरा के अधरों की उष्मा से बाबू रूपकिशोर की साँस तेज़ हो गयी । जीवन के अमृत रस की पिपासा से आतुर बाबू रूपकिशोर ने एक झटके में बीरा की साड़ी खींच उसे आवरण-रहित कर दिया । बिजली के प्रकाश की ओर बीरा की अधमुँदी आँखें फिरीं जैसे कह रही हों कि मेरे नैसर्गिक प्रकाश के सामने बनावटी प्रकाश की क्या जरूरत ? बाबू रूपकिशोर ने बत्ती बुझाने में ज़रा भी देर नहीं की । साथ ही उन्होंने पलँग से लगा धीमा प्रकाश जला दिया । धीमे प्रकाश की रोशनी में आवरण रहित प्रक्रुत सोने की छड़ी के मानिन्द शरीर पर बीरा का निखार और मनोहारी रूप से उभर आया । उसके शरीर के रोम-रोम की सुधा का पान बाबू रूपकिशोर के हाथ करने लगे, शरीर के कोण, रेखाओं की हाथ ने नाप ली ।

बाबू रूपकिशोर का शरीर तनाव की सीमा पर था। साँस की गरमी शिखर पर थी, बीरा की उष्णता भी पूर्ण प्रज्वलित थी। वह मदोन्माद से उन्मुक्त बन्धन-विहीन सज्ञा-असज्ञा के घेरे मे आ पडी। बाबू रूपकिशोर ने आसव की प्याली को पुन बीरा के होठो पर लगा दिया। प्याली जब रिक्त हो गयी तब उनके अधरो ने प्याली का स्थान ले लिया——प्रेम-चिन्ह, दीर्घ, प्रशान्त, अनिर्वचनीय।

अपने शरीर का आवरण——कुर्ता-पाजामा——भी भार लगा, बाबू रूपकिशोर को। अपने शरीर को तत्क्षण भार-विहीन कर उन्होने प्रकृति-पुरुष के मिलन की क्रीडा प्रारम्भ की। बीरा की साँस तेज थी, आँखे आसव और प्रेम मद से बन्द थी, शरीर से रोमाच की उष्मा की सनसनाहट निकल रही थी। ठीक यही दशा बाबू रूपकिशोर की थी जो आज किशोर बन गये थे, वास्तव मे। बीरा के शरीर को बाबू रूपकिशोर ने अपने शरीर के प्रकृत आवरण मे छिपा लिया, मादकता की पराकाष्ठा, बीरा सर्मपित हो गयी। किशोर बाबू रूपकिशोर सफलता की गरिमा से सुध-बुध विहीन मदन-महीप बन उठे। फिर शरीर की दीवार तोड-फोड दो उष्माएँ एक दूसरे मे लीन हो, एक बनकर, अनिर्वचनीय शाति मे अभिभूत हो गयी। शाति लाभकर बाबू रूपकिशोर अपने अन्तरतम की कृतज्ञता की भावना को दीर्घ प्रेम-चिन्हो द्वारा अकित करने मे तल्लीन हो गये, उनके हाथ दासी के शरीर का समादर करने के लिए उसके उभार के वृत्तो का परस-पान करते रहे और दासी अपने शरीर की अभिनव ज्ञान-गरिमा को अपने भाग्य-विधाता के शरीर मे छिपाये रहने की चेष्टा मे निमग्न रही। नारी-पुरुष के अन्योन्याश्रय का क्रम——शरीर के, मन के, रोमाच ज्योति की प्रतिष्ठा के अभिनव ज्ञान से सद्य प्रस्फुटित बीरा अपनी अर्ध चेतना मे भी परम प्रफुल्ल थी।

बीरा की तन्द्रा जब टूटी तो सद्य प्राप्त अभिनव ज्ञान के मनोरम आश्चर्य के साथ ही प्रगाढ सकोच के भार से उसकी आँखे मुँदी ही रही। पलँग के धीमे प्रकाश को उसने लेटे-लेटे ही बुझा अपने प्रस्फुटित शरीर को साडी के आवरण मे समेट लिया। फिर परम सन्तुष्ट और चकित मदोल्लास के आलस मे विभोर वह अपने सर्वस्व देव का पाँव दबाने बढी——दासी-भाव से। उस परम रात्रि के समादर के लिए मानो बाबू रूपकिशोर ने दासी को अपने पार्श्व मे खीच लिया और लैम्प का

धीमा प्रकाश पुन उद्भासित कर दिया। क्षण भर निर्निमेष पलको से वह उसे देखते रहे और फिर अपने हृदय की सम्पूर्ण सचाई से उन्होने पूछा, "तुमने कुछ माँगा नही ?" कुछ बिलम्ब से आह्लाद की वशी-ध्वनि निकली, "मुझे कभी भूलियेगा मत। मेरी बहन ने मत्र पढ कर मुझे भेजा हे कि मै सदा आपके और रानी जी के चरणो की सेवा करती रहूँ। मै हमेशा-हमेशा आपकी दासी रहूँ, यही मुझे भीख दीजिए। मुझे और कुछ नही चाहिए।"

वकील साहब ने प्रेम-पुलक से गौरव-भरी आवाज मे कहा, "फिर भी प्रथम रात्रि के पवित्र अवसर पर उपहार-स्वरूप-हमारे पवित्र मिलन के स्मृति-स्वरूप-कोई चिन्ह जरूर बताओ।"

बडी देर मे सकोच से गडती बीरा ने कहा, "जेनरल साहब ने धीरा को सोने के कर्णफूल दिये थे।"

"तुम्हे मै मोती के कर्णफूल और हार दूँगा, कल ही। बीरा, तुम दासी नही, मेरी पवित्र स्नेह-सपना हो।"—बाबू रूपकिशोर को इस वय मे जिस अमृत-रस का अनुभव मिला, उससे उन्होने सचाई से ही यह बात कही।

बीरा—दासी-मात्र—प्रसन्न हो उठी। वकील साहब की प्याली उसने उठायी। वह रिक्त थी। उठ कर आलमारी से आसव निकाल लायी, प्याली मे भरा और अपने हाथो पिलाया। रनिवास के प्रेम की इस रीति से वह परिचित थी। भावावेश मे वकील साहब ने भी बीरा की प्याली मे आसव ढाल उसे उसके होठो पर लगा दिया। बीरा ने एक घूँट पी लिया। उसी प्याली को वकील साहब अपने होठो तक ले जा रहे थे। बीरा ने हाथ पकड लिया और कहा, "मै दासी हूँ। आप केवल रानी जी की जूठी प्याली से पी सकते है, दासी की नही।"

"तुम भी मेरी रानी हो बीरा,"—कह कर बाबू रूपकिशोर ने उसे अपने अक-पाश मे समेट उसकी प्याली को खाली कर दिया।

जोधपुरी आसव की मादकता से दो हृदयो मे अभिनव प्रेम-सगीत की ध्वनि फूट पडी। प्रणय-क्रीडा आदान-प्रदान—बीरा इस बार अधिक लयमान थी। आरोह, अवरोह, बिलम्बित, द्रुत, सम, ताल—सबमे वह समानान्तर साथ देने की सफल चेष्टा कर रही थी। जीवन का अमृत मधु पी वह वकील साहब की काया की

छाया मे अपने को समेट निर्लिप्त हो उठी थी। मन-ही-मन वह अपनी इस परम रात्रि के लिए अपना भाग्य सराह रही थी, जीवन के अमृत रस के मर्म की जानकारी के लिए, जिसमे उसे नये ज्ञान के साथ ही परम सुख और शाति का अनुभव मिला।

आधी रात का घण्टा कब का बज चुका था। बाबू रूपकिशोर पार्श्व की तन्वगी कोमल लतिका की उष्मा-गरिमा मे तन्द्रिल सोच रहे थे, 'स्वर्ग की ऋषि-मुनियो की कल्पना सत्य ही है। उन्हे धरती पर ही स्वर्ग का सुख मिला। अवश्य ही यह उनके पूर्व जन्म के किसी महान पुण्य-कर्म का प्रतिफल है।' भावना के इस वेग मे देर तक प्रवाहित रहे बाबू रूपकिशोर और पार्श्व की सद्य. प्रस्फुटित कली मदन-मकरन्द के पराग से आविर्भूत, एक अलौकिक रस से सराबोर, अर्धनिमीलित नेत्रो से रह रह कर उन्हे अति कृतज्ञ नयनो से देख रही थी, जीवन के अमृत-तत्व का ज्ञान-बोध करा देने के लिए और बाबू रूपकिशोर की नीद दूर किसी स्वप्नलोक मे विचर रही थी। बहुत देर बाद उन्होने कहा, "अब सोये।"

बीरा की दासी प्रवृत्ति सजग हो उठी। पॉव दबाने उठ बैठी। उसका यह भाव लेकिन बाबू रूपकिशोर को प्रेम-सुषमा का अपमान जान पडा। उसे खीच अपने मे पुन उन्होंने आत्मसात् कर लिया। प्रेम का समादर, वसत बहार का राग, हृदयो से फूट पडा। जीवन के अमृत-सगीत की अनुभूति मे आसावरी का समय आया। किशोर बाबू रूपकिशोर आविर्भूत थे—समय-काल के बन्धनो से विमुक्त। पेशे से वकील, दान-प्रतिदान मे—स्वर्गीय सुषमा की छाया मे विशेषकर—वे अनुदार हो ही नही सकते थे। आसावरी का राग भी अमद रहा।

तीन का घण्टा बज रहा था। भैरवी का समय पाँच बजे के लगभग आयेगा—यह सोचकर लता-गुल्म-से लिपटे वे सो गये।

जब नीद खुली तब आठ बज चुके थे। भैरवी का समय कब का बीत चुका था। सौ-सौ के चार नोट पर्स से निकाल कर बीरा को दिये बाबू रूपकिशोर ने—प्रेम की कीमत नही, दासी को परपरागत उपहार। प्रसन्नमन ही स्वीकार किया बीरा ने और जिसने जीवन का मर्म-अमृत-पथ प्रशस्त किया, उसके चरणो मे शीश रख, समर्पण को सम्पूर्ण बना बीरा ने भीतर से बन्द सिटकिनी को खोल दिया। बाहर अरुणोदय की आभा मे निखिल विश्व जगमग था। उस अरुण प्रकाश में

उसे कोई देख न ले---क्षण भर को बीरा सहमी। फिर द्रुतगति से चली गयी।

चाय लेकर बिल्वमाला के साथ धीरा आई। वकील साहब ने चाय पी, हुक्के का कश खीचा। रानी की ओर कृतज्ञता-भरे नेत्रो से निहारा और फिर लेट रहे।

रानी के हाथ उनका पॉव दबाने लगे। बाबू रूपकिशोर मगर वहॉ से बहुत दूर थे। रानी के शब्द कि थक गये होगे, उन्हे सुनायी नही पडे। बाबू रूपकिशोर तो रात भर मे नये पुरुष बन बैठे थे। उनके कानो मे रात के मधुमय सगीत के स्वर-ताल, आरोह-अवरोह की गति गूँज रही थी। पॉव दबाती हुई रानी के ऊपर से बाहर झॉक कर उनकी अलसायी ऑखे रात की रानी को खोज रही थी।

बिल्वमाला ने परिहास किया, "तीन अमद प्रेम-राग सरकार ने रात सराबोर स्वर मे गाया। कहते थे कि जीवन-सगीत से प्रेम ही नही। और सिर चढा दिया उसे। मोतियो का कर्णफूल और माला देने को कह दिया। तुम्ही लाना!"

बाबू रूपकिशोर ने बिल्वमाला की ओर हार्दिक कृतज्ञता के भाव से देखा। उनका शरीर थकावट और आलस से भीग रहा था। बीरा को न पाकर ऑखे खुली नही रहना चाहती थी। उन्हे नीद आ गयी।

दस बजे के बाद जब नीद खुली तो बीरा पॉव दबा रही थी। आकाश-कुसुम रानी बिल्वमाला की कृपा से करतल गत आमलक बना था। बाबू रूपकिशोर ने पूछा, "रानी साहिबा कहॉ है?"

"स्नानागार मे।"

"रानी साहिबा से मै जन्म-जन्मान्तर उऋण नही हो सकता, इस आकाश-कुसुम के लिए।" और आकाश कुसुम को छाती से लगा उसके कमल मुख और अधरो पर उन्होनें प्रेम की भरमार कर दी।

वकील साहब ने स्नान किया, नाश्ता किया और बारह बजे के बाद सीधे कचहरी पहुँचे।

मित्रो ने कहा, "जैसे दिग्विजय कर लौटे हो, ऐसी प्रफुल्ल शांति चेहरे को कातिमान कर रही है। बात क्या है?"

मुशी जी आ गये। वकील साहब ने उनसे कहा, "प्रतापगढ मे राजा साहब

ने रात पार्टी कर दी। क्या ही स्वर्गीय सुख का समारोह था। सगीत अत्यन्त ही श्रेष्ठ कोटि का था। रात भर पार्टी चलती रही। अभी सीधे यही आया हूँ।"

तीन बजे ही वकील साहब कचहरी से घर पहुँच गये। मुशी जी [illegible] की पार्टी का समाचार घर पहुँच चुका था। जान्हवी ने इतना ही कहा, "सुबह भी तुम नही आये तो मै घबरा गयी थी।" पर पति के मुख पर जो नैसर्गिक आभा थी, उसे देखकर जान्हवी विस्मित थी। इतनी तृप्ति, इतनी शाति की द्युति उसने पति के मुख-मण्डल पर कभी नही देखी थी।

"चाय अभी लाती हूँ।"—उसने कहा। बाबू रूपकिशोर वोले, "अभी चाय नही चाहिए। बस मे चकनाचूर हो गया हूँ, सोऊँगा। तुम जल्दी आ जाओ।"

"बच्चो के आने का समय हो गया है। क्या पागलपन की बाते करते हो?"—जान्हवी पति की अपूर्व प्रसन्नता से विस्मित, किन्तु प्रसन्नमन चली गयी। उसका विषाद, सारी आशका के भाव, मन से लुप्त हो गये।

साढे पाँच बजे तक बाबू रूपकिशोर उस दिन गहरी नीद मे सोते रहे।

७ ·

बाबू रूपकिशोर की वह रात उनके जीवन के क्रम मे आमूल परिवर्तन का कारण बनी। जीवन की रागात्मक अनुभूति सम्पूर्ण रूप से पहली बार वयस्क, अनुभवी, विद्वान बाबू रूपकिशोर को उस रात ही मिली। जीवन का मूलस्रोत और क्या है, उन्होने सोचा? सृष्टि की निर्बाध गति आदि काल से नारी को लेकर चली आ रही है। नारी की सुषमा, उसका सौन्दर्य, उसका यौवन-मद अनादि काल से ही जीवन का केन्द्र-विन्दु रहा है। नारी माँ, बहन, बेटी के रूप मे भी अनिर्वचनीय आनन्द का सृजन करती रही है। लेकिन पत्नी-प्रेयसी-रूप मे तो उसकी गरिमा गौरव पूर्ण तथा अलौकिक रही है। स्वर्ग की कल्पना मे अप्सराओ के सुख-भोग की जो मर्यादा है, वह इसी केन्द्र-बिन्दु का अतिम परिणाम है। इस्लाम के अनुसार, जिसका रूपान्तर प्राय प्रत्येक धर्म मे मिलता है, पेय की स्वर्ग मे एक

शाश्वत नदी बहती है––कौसर। हिन्दुओं का अमृत रस उसी का दूसरा नाम है। स्वर्ग प्राप्त करने वालों को कौसर का मनमाना सुख मिलता है जैसे हिन्दुओं की कल्पना में इन्द्रपुरी में अमृत रस। अप्सराएँ, हूरें, अनगिनत संख्या में होती हैं। हूरें और कौसर, अप्सराएँ और अमृत रस, स्वर्ग के जीवन-स्रोत हैं। बाबू रूपकिशोर मन-ही-मन मुस्करा पड़े। उन्होंने सोचा कि जिसने इस जीवन में पीने का तरीका नहीं सीखा, रम्भाओं का परिरम्भण नहीं किया, वे कौसर पर जाकर कैसे पियेंगे, कैसे इन्द्र की अमरावती में अप्सराओं से केलि-किलोल कर पायेंगे? केवल व्यंग-चातुर्य नहीं, नारी को निकाल दीजिए तो मनुष्य को 'स्वयं' को प्राप्त करने की––अपने अहं के स्वरूप के ज्ञान और विकास के लिए––प्रेरणा ही क्या शेष रह जायगी? नारी भोग्या है––इस शाश्वत सत्य को अमान्य कैसे किया जा सकता है? बाबू रूपकिशोर कल्पना की तरंगों में साक्षात् स्वर्गलोक में विचरण कर रहे थे। उन्होंने सोचा––यदि स्वर्ग में यही सुख मिलना है तो धरती पर ही इस सुख से वंचित रहना क्या उचित है? पूर्व जन्म के पुण्य से मनुष्य राज-सुख भोगता है। बाबू रूपकिशोर को जीवन में यदि राज सुख मिला तो उन्हें ग्लानि क्यों? वे प्रसन्न थे, अतिशय प्रसन्न।

श्रृंगार-कमरे में दाढ़ी बनाते समय दर्पण में अपने निखरे रूप को देखकर उन्होंने सोचा––'एक रात के जीवन के अमृत रस ने उनकी आयु के कम-से-कम पन्द्रह साल कम कर दिये। स्फूर्ति और कान्ति जो उनके मुखमण्डल पर यौवन की तरुणायी में थी वह साफ छाया में फिर झलक रही थी। वैतरणी-संसार के सुख दुःख की लहरें––हँसते-हँसते ही पार करनी चाहिए। इसी में पुरुषत्व है। जब वैतरणी की लहरों में डूबना-उतराना है ही तो जितना सुख से, मनोरंजन की सृष्टि करते हुए पार किया जाय, उतना ही उन लहरों की प्रतिष्ठा है। और उतना ही अपने स्वयं की भी महत्ता है। क्या उचित है, क्या अनुचित, क्या 'कु' है, क्या 'सु'––बुराई, भलाई की मीमांसा ऋषियों के समय से आज तक नहीं हो पायी। देश-काल और वातावरण के अनुसार पाप-पुण्य की परिभाषाएँ बदलती रही हैं। उचित, 'सु', वही है जो प्रसन्नता का कारण बने और जिससे किसी दूसरे को मानसिक या शारीरिक क्लेश न हो। 'बीरा की कोई हानि भी क्या संभव है?'––उन्होंने दर्पण की अपनी छाया से पूछा।

'नही'—उत्तर था, 'दासी है, राज परिवार की। परपरा से यही उसका धर्म चला आया है। वह नही तो कोई और उसके पराग-मधु का उपभोग करता।' 'नहीं', बाबू रूपकिशोर के मन ने कहा, बीरा उन्ही के लिए बनी थी। बिल्वमाला को उनकी प्रेम-परिणीता होना था और बीरा को उसकी दासी बनकर उनकी भोग्या होना था। नियतिवाद, दर्पण की छाया ने भाव को भाषा दी।

कितनी प्रसन्न थी बीरा, सम्पूर्ण हृदय से उसका उत्सर्ग-समर्पण था—सोचा बाबू रूपकिशोर ने। बाबू रूपकिशोर के मन ने कहा कि उनकी अनुभवी ऑखो ने उन्हे धोखा कदापि नही दिया।

माधुरी की नीचे आवाज सुनायी पडी। 'अगर माधुरी और बाद मे करुणा को ऐसी परिस्थितियॉ मिले ?'—दर्पण की छाया ने पूछा।

एक बार तो मन मे उठी आशका से बाबू रूपकिशोर कॉप उठे। लेकिन ऐसा सम्भव कब था ? कदापि नही—मन ने ही कहा, 'बीरा की अपनी मान्यताएँ थी, उसके 'कु'-'सु' की मर्यादा का वातावरण दूसरा था। माधुरी करुणा की सामाजिक मर्यादाएँ अलग थी। दोनो समाजो के वातावरण अलग-अलग थे—उनका सामजस्य कल्पनातीत था, कम-से-कम निकट भविष्य मे। शायद कभी दासी-प्रथा मिट जाय, मानवता एक-दूसरे के भार से त्राण पा जाय, तब शायद मर्यादाएँ सबकी समान हो जाये। लेकिन अभी नही। कदापि नही, उनका मन चीत्कार कर उठा। बाबू रूपकिशोर सोचते रहे कि आदि काल से तो मानव स्वतत्र हुआ नही। क्या कभी हो सकेगा ? निश्चित ही उनके जीवन-काल मे और उनके बच्चो के जीवन-काल मे तो मानवता को वह मुक्ति, जिसे वह सोच रहे थे, मिलेगी नही। फिर जब यही क्रम है तो उनका आचरण कदापि अनुचित नही। एक माने मे उनका रानी और बीरा के साथ का आचरण जीवन की पूर्णता का समादर था। उसमे किसी का अहित नही था—उन्होने सोचा।

दर्पण की छाया से मानो फिर प्रश्न उठा, 'क्या इससे जान्हवी का मानसिक या शारीरिक भी, कोई अहित नही ?' उसका अपना स्थान है, जिसकी उपेक्षा कब सम्भव थी। उस स्थान की मर्यादा को उन्होने न कभी कम किया और न कभी करेगे—उन्होने निश्चय किया। लेकिन प्रश्न से बौखला गये बाबू रूपकिशोर।

स्नान करके कचहरी के कपडे पहन जब बाबू रूपकिशोर नीचे नाश्ता के लिए खाने के कमरे मे पहुँचे तो माधुरी अपनी काफी प्याले मे ढाल रही थी।

"बाबूजी, आपके लिए भी काफी बनाऊँ ?"—उसने पूछा।

"हॉ बेटा।"—वह माधुरी को देखते रह गये। पूर्ण यौवन की सतह पर खडी थी माधुरी। शिष्ट थी, उसमे सौष्ठव था, पैतृक गम्भीरता थी। अच्छा ही होगा और जो होगा वह उनके परिवार और समाज के अनुकूल ही होगा—यह भाव बाबू रूपकिशोर के मन मे उठा जिससे वे प्रसन्न हुए।

नाश्ता समाप्त कर बाबू रूपकिशोर प्रसन्न मन दफ्तर के कमरे मे आये। सेठ घासीराम प्रतीक्षा कर रहे थे।

"जगमोहन अब तक मुझसे मिलने नही आया।"

"वह मिर्जापुर चला गया था, आ गया है। आज-कल मे ही मिलने आयेगा।"

"आज आपने कैसे कष्ट किया ?"

"कुछ नये किस्म की कश्मीरी साडियॉ नमूने मे आयी है। कुल चार थी। दो कलक्टर साहब के घर दे आया हूँ। दो बहू जी के लिए लाया हूँ।"

"धन्यवाद सेठ साहब, श्रीमती तनेजा की बात और है। हम मजदूर पेशा लोग है। मेहनत करते है, उसका उचित पारिश्रमिक लेते है। अपने मुवक्किलो से हम ऐसा व्यवहार नही रखते।"

"आपही का हमे भरोसा है वकील साहब, हम गैर कब है ?"

"नही सेठ जी, मुकदमा जब लडूँगा तो जी-जान से उसमे भिड जाऊँगा। अभी साडियो की जरूरत नही। आपने नाहक तकलीफ की।"

वकील साहब दूसरे काम मे लग गये। लाला घासीराम उदास मुँह चले गये।

अरविन्द आ गया।

"आज मुख्तार साहब वाला मुकदमा है"—उसने कहा।

"हॉ, वही देख रहा था। मुख्तार को सजा हो जायगी, होनी ही चाहिए।"

"सारे वकील-समुदाय की इज्जत मिट्टी मे मिल जायगी"—अरविन्द ने कहा।

"अरविन्द, वकालत का पेशा बडा कठिन है। अपने पर कठोर अनुशासन की इसमे अपेक्षा है। [illegible] थे। दो कश्मीरी साड़ियो का उपहार

लाये थे। मैंने उनसे साफ-साफ कहा कि जब वकील मुकदमा लेता है तो ईमानदारी से मेहनत करता है। मुवक्किल का काम अपना समझता है। काम की वह फीस लेता है। कम या अधिक फीस मुकदमे की गुरुता और उसमें सम्भावित मेहनत पर निर्भर रहती है। वकालत के पेशे का एक नैतिक स्तर होता है। उससे नीचे गिरना नहीं चाहिए। मुख्तार ने यही किया। उसके दलाल तो सब जानते हैं, कचहरी को घेरे रहते हैं। इस मुकदमे में तो अदालत के नाम पर उसने दो हज़ार रुपया लिया और स्वयं खा गया। मैंने मुकदमे के हर पहलू पर ग़ौर किया है। अदालत कहीं से भी भागीदार नहीं नज़र आती और न इसका कोई सबूत है। और अगर बात में कोई सच्चाई भी हो तो मुख्तार को इतना नीचे नहीं गिरना था।"

"सुना है कि मुख्तार साहब की एक साली है, बी० ए० में पढ़ती है। उसका श्रीवास्तव के यहाँ आना-जाना है।"—अरविन्द ने बताया

"सम्भव है। लेकिन इससे मुकदमे पर कोई असर नहीं पड़ने का। उल्टे अगर यह बात प्रकट हो गयी तो मुख्तार के खिलाफ पड़ेगी। साफ हो जायगा कि इस परिचय की आड़ में मुख्तार ने रुपये हड़पने की कोशिश की।"

"श्रीवास्तव की शोहरत अच्छी नहीं।"—अरविन्द ने फिर विशेष भाव से कहा।

"शोहरत और सबूत दो अलग-अलग चीज़ें हैं। न्याय सबूत माँगता है—ठोस सबूत। मुख्तार ने अपने मुवक्किल धनपत से रुपये लिए। धनपत के भाई गनपत के सामने रुपये लिये गए। धनपत ने रोकड़ से उस दिन दो हज़ार रुपये निकाले। मुख्तार के मुंशी से धनपत के साले ने बात तय की। उसी दिन मुख्तार ने सहकारी बैंक में अपने खाते में हज़ार रुपया जमा किया। उस तारीख के दो दिन पहले मुख्तार ने दो सौ रुपये बैंक में जमा किये थे। औसतन तीन-चार सौ रुपये वह हर माह जमा करते थे। मैंने उनके मुकदमों की कई महीनों की फेहरिश्त भी देखी। अधिक-से-अधिक पाँच सौ की औसत मासिक आमदनी उस फेहरिश्त से बनती है। फिर एक हज़ार रुपया जमा करने का जो मुख्तार ने कारण बताया है कि उतना उनकी पत्नी के पास था, वह लचर है। पुलिस की रिपोर्ट है कि उसी दिन मुख्तार साहब ने पाँच सौ रुपये का बिल भी चुकाया। मेरी राय में तो जज मुख्तार को कड़ी सजा देगा।"

"श्री गुप्ता जज पर सिफारिश पहुँचायी गयी है। शायद कडा रुख न ले।"

"असम्भव ? एक तो गुप्ता अदालत की कुर्सी पर न्याय के अलावा सब कुछ भूल जाता है, दूसरे अपराध की गम्भीरता के विरुद्ध कोई कारण या परिस्थिति नही है। गुप्ता चाह कर भी, अगर सिफारिश की बात सही भी हो, सजा की कडाई मे कमी नही कर सकता। वह न्यायप्रिय, जैसा होना चाहिए, वैसा जज है। मुख्तार साहब को कम-से-कम दो साल का कठोर दण्ड मिलेगा।"

"मुख्तार साहब ऊपर से तो बिलकुल आदर्श आदमी जान पडते थे।"

"हर आदमी आवरण के नीचे नगा होता है।"—बाबू रूपकिशोर हँस कर बोले।

फिर उन्होने कहा, "अरविन्द, यह हमेशा याद रखने की बात है कि वकालत का पेशा दुधारी तलवार है—प्रेम की तरह। बडी कठोर साधना, सहजज्ञान और अध्ययन की इसमे जरूरत पडती है।"

"आप फिर मुख्तार की ओर से बहस नही करेगे ?"

"नही। मैने बार एसोसिएशन से बाबू उमाशकर से बहस कराने के लिए कह दिया है। उनका विश्वास है कि मुकदमे मे गुजाइश है। लेकिन मै ऐसा नही समझता। जो हो, बाबू उमाशकर अनुभवी और योग्य है। वे पूरी कोशिश करेगे।"

बाबू रूपकिशोर जब कचहरी पहुँचे तो मुख्तार साहब उनके कमरे मे प्रतीक्षा कर रहे थे।

मुख्तार साहब ने आर्त्त स्वर मे निवेदन किया, "बारह बजे मुकदमा पेश होगा। अगर आप दया कर बहस करते।"

बाबू रूपकिशोर ने शालीनता से जवाब दिया, "बाबू उमाशकर तैयार है। अपनी बहस मे वह कुछ भी उठा नही रखेगे।"

"अकारण ही मुसीबत मे फँस गया। आप तो जानते ही है।"

"अब इस सोचने से कोई लाभ नही। बात आगे तक की है।"

"मैं आपकी राय लेना चाहता था। धनपत मुकदमा वापस लेने की दरख्वास्त देने को तैयार है। मुझे व्यर्थ ही इसके लिए उसे दो हजार देने पडेगे। क्या उसकी दरख्वास्त से मुकदमा खारिज हो सकता है ?"

वाबू रूपकिशोर हँस कर बोले, "सेशन का मुकदमा वापस कैसे होगा ? फिर सरकार ने मुकदमा चलाया है। धनपत तो केवल गवाह है। मेरी राय मे तो ऐसा न करे। बात आपके खिलाफ बैठेगी।"

मुख्तार साहब उदास मन चले गये। बाहर बरामदे मे मुख्तार की पत्नी साली, लडके, लडकियाँ शोक से भरे एक बेंच पर बैठे थे। आखिरी उम्र मे मुख्तार साहब ऐसी भयकर विपत्ति मे फँस गये। सारा परिवार दु ख से कातर था। क्या हो, क्या न हो, इसकी आशका थी।

श्री सिह, सरकारी वकील आ गये। पान का डब्बा खोलकर बढाते हुए बोले, "तुम बहस नही कर रहे हो ?"

"आज तुम्हारा दिन है।"—बाबू रूपकिशोर ने हँस कर कहा।

"अपने शहर का मामला है। मुख्तार साहब पुराने परिचित हैं। सरकार की ओर से कानपुर के शुक्ला बहस करेगे।"—थैली से पतौखी निकालते हुए श्री सिह ने बताया।

"तब तो मुख्तार की जमानत भी नही होगी।"

"नही भाई, जमानत के समय तुम आ जाना। बडी-बडी सिफारिशें आई है। मैने कह दिया है कि जमानत मे औपचारिक विरोध के अलावे मै जोर नही दूँगा।"

"कौन बडी सिफारिश आई है ?"—बाबू रूपकिशोर ने भेद-भाव से मुस्करा कर पूछा।

शरारत की मुस्कान से श्री सिह ने बताया, "श्रीवास्तव गरीब कह रहा था। देखा नही, श्रीवास्तव की कुजी बाहर बेंच पर बैठी है।"

बारह बजे जब जज की अदालत मे मुख्तार साहब वाले मुकदमे मे बहस हो रही थी, बाबू रूपकिशोर अपने अतीत की स्मृतियो मे मँडरा रहे थे। बी० ए० के विद्यार्थी, गरीब अवस्था, अकेले रहते थे। अपने हाथ से रोटी बनाते थे। पडोस मे जो ठाकुर की परचून की दुकान थी, उससे सौदा लेते थे। दो आने का चावल, एक आने की दाल, पैसे का नमक, पैसे का बुका ममाला, दो आने की लकडी, दो आने का आटा, कई दिनो के लिए काफी होता था। आलू आध आने का सेर भर

आता था। सबेरे दाल-भात और रात को रोटी-तरकारी बना कर वह खाया करते थे। न चाय, न नाश्ता, न दूध। तन-पेट साथ चल ही जाते थे। ठाकुर, ठिगना सा बुड्ढा––पचास पचपन की उम्र का आदमी था। लेकिन था रंगीन तबियत का। बालों में खिजाब लगाता था, मूँछे नुकीली रखता था, बण्डी लहरदार पहनता था। उसकी स्त्री, पता नहीं कि वह विवाहिता थी या कैसी, तीस-पैंतीस से अधिक की नहीं थी। वही अधिकतर दुकान पर बैठती थी। बाबू रूपकिशोर का सौदा-सुलफ खरीदते-खरीदते उससे परिचय हो गया था। स्नेह का भाव रखती थी वह उनके प्रति। लेकिन इनका भाव उसकी षोड़सी कन्या रूपा से था। दसवीं पास कर एफ० ए० में पढ़ती थी। जब यह दुकान पर पहुँचते किसी-न-किसी बहाने वह अन्दर से बाहर आ जाती, इनसे पढ़ने-लिखने की बात करती। स्वभाव-शील में मुहल्ले भर में बाबू रूपकिशोर अच्छे माने जाते थे। ठाकुर ने रूपा से कहा था, "कभी-कभी अपनी मुश्किलें उनसे हल करा लिया कर, पढ़ लिया कर।" वहीं दुकान में बैठ कर कभी-कभी तब उसे पढ़ा भी देते थे, बाबू रूपकिशोर। एक दिन शाम को दिन छुपे वह रोटी बनाने के लिए आटा गूँध रहे थे। आटा गूँध चुकने पर मालूम पड़ा कि तरकारी छौंकने के लिए कड़ुवा तेल नहीं है। शीशी लेकर ठाकुर की दुकान पर पहुँचे, पैसे का तेल लेने के लिए। दुकान में भी उस दिन तेल ख़तम हो गया था। ठाकुर की स्त्री से उन्होंने कहा, "तरकारी छौंकने जा रहा था।"

"आज ही तेल चुक गया। घी लेना हो तो ले लें।"––उसने कहा। घी खाना, उन जैसे ग़रीब विद्यार्थी के लिए आदत खराब करनी थी, दाल में तो घी उन्हें मुअस्सर नहीं था। घी तो तभी नसीब होता था जब भाई-भावज छुट्टी में आते थे। बोले, "नहीं, आलू है, उबाल कर सादा भर्ता बना लूँगा।" और वापस चले आये।

घर आकर रोटी बनाने बैठे ही थे कि रूपा आ गयी––अँचार लेकर। बैठ गई।

पूछा, "क्या बना रहे हो?"

हँस कर कहा बाबू रूपकिशोर ने, "दिखाई नहीं पड़ता?"

वह बैठी हँसती रही। फिर बोली, "लाओ, मैं तुम्हारी रोटी सेंक दूँ। मगर मेरे हाथ का खाओगे?"

रसोई तब वह किसी के हाथ की बनी या छुई खाते नही थे। उत्तर मे केवल हँस कर वह मौन रह गये।

रोटियाँ हाथ से जब पो ली, तब तक रूपा बैठी रही। बाबू रूपकिशोर अस-मजस मे पडे। चौके से बाहर आ गये। कुछ कहने ही जा रहे थे कि रूपा ने उनका हाथ पकड कर उठाया और अपने वक्ष पर रख दिया। ठीक-ठीक ऐसा ही हुआ था। बाबू रूपकिशोर की आँखो मे वह क्षण आ उतरा। वह डर से काँप गये, लेकिन रूपा उनसे लिपट गयी। बाबू रूपकिशोर की चढती जवानी थी। अचानक बिजली जैसे मार कर किसी को बेकाबू कर दे, बाबू रूपकिशोर विवश हो रूपा की रक्तिम मधुरिमा का रस पी गये। जीवन की पहली प्रणय-क्रीडा खेल-खेल मे अप्रत्याशित घट गयी। फिर जब रूपा चली गयी तब बाबू रूपकिशोर का मन ग्लानि से डूबने लगा, ललाट पर पसीना टपकने लगा। रोटी फिर उन्होने सेकी नही। एक अजीब भय से भरे मकान बन्द कर किले की ओर घूमने चले गये। रात को देर से, जब सारा मुहल्ला-पडोस सो चुका था, वह सहमे-सहमे घर लौटे। रोटियाँ सिकने को तैयार रखी थी। रूपकिशोर नहाये, गुँधा आटा खराब न हो जाय, इसलिए चूल्हा जला कर उन्होने रोटियाँ सेकी। लेकिन मन का भय मिटा नही था। रोटी उनसे खायी नही गयी। रात भर वह उथल-पुथल मे रहे, सो भी नही सके।

दूसरे दिन कालेज जाने के लिए ठाकुर की दुकान के सामने से ही निकलना पडता था। दूसरा कोई रास्ता नही था। कालेज जाना ही था। बाबू रूपकिशोर आँखे चुराये चल पडे। दुकान के सामने पहुँचे ही थे कि रूपा भी स्कूल जाने के लिए निकली। सामना होते ही क्षण भर के लिए रूपा ठिठकी। फिर भृकुटि नचा मद मुस्कान के साथ उसने नमस्ते के लिए अपने हाथ उठा लिये। लाज मे सनी उसके चेहरे की आभा से उसका हार्दिक आभार प्रकट हो रहा था, जीवन का अमृत-रस पाने के लिए। लेकिन बाबू रूपकिशोर बिना उधर मुँह फेरे ही—ठीक याद था उन्हे—तेज कदमो से आगे बढ गये। लेकिन मन मे समाया भय जाता रहा। ठाकुर या उसकी स्त्री या अन्य किसी ने उनके और रूपा के कृत्य को जाना नही, न कोई शक ही किया—इस भाव से वे आश्वस्त हुए।

फिर भटक खुल गया। रूपा को वह अधिक दिलचस्पी से पढाने लगे। हर शाम

दुकान पर आकर पढा जाते। और रूपा भी जब कभी मौका मिलता, किसी-न-किसी बहाने उनके पास आ जाती, मधु-सचय के लिए ।

फिर एक दिन मुहल्ले भर मे शोर हुआ कि ठाकुर की लडकी कही भाग गयी। उन्होने भी सुना। जैसे थे, एक धोती लपेटे, भागे-भागे ठाकुर की दुकान पर पहुँचे। पड़ोसियो की भीड लगी थी। दुकान पर ठाकुर सर पटक-पटक कर रो रहा था। उसकी स्त्री मूर्छित हो रही थी। मुहल्ले-पडोस वाले धीरज दिला रहे थे। रूपकिशोर स्तभित खडे रहे।

कुछ दिनो के बाद पता चला कि रूपा एक क्लर्क के साथ भाग कर कही चली गयी। यह भी मालूम हुआ कि वह ठाकुर की सगी लडकी नही थी। ठाकुर कही से उसे बचपन मे ही ले आया था। अपनी लडकी जैसा पाला-पोसा, बडा किया, पढाया लिखाया। किसी-किसी ने यह भी कहा, "ठाकुर की अपनी नजर उस पर बुरी थी। इसलिए रूपा भाग गई।" दूसरो का कहना था कि ठाकुर और उसकी स्त्री ने रोने-धोने का बहाना दिखाने के लिए बनाया था। मोटी रकम लेकर उसने स्वय रूपा को कही बेच दिया, रूपा की इच्छा के खिलाफ।

आज अचानक अपने किशोर वय की धुँधली स्मृतियो मे रूपा की याद बाबू रूपकिशोर को तडपा गयी। कहाँ होगी रूपा अब—सोचा उन्होने। क्षण भर को उनका मन रूपा के भाव मे बह कातर हो उठा। रूपा—जिसने उन्हे जीवन मे सर्व-प्रथम अमृत-रस का बोध कराया वह जहाँ भी हो, सुखी रहे, बाबू रूपकिशोर ने मन-ही-मन कामना की। फिर बाबू रूपकिशोर अपना वर्तमान भूल अतीत में ऐसे लीन हो गये जैसे उसी मे वह आज भी हो।

रूपा के बाद उनके जीवन मे फिर कोई अद्भुत घटना नही घटी। प्रेम की अनुभूति के चक्कर आदि मे वे विद्यार्थी-अवस्था मे प्रयत्नपूर्वक नही पडे। वे एक सरल और शीलवान विद्यार्थी थे। अपनी परपरा और सस्कार से वे काफी अनुदार और धार्मिक वृत्ति के थे। मिलना-जुलना भी उनका विशेष नही था। उनको अपने अभाव ग्रस्त विद्यार्थी-जीवन मे इन सबका अवकाश ही नही था। रूपा का प्रकरण एक अनहोनी घटना थी, जो हो गयी। बाद की एक धुँधली स्मृति भी मन मे उभरी। उनके पडोस मे एक एकाउण्टेट साहब रहते थे। किसी

बैंक मे काम करते थे। उनकी एक लडकी थी। बी० ए० मे पढती थी। नाम था सुधा। बाबू रूपकिशोर तब वकालत के दूसरे वर्ष मे थे। बहुत दिनो से, प्राय साल भर से, आते-जाते सुधा सामने पड जाती थी। शाम-सुबह जब वे घूमने निकलते, सुधा अपने मकान के फाटक पर खडी दिखायी पडती जैसे उनकी बाट जोह रही हो। वे आँखे बचा कर चले जाते थे। आज सोच रहे थे कि अगर उन्होने उस समय सुधा के भाव को जरा भी बढावा दिया होता तो शायद वह स्वय सुधा के प्रेम मे पड जाते। ऐसी स्थिति हो गयी थी।

एक बार दद्दा और भाभी आये थे। सुधा आ कर घण्टो घर मे भाभी के पास बैठी रही। जब तक वह वहाँ रही उनका मन उद्विग्न रहा। लेकिन जैसी तब उनकी आचार-सहिता थी, वे सुधा की ओर अग्रसर नही हुए।

एक दिन रात के ग्यारह बजे वह कही से घर लौट रहे थे। सुधा अपने मकान के सामने बिजली के प्रकाश मे आ खडी हो गयी। सडक से सटा ही उसका मकान था। सामने ही उसका पढने का कमरा था। शायद उनका आना जान कर ही वह सहन की बत्ती जला बाहर निकल आयी। उन्होने बिजली की रोशनी मे सुधा का चेहरा, चेहरे पर का भाव, साफ-साफ देखा। वे सिहर उठे थे। पर बिना रुके तेज कदमो से अपने घर मे चले गये थे।

दूसरे दिन एकाउण्टेण्ट साहब की छोटी लडकी काति घर के सामने मिल गई। बच्ची थी, आठ दस साल की। कहा था उसने, "रूपा से तो आप कितना मिलते थे। हम लोग तो जैसे काँटे हो।" कह कर हँसती हुई वह भाग गयी थी। साफ था की काति बिना समझे किसी के रटाये हुए शब्द बोल गयी थी। बाबू रूपकिशोर काति की बात से काँप उठे थे। इसलिए नही कि, उन शब्दो का मन्तव्य अनुचित था। काँपे इसलिए थे कि जिस बात को वह अत्यन्त ही गोपनीय समझते थे वह सुधा को क्यो कर मालूम हुई ? उस दिन भर उनका मन बहुत सशकित रहा। फिर एक और अजीब बात हुई। उस दिन जब सुधा को उन्होने देखा, पहली बार उसके प्रति उनके मन मे भावनाएँ आयी। उस दिन से सुधा की ओर उनके दिल मे कुछ झुकाव पैदा हो गया था। उससे विवाह-सम्बन्ध भी हो सकता था। लेकिन विवाह के मामले मे वह पूर्णतया दद्दा पर निर्भर

थे। उनका अपना कोई अस्तित्व उस विषय मे था नही। वे सुधा से विमुख ही रहे, यद्यपि कालक्रम से सुधा की टीस ने मन मे घर कर लिया था। फिर सुधा की शादी हो गयी। पडोसी के नाते उन्होंने शादी मे बारात के स्वागत-सत्कार, खिलाने-पिलाने मे काफी काम किया था। जब सुधा पति के साथ बिदा हो रही थी तब वह भी एक ओर खडे थे। सुधा पहले तो पति के साथ कुछ कदम आगे बढी। फिर पीछे मुडकर हाथ जोडकर एक विशेष भाव से उसने उन्हे बिदाई का नमस्कार किया। सुधा का वह विशेष भाव से नमस्कार उसके पति से भी अलक्षित नही रहा था। पति ने भरपूर नयनो से उन्हे उसी क्षण देखा था।

बाबू रूपकिशोर अतीत की स्मृतियो मे बह रहे थे। सोच रहे थे कि जीवन की डगर पर कितने जाने-अनजाने राही मिले, बिछुडे। कहाँ होगे वे अब !

वर्तमान मे आते ही उनका मन विषाद से भर गया। सोचा उन्होंने,—'मेरे ही जीवन मे इतने अनुभवो का समावेश होना था या जीवन का क्रम ही यही है, प्रत्येक का चाहे वह पुरुष हो या नारी ?' प्रश्न सरल होकर भी कठिन था। और जो कुछ समझ मे आ रहा था, वह यह था कि वैतरणी की लहरो से सबको जूझना पडता है। कुछ उसका आदर करते है, कुछ उसमे बह जाते है, जिसका जितना साहस हो। आवरण के नीचे सभी नगे है—सब नर-नारी एक जैसे ही है।

अतीत और वर्तमान की ऊहापोह से घबरा कर बाबू रूपकिशोर ने चाय मँगायी। चाय पी रहे थे जब अरविद ने आकर कहा, "पाँच वर्ष का कठोर कारावास हुआ है। मुख्तार साहब अदालत मे ही गिरफ्तार कर लिए गये है। जमानत पेश है।"

बाबू रूपकिशोर ने सुन्न भाव से सुना। तब तक एक अधेड वय-की नारी ने एक पुरुष के साथ कमरे मे प्रवेश किया। हाथ जोडकर उसने कहा, "मुख्तार साहब मेरी लडकी के ससुर है। आप दया कर उनकी जमानत करा दे। जमानत पेश है।" वकील साहब को उस नारी-स्वर मे जाने क्या आह्वान मिला कि वे उठ खडे हुए और भाग कर जज की अदालत मे पहुँचे। बाबू उमाशकर बहस कर रहे थे, "निर्णय के विरुद्ध अपील उच्चतम न्यायालय मे एक सप्ताह मे दाखिल कर दी जायगी, बहुत से ऐसे कानूनी तर्क हे जिन पर अपील के स्वीकार हो

जाने की आशा है । ऐसी हालत में अपील के फैसले तक जमानत अवश्य स्वीकार होनी चाहिए ।"

श्री शुक्ला, कानपुर के वकील ने सरकार की ओर से उत्तर में बहस करते हुए कहा, "अपराधी पर दोष साबित करार दिया गया है । अपराधी ने, जैसे एक मछली पूरे तालाब को गन्दा करती है, वैसे ही सारे वकील-समुदाय पर कलंक लगाया है। अपील का अपराधी को अधिकार है। लेकिन अपील से अपराधी के छूट जाने की कोई सम्भावना नहीं । फिर अपराधी उच्च न्यायालय में जमानत की दरख्वास्त दे सकता है। कठोर कैद की सज़ा के बाद जमानत का निर्णय उच्च न्यायालय पर छोड़ना ही समीचीन होगा ।"

बाबू रूपकिशोर उठ खड़े हुए, "श्रीमान् के बहुमूल्य समय को अपराधी की ओर से एक मिनट के लिए बरबाद करूँगा । मुझे निवेदन करने की आज्ञा हो ।"

"आपका वकालतनामा होना चाहिए"—श्री शुक्ला ने एतराज़ किया ।

"वकालतनामा अभी दाख़िल किया जा रहा है"—बाबू रूपकिशोर ने कहा ।

"निवेदन करने की आज्ञा है"—श्री गुप्ता जज ने गम्भीर शब्दों में कहा ।

"श्रीमान्", नम्रतापूर्वक अभिवादन कर बाबू रूपकिशोर ने कहा, "विद्वान सरकारी वकील ने ज़मानत की अर्ज़ी उच्चतम न्यायालय में पेश करने की सलाह दी है। हम उनके परामर्श के लिए आभारी हैं। लेकिन जब इसी अदालत को जमानत स्वीकार करने का अधिकार है, तब हमें इसी अदालत से अपना उचित अधिकार माँगने में कोई हिचक नहीं। अपराधी को श्रीमान् ने दण्ड का भागी समझा है । उच्चतम न्यायालय में कुछ कानूनी तर्कों पर अपील की बात अभी की गयी है। श्रीमान् के अनुभव की यह बात है कि कानून के विवेचन में विद्वान् न्याया-धीशों में ईमानदारी का मत-मतान्तर सदा सम्भव है । यदि उच्चतम न्यायालय से अपील स्वीकृति होगी, जैसा कि हमारे पक्ष का विश्वास है तो वह कानूनी कारणों से ही होगी, जो सर्वथा सम्भव है । अपराधी यहाँ के बार एसोसिएशन का प्रमुख सदस्य है। किन परिस्थितियों में उसने अपराध किया, अपील किन आधारों पर प्रस्तुत की जायगी, उसका विस्तार से इस समय विवरण देना श्रीमान्

का बहुमूल्य समय बरबाद करना होगा। पर जहाँ तक मेरी जानकारी है कोई कानून ऐसा नहीं जिससे यह ज़मानत इसी अदालत द्वारा स्वीकार न कर ली जाय। अपराधी के भाग जाने की संभावना में ही श्रीमान् जमानत अस्वीकार कर सकते हैं। लेकिन श्रीमान् स्वयं सबसे अधिक जानते हैं कि उसकी सम्भावना कदापि नहीं। अपराधी यहीं का निवासी है, यहीं उसकी सारी जायदाद है। अपील के फैसले के बाद, यदि फैसला उसके पक्ष में नहीं हुआ तो अपराधी को श्रीमान् द्वारा निर्णीत दण्ड जेल में भुगतना ही पड़ेगा। उच्चतम न्यायालय पर ज़मानत का निर्णय छोड़ना इस मुकदमे में न्याय-संगत नहीं होगा। श्रीमान् ज़मानत स्वीकार करते समय यह प्रतिबन्ध लगा सकते हैं कि एक निश्चित अवधि के भीतर अपील दायर कर दी जाय। पर ज़मानत को स्वीकार करना ही न्यायसंगत है।"

श्री शुक्ला उठ खड़े हुए, "मुझे उत्तर में निवेदन करने का अधिकार है। मेरे विद्वान् दोस्त ने कानून के सिद्धान्तों का प्रश्न उठाया है। मुझे नज़ीरें पेश करना आवश्यक है। श्रीमान् से मैं कल तक की मोहलत की प्रार्थना करता हूँ।" बाबू रूपकिशोर ने हँस कर निवेदन किया, "श्रीमान् यह विद्वान सरकारी वकील का नया पैंतरा है। वे अपराधी को कल तक जेल में हर हालत में रखना चाहते हैं। श्रीमान् तो कानूनविद् हैं। विद्वान सरकारी वकील ने कानपुर में भी श्रीमान् की ख्याति को सुना ही होगा। श्रीमान् की यह सदा नीति रही है कि न्याय में देर करना अन्याय के बराबर है। अगर अपराधी को न्याय मिलना ही है जिसका उसे अधिकार है, तो एक रोज़ के लिए उसे जेल भेजना कहाँ तक न्यायसंगत है? मैं श्रीमान् को स्मरण दिलाने के लिए सुप्रीमकोर्ट की नवीनतम नज़ीर, जो इस मुकदमे पर हर तरह से लागू होती है, पेश करता हूँ। इस नज़ीर के अनुरूप ज़मानत स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई चारा ही नहीं है और इस नज़ीर के बाद की किसी नज़ीर का मुझे ज्ञान नहीं।"

श्री गुप्ता ने प्रस्तुत नज़ीर को देखा और श्री शुक्ला को उसे देते हुए पूछा, "कुछ उत्तर में आपको निवेदन करना शेष रह जायगा?"

श्री शुक्ला ने नज़ीर को पढ़ा और मौन बैठ गये। जज ने जमानत स्वीकार कर ली। मुख्तार साहब अदालत में ही गिरफ्तारी से मुक्त कर दिए गए।

उस दिन बड़ी शाबासी मिली वकीलों से बाबू रूपकिशोर को। श्री शुक्ला ने भी अदालत के बाहर प्रेम-भाव से उनसे हाथ मिला कर उनकी सराहना की।

चार बज रहे थे। अपने कमरे में बाबू रूपकिशोर अकेले थे। मुख्तार साहब आये। कृतज्ञता प्रकट करते हुए रो उठे। मुख्तार साहब के जाते ही वह अधेड़ स्त्री उसी पुरुष के साथ आयी जिसके साथ कुछ समय पहले आयी थी। पुरुष ने आभार प्रकट किया। बाबू रूपकिशोर को भावमग्न देख वह पुरुष नमस्कार कर बाहर चला गया। अधेड़ स्त्री खड़ी रह गयी। एकाएक बोली, "हम आपके कितनी ऋणी हैं, वकील साहब! हमारे परिवार वर्ग की इज्ज़त का सवाल था। आपका ऋण हम कभी चुका नहीं सकते।"

"मैंने कहीं आपको देखा है"—बाबू रूपकिशोर ने दिमाग को अतीत में दौड़ाते हुए कहा।

"कभी हम-आप पड़ोसी थे। मैं रूपा हूँ।"

बाबू रूपकिशोर सन्न रह गये। क्या कहें, क्या नहीं, सोच ही रहे थे कि गर्दन झुका कर रूपा ने आभार का प्रणाम किया और कमरे के बाहर हो गयी।

वकील साहब अतीत में खो-से गये। काफी देर के बाद अरविंद के साथ कचहरी से घर की ओर चले।

अरविंद ने वकील साहब को इतना चिन्तित कभी नहीं देखा था इसलिए उससे पूछे बिना नहीं रहा गया, "आप का चेहरा पीला पड़ गया है। स्वास्थ्य तो ठीक है?"

"स्वास्थ्य ठीक है। मुख्तार साहब वाले मामले को लेकर विपत्ति में पड़ गया।" वकील साहब अरविंद से झूठ नहीं बोले।

: ८ :

बाबू रूपकिशोर नाश्ता कर रहे थे जब जान्हवी ने कहा, "जेठ जी डाक्टर दत्ता से मिले थे।"

"क्यों?" पत्नी की उक्ति का मतलब जानने के लिए बाबू रूपकिशोर ने उत्कंठा से पूछा क्योंकि किसी से किसी का मिलना कोई अजब बात नहीं थी।

"बाबू शिवकुमार की पत्नी आयी थीं। पूछ रही थीं—'क्या श्रीमती दत्ता से आप लोगों की खटक गयी है?' मैंने पूछा, 'बात क्या है?' तब उन्होंने बताया, श्रीमती दत्ता कह रही थीं कि इतने बड़े वकील हैं, दूसरों के लिए न्याय दिलाते हैं, लेकिन स्वयं बड़े भाई को उसके घर से निकाले बैठे हैं। पचीस रुपये की नौकरी लड़का करता है, पचहत्तर पेंशन है। इस मँहगाई में इसकी समात ही क्या है? बड़े भाई डाक्टर साहब से किसी छोटी-मोटी नौकरी की सिफारिश के लिए आये थे। शायद किसी स्कूल में कोई एवज़ी क्लर्की की जगह खाली है। पचास रुपये महीना है। तीन महीने की जगह है। इस उमर में उनको नौकरी ढूँढनी पड़ रही है।"

डाक्टर दत्ता के पिता और वकील साहब के पिता में मैत्री थी—बाबू रूप-किशोर यह जानते थे। पिता के समय का सम्बन्ध दोनों पक्ष निभाते चले आ रहे थे।

पत्नी से उन्होंने कहा, "दद्दा को हम रोक कैसे सकते हैं!"

पत्नी बोलीं, "उन्हें नौकरी करने की जरूरत थोड़े ही है। केवल हम लोगों को नीचा दिखाने के लिए ऐसा कर रहे हैं। इससे तो अच्छा था कि हम यह मकान बनवाते ही नहीं। जब इतना खर्च किया तो एक अलग ज़मीन ले ली होती।"

बाबू रूपकिशोर बड़े भाई के आचरण के बारे में पत्नी से इधर हमेशा कुछ-न-कुछ सुनते आ रहे थे। एक बार तो उन्होंने भी सोचा था कि दद्दा गरीबी का प्रदर्शन न कर हमीं से जो चाहते ले जाते। पत्नी की बात उन्हें सच ही जान पड़ी कि बड़े भाई को छोटे भाई की बदनामी ही अभीष्ट है। मन में रोष भर गया उनके। वे बोले, "जो चाहे वह करें। इस तरह मकान के भागीदार वह नहीं बन सकेंगे। मकान के बनवाने का जब हिसाब मालूम होगा तब पता चलेगा।" उन्होंने फिर कहा, "इन सब बातों को सुनकर व्यर्थ की परेशानी बढ़ती है। न सुनो, न कहो, तभी अच्छा हो।"

जान्हवी ने पति के भाव से प्रसन्न होकर कहा, "मैंने तो बाबू शिवकुमार की पत्नी से कह दिया कि किसी ने उन्हें जाने के लिए थोड़े ही कहा, वे स्वयं

ही चले गये। उन्हें अपनी कमाई का जोम है। मैंने यह भी कहा कि सबको अपनी-अपनी मुसीबत है, वकील साहब के तो चार बच्चे हैं।"

उक्ति पर विहँस कर बाबू रूपकिशोर ने कहा, "भविष्य में आने वालों को नहीं गिनाया ?"

जान्हवी शरम से गड़ कर बोली, " कैसी बात करते हो ? " फिर चुप हो गयी।

बाबू रूपकिशोर ने कुछ दिनों से यह सोच रखा था कि सुरेश को औद्योगिक प्रशिक्षण स्कूल में भर्ती करा देंगे। नव्वे रुपये के करीब वहाँ की पढ़ाई का खर्च था। एक साल का कोर्स था। उन्होंने सालभर के लिए खर्च को उठाना तय कर लिया था जिससे सुरेश का जीवन एक दिशा में निश्चित हो जाय। इससे उन्होंने सोचा था कि बिगड़ा सम्बन्ध भी सुधर जायगा और बड़े भाई अपनी जमा-पूँजी के बल पर शेष जीवन अच्छी तरह काट लेंगे। भाई के लिए कोई अच्छा किराये का मकान भी वे लेना चाहते थे। अपने या पड़ोस वाले मकान में कुछ तो पत्नी की मनोवृत्ति के कारण और कुछ इस कारण कि दोनों के जीवन-स्तर में आकाश-पाताल का अन्तर है, उनका न आना ही वह श्रेयस्कर समझते थे। एक साथ रह कर रोज़-रोज़ आपस में कलह, मनमुटाव होगा। इससे अकारण ही उनका और परिवार-भर का जीवन विषण्ण बन जायगा—ऐसा उन्होंने सोचा था। लेकिन पत्नी की आज की बात उन्हें लग गयी। अपने रोष के भाव को बिना दबाये उन्होंने कहा, "करने दो जैसा वह चाहते हैं। मैं क्यों अपने को उनके लिए जिम्मेदार समझूँ। एक ही से अनेक होता है ? समाज में हर एक को अपने ढंग से रहने का अधिकार है। व्यक्ति का सुख ही समाज का सुख है। मेरा अपना जीवन है, उनका अपना।"

लेकिन पत्नी द्वारा प्राप्त समाचार ने उनके मन के अन्तराल को झकझोर दिया और बाबू रूपकिशोर के चेहरे पर विषाद की एक काली रेखा खिंच आयी।

माधुरी कालेज जा रही थी। माधुरी ने आकर माँ से कहा, "आज ज्योत्स्ना ने बुलाया है। उसके साथ ही कालेज से उसके घर चली जाऊँगी। देर हो जाय शायद आने में।"

ज्योत्स्ना माधुरी की कक्षा मे थी, उसकी एकमात्र सहेली थी, डाक्टर दत्ता की पुत्री थी ।

बाबू रूपकिशोर क्रोध-भरे स्वर मे बोले, "वहाँ जाने की कोई जरूरत नही ।"

माधुरी के साथ जान्हवी भी उनके स्वर से सहम उठी । माधुरी कहना चाहती थी 'जाने का वादा कर चुकी हूँ ।' पर ठगी-सी खडी रही । कुछ बोली नही । पिता का इतना कठोर स्वर उसने पहले कभी नही सुना था । जान्हवी ने माधुरी का भाव लक्ष्य कर पति के स्वर की कठोरता को कम करने के लिए माधुरी से कहा, "चली जाना, पर जल्दी आ जाना ।"

बाबू रूपकिशोर ने पत्नी द्वारा बताये गये श्रीमती दत्ता के प्रसग के कारण ही जाने की मनाही नही की थी । ज्योत्स्ना का बडा भाई कुमार जो बी० एस-सी० मे पढ रहा था, बचपन से ही माधुरी का मित्र था । आज तक इस मित्रता मे बाबू रूपकिशोर को कभी कुछ खोटा नही दिखायी पडा था । आज अचानक उनके मन मे न मालूम क्यो यह भाव आया कि माधुरी का ज्योत्स्ना के घर जाना कुमार से मिलने का एक बहाना है । पत्नी की बात को तो उन्होने नही काटा । लेकिन गम्भीर स्वर मे ही कहा, " करुणा को भी साथ लेती जाना ।"

करुणा का स्कूल माधुरी के कालेज के साथ ही था । उसको साथ ले जाने मे कोई आपत्ति की बात नही थी । लेकिन माधुरी को लगा कि पिता की स्वीकृति मन से नही निकली है । इसका कारण वह समझ नही सकी । पिता का स्वर सुनते ही उसने ज्योत्स्ना के यहाँ न जाने का निश्चय किया था । पर वह यह कह नही सकी । भारी मन से वह कालेज चली गयी ।

माधुरी के जाने के बाद जान्हवी ने पति से कहा—"नाहक लडकी को दुखी कर दिया ।" बाबू रूपकिशोर भी सोच रहे थे कि जो कुछ हुआ, अच्छा नही हुआ । माधुरी बडी ही सुशील और समझदार लडकी थी । अपने को वह अभी से अच्छी तरह पहचानती थी । उससे किसी प्रकार की आशका करना सर्वथा अनुचित था । पत्नी से उत्तर मे उन्होने कहा, "बडी हो गयी है । दोस्त-दुश्मन उसे पहचानना चाहिए । श्रीमती दत्ता बुराई करती फिरती है । ऐसे लोगो से अलग रहना ही अच्छा है ।"

"उस बेचारी को यह बात मालूम ही कहाँ ? मैने तो तुमसे कहा, ज्योत्स्ना उसकी सहेली है। दोनो एक ही कक्षा मे पढती है, बचपन से आना-जाना है। फिर बडो की बात से बच्चो को क्या ?"

बाबू रूपकिशोर स्वय अप्रतिभ थे। वे मौन रहे। कुछ देर बाद दफ्तर मे नीचे आ गये। दफ्तर मे जगमोहन बैठा था।

उठकर उसने नमस्कार कर कहा, "पिता जी ने कहा कि आपने बुलाया है।"

"हाँ जगमोहन, तुमसे मुकदमे की कुछ जरूरी बाते करनी थी। मै आशा करता हूँ कि तुम यह बात जानते हो कि तुम्हारे विरुद्ध लगाया गया अभियोग गम्भीर है।"

"जी"—उसने लज्जा-भरे स्वर मे उत्तर दिया।

"और तुम शिक्षित और काफी अनुभवी भी हो। शायद तुम जानते हो कि ऐसे सकट मे—उन्होने जगमोहन को गौर से देखा—सच-सच बताना ही बचाव का एक मात्र रास्ता है।"

"जी हाँ, मै बिलकुल निरपराध हूँ, झूठे फँसाया गया हूँ।"

"मै यह नही पूछना चाहता। मै तो तुम्हे यह बताना चाहता हूँ कि सकट के समय मे ईश्वर से, डाक्टर से और वकील से झूठ नही बोला जाता है।"

"मैं सच ही कह रहा हूँ कि मै निरपराध हूँ।"

"मैं यह चाहूँगा कि जो कुछ भी तुम्हारा इस मामले से सम्बन्ध हो या जो कुछ भी इस सम्बन्ध मे तुम जानते हो, वह मुझे सच-सच बताओ।"

"मेरा इस मामले से कोई सम्बन्ध ही नही है"—जगमोहन ने मुँह बना कर कहा।

बाबू रूपकिशोर ने उसकी ओर ध्यान से देखते हुए पूछा, "तुम्हारी कार का घटना मे प्रयोग हुआ और वह घटना-स्थल पर देखी गयी, यह कहाँ तक सच है ?"

जगमोहन बगले झाँकने लगा। कार उसी की थी। आवेश से बोला, "मै

उस दिन सिविल लाइन के होटल मे चाय पीने गया था। कार बाहर खडी कर मै होटल के अन्दर चाय पी रहा था। जब चाय समाप्त कर बाहर आया तब कार वहाँ नही थी। शायद कोई दोस्त मजाक मे ले गया हो, यह सोच कर मै सामने सिनेमा मे चला गया। सिनेमा के खतम होने पर कार मुझे उसी जगह खडी मिली, जहाँ मैने उसे पार्क किया था। मैने कोई विशेप ध्यान ही नही दिया, घर चला आया।"

"जिस दिन की तुम बात कह रहे हो, उस दिन तेरह अप्रैल था। तुम ठीक-ठीक सोच कर बताओ कि उस दिन अपनी दुकान से तुम कितने बजे निकले, कहाँ गये और किस-किस रास्ते गये ?"

"मै कही नही गया, दुकान मे साढे तीन बजे निकला। चार बजे सिविल लाइन पहुँचा, होटल मे चाय पी। कार न देख सिनेमा चला गया। सिनेमा के बाद मै सीधे घर वापस चला आया।"

"किस-किस रास्ते तुम सिविल लाइन गये, यह नही बताया ?"

वकील साहब सोच रहे थे कि जगमोहन को अपराध की गुरुता का कोई आभास नहीं।

"सीधे रास्ते गया। कही रुकने की या कही और जाने की बात ही नही थी।"

"चौक से कार द्वारा सिविल लाइन दस मिनट के भीतर पहुँचा जा सकता है।"

"जी, उस दिन रास्ते मे भीड बहुत थी।"—जगमोहन का उत्तर था।

"अच्छा जाने दो। जब तुमने कार नही देखी तो किस दोस्त पर शक हुआ जो कार कही ले गया हो ?"

"किसी खास पर शक नही हुआ। मैने सोचा कि कोई भी परिचित मित्र मजाक मे चला ले गया होगा। कार की चाभी उसी मे लगी रह गयी थी।"

"एक बात और बताओ," प्रश्न के उत्तर का अनुमान वकील साहब ने लगा लिया था। फिर भी उन्होने पूछा, "सुखजीत को तुम कब से जानते थे ?"

"सुखजीत को मै कतई नही जानता था। पहले-पहले जब अखबार मे उसकी हत्या के बारे मे पढा, तब इस नाम का भी पता चला।"

"सुखजीत के पिता को भी तुम नही जानते जिसकी कटरे मे दुकान है।"

"जी नहीं।"

"अच्छा कोई भी कारण तुम बता सकते हो जिस लिए पुलिस ने इस चार लाख निवासियो के शहर मे तुम्ही पर कत्ल का सन्देह किया ?"

"मै स्वय हैरान हूँ! शायद चोरी की गयी कार के कारण पुलिस ने मुझे इससे जोड लिया।"

वकील साहब ने तब साफ-साफ कहना उचित समझा, "जगमोहन, तुम्हे जरा भी आभास नही कि जैसी परिस्थिति मे सुखजीत का कत्ल हुआ है उसमे जुर्म का दण्ड केवल फाँसी है। यह साफ है कि तुम सच नही बोल रहे हो। अगर तुम यह समझ रहे हो कि पुलिस ने तेरह अप्रैल की तुम्हारी मिनट-मिनट की गति-विधि का अच्छी तरह पता न लगा लिया हो तो तुम घोर भ्रम मे हो। फिर सुख-जीत से तुम्हारा सीधे या किसी मित्र-परिचित के द्वारा अगर साधारण परिचय भी था तो पुलिस को इसका भी पता होगा। तुम्हारी कार सुखजीत को भगाने मे प्रयोग की गयी, भगाने के बाद कहाँ-कहाँ गयी और कैसे प्रयाग स्टेशन के नीचे गगा की कछार के उस कच्चे रास्ते पर पहुँची, सुखजीत का वहाँ कत्ल कैसे हुआ और कौन-कौन लोग उस समय कार मे थे, यह सब जानना तुम्हारे बचाव के लिए मुझे जरूरी है। सुखजीत से तुम्हारा परिचय था तो कितना था, यह जानना भी तुम्हारे बचाव के लिए अत्यावश्यक है। और यदि तुम इसलिए डर रहे हो कि सच बता कर तुम स्वय फँस जाओगे तो यह कोरा भ्रम है। हमारे पेशे की यह नैतिकता है कि हम अपनी जानकारी की बात कही प्रकट न करे। जो कुछ भी तुम मुझसे बताओगे वह मेरे अतिरिक्त और कोई नही जान पायेगा। सत्य को जान कर ही मै तुम्हे दोष-मुक्त करा सकता हूँ। कानून तो सबूत चाहता है। उसी सबूत को काटने के लिए मुझे सत्य को जानना जरूरी है। और अगर नही तो—जगमोहन को भरपूर नजरो से देखते हुए वकील साहब ने कहा—मुझे यह भी सोचने को बाध्य होना पडेगा कि इस मुकदमे को मै लूँ भी या नही ?

यह याद रखो, मेरा अनुभव है कि सच कही-न-कही से अवश्य प्रकट हो जाता है।"

"मुकदमा आप न रखेगे तो मै झूठे ही दोषी करार दिया जाऊँगा,"—जगमोहन हाथ जोड कर बोला। घबराहट मे उसके माथे पर पसीने की बूँदे चमकने लगी।

"तब तुम्हे मुझे ब्योरेवार सब कुछ सच-सच बताना होगा। लेकिन आज तुम्हारा मन ठीक नही नजर आता। तुम तेरह अप्रैल को कहाँ-कहाँ गये, किस-किस से मिले और जो कुछ मैने पूछा है उसका ठीक-ठीक ध्यान कर मुझे किसी दिन आकर बता जाओ, जल्दी ही। और अपने पिता जी को भी भेज देना। उनसे मै साफ-साफ कह देना चाहता हूँ कि तुमने अगर मुझे सब कुछ सच-सच नही बताया और किसी तरह का भी पर्दा रखा तो तुम्हारा मुकदमा मै नही लड सकूँगा।"

"नही वकील साहब, ऐसा न कहिये। मै अकारण ही फँस जाऊँगा।"—जगमोहन अत्यधिक घबरा गया।

"तब फिर सोचकर, अच्छी तरह ध्यान कर, मुझे इस घटना मे तुम्हारा जो कुछ भी हाथ हो या इसके बारे मे तुम जो कुछ भी जानते हो, उसे आकर बता जाओ। आज नही, आज तुम्हारा चित्त शात नही और अब मुझे भी जल्दी है।"

बाबू रूपकिशोर जब कचहरी पहुँचे तो अरविद उनके कमरे मे बैठा गौर से कुछ सोच रहा था।

"सुखजीत वाले कॉड पर काम कर रहे हो?"

"जी हॉ।"

"पुलिस का आरोप-पत्र कब तक आ जायगा?"

"पुलिस की अपनी अडचने है। यह देखिये"—एक कागज दिखाते हुए उसने कहा। बाबू रूपकिशोर सरसरी नजर से उसे पढ गये।

अरविद ने फिर कहा, "मै कोशिश मे हूँ कि सच्ची घटना के प्रमाण प्राप्त हो जायँ। पुलिस आरोप-पत्र तो अदालत को जरूर भेजेगी। ऊँचे अधिका-

रियो की नजर मे यह घटना है। आरोप-पत्र न भेजने मे पुलिस की बडी बद-नामी होगी ।"

बाबू रूपकिशोर ने कहा, "अब तो तुम स्वीकार करोगे कि वकील को किसी घटना के तथ्यातथ्य की जानकारी से कितना लाभ है ! तुमने काफी कठिन काम किया है। इस मुकदमे मे तुम्हारी फीस पाँच सौ रुपये होगी। मै सेठ से कह दूँगा ।"

अरविद, नया वकील, बाबू रूपकिशोर को कृतज्ञता के भाव से आँखे फाड़ कर आश्चर्य से देखता रहा ।

बाबू रूपकिशोर ने फिर कहा, "सगीन अपराध है। तीन आरोप तो कम से कम लगेगे ही। लडकी भगाने का, उसके साथ बलात्कार करने का और उसके कत्ल का। तुम्हारा पाँच सौ पारिश्रम ऐसे सगीन मुकदमे मे कुछ भी नही। मै तो पाँच हजार लेने की सोच रहा हूँ ।"

अरविद ने साहस कर पूछा, "लेकिन भगाने का और बलात्कार का अप-राध तो मुश्किल से साबित होगा ।"

"यह तो हमारे पक्ष की दलील होगी। सबूत पक्ष तो यही प्रमाणित करने की चेष्टा करेगा ।"

"सुखजीत की उम्र डाक्टर की रिपोर्ट के अनुसार बीस के लगभग की है। रति-क्रिया की भी वह अभ्यस्त बतायी गयी है ।"

"बलात्कार और भगाना केवल अल्पवयस्को का—अठारह वर्ष से कम वय वालो का—ही थोडे होता है। सहमति के विरुद्ध किसी को कही बहला-फुसला कर भी ले जाना और सहमति के विरुद्ध वयस्क से भी व्यभिचार करना भगाना और बलात्कार है। स्त्री की अवस्था पचास क्यो न हो उसकी सहमति जरूरी है। कानून मे केवल विवाहिता पत्नी की सहमति पर जोर नही है। यह भी क्यों नही है, मै नही जानता, शायद समाज का कल्याण हो यदि ऐसा भी हो जाय ।"

"सुखजीत का चरित्र, जैसा पहले अनुमान था, अच्छा नही था ।" अर-विद ने अपने मन की शका को कानूनी दृष्टिकोण से व्यक्त किया।

"उसका कोई प्रभाव अपराध की गुरुता पर नही पडता। वेश्या से भी यदि सहमति के बिना व्यभिचार किया जाय तो वह कानूनन बलात्कार है।"

बाबू रूपकिशोर ने फिर कुछ सोचकर कहा, "जिन धारणाओ पर तुम काम कर रहे हो उनको गोपनीय रखना अत्यावश्यक है।"

"इसकी याद दिलाना मेरे प्रति अन्याय है। मैने आपसे कानून और वकालत की व्यावहारिक शिक्षा ली है।"

"मै जानता हूँ अरविद, तुम मे प्रतिभा है। लेकिन लालच बडे-से बडे को कमजोर बना देता है। मै कभी कमजोर नही हुआ—यह मै विश्वास पूर्वक नही कह सकता। तुम तो अभी प्रारम्भिक सीढियो पर हो। इस कचहरी के मछली बाजार मे आज दलाली, छल और कपट का जोर है। अध्यवसाय, निष्ठा और नैतिकता से ही तुम ऊपर उठ सकते हो। इसलिए कह दिया। आशा है तुमने बुरा नही माना है।"

"आपके विश्वास को कभी खोऊँगा नही—इस बात का वचन देता हूँ।"

"हाँ," प्रसग बदल कर बाबू रूपकिशोर ने कहा, "आज जगमोहन आये थे। साफ लन्तरानी बता रहे थे। अभी अपराध की गुरुता का उनको एहसास नही।"

"क्या कह रहे थे?"

"इस सम्बन्ध मे किसी भी जानकारी से उन्हे इन्कार था। कार को बता रहे थे कि कोई चुरा कर ले गया था।"

"तुम्हारी रिपोर्ट के सेठी कौन है?" बाबू रूपकिशोर ने आगे पूछा।

"कटरे मे ही रहते है। सफेद पोश गुण्डा है। अफीम का अवैध व्यापार करते है। जगमोहन की रँगरेलियो के साथी है। सुखजीत के घर आना-जाना था। सुखजीत उनको चाचा कहा करती थी।"

"उनकी उम्र क्या है?"

"पैंतीस के लगभग के है। पर बने रहते है पच्चीस के।"

"श्री रामनरेश कहाँ के रहने वाले है?"

"प्रतापगढ के निवासी है। अपने पद का शहर की नर्तकियो मे दुरुपयोग

करने के लिए कई वार पहले भी इनके खिलाफ आवाज उठ चुकी है। जगमोहन से पढते समय का साथ है।"

"कार कौन चला रहा था ?"

"यह अभी तक ठीक पता नही चल पाया है। वैसे तो कार के लिए सेठ ने ड्राइवर रखा है। पर उस दिन वह दुकान पर ही था। जगमोहन गाडी स्वय चला कर लाया था।"

"जगमोहन गाडी मे था या नही ?"

"इसका पता अभी नही चल पाया है कि घटना के समय जगमोहन गाडी मे था या नही।"

"अरविद, यह जानकारी बहुत जरूरी है कि उस समय जगमोहन था कहाँ ? अगर गाडी मे था तो गाडी वही चला रहा था या कोई दूसरा ? और इसका पता भी कि सुखजीत से उसकी जान-पहचान कव से, किस हद तक की थी और कभी वे साथ-साथ कही आते-जाते दिखायी पडे थे या नही, जरूरी है। तुम्हारे विचार से सुखजीत काफी चालू किस्म की थी। अगर यह बात पुष्ट हो जाय तो यह जानना पडेगा कि उसके विशेष परिचित कोन-कौन थे। हाँ, इसकी तफतीश किसके हाथ मे है ?"

"तफतीश कोतवाल स्वय कर रहे है ?"

"कोतवाल तो नेक और ईमानदार स्वभाव का है।"

"ऊपर से दबाव होगा। यहाँ के कप्तान को तो आप जानते ही है।"

"अरविद, तुम्हारा अव तक का काम तारीफ के योग्य है। प्रमाण भी इसी लगन से एकत्र हो, तभी घटना पर पूरा प्रकाश पड सकेगा। इसलिए प्रमाण आवश्यक है और यह भी आवश्यक है कि जगमोहन सहयोग दे।"

"सेठी की गिरफ्तारी आज हो गयी।"

"अच्छा !"—आश्चर्य से वावू रूपकिशोर ने कहा।

तब तक मुशी जी ने आकर वताया कि कोई मुकदमा पेश है। वावू रूपकिशोर मुकदमे की पैरवी मे चले गये।

कचहरी छोडने के पहले वावू रूपकिशोर अरविद से मिल लेना चाहते थे।

अरविंद किसी अदालत मे मुकदमे की पेशी मे था। पन्द्रह मिनट बाद आया। अरविंद से बाबू रूपकिशोर ने कहा, " क्या कोई ऐसा विश्वसनीय आदमी मिल सकेगा जो रामनरेश की गतिविधि पर नजर रखे ? अपने असर से वह तफतीश को सफलता पूर्वक मोड सकता है, जिससे कठिनाइयाँ आ खडी होगी। फिर पुलिस ऐसे अकाट्य प्रमाण गढ देगी कि मुकदमा कुछ-का-कुछ बन जायेगा।

लाला घासीराम को भी सतर्क कर देना है कि पुलिस से उन्हे डरने की कोई जरूरत नही। भरसक वे पुलिस से मिले-जुले भी नही। ये लाला लोग भी अद्‌भुत जन्तु है। पुलिस के डर से ये अपने पाँव मे कुल्हाडी मार सकते है।"

"कितना इस देश का दुर्भाग्य है कि आजादी के इतने बरसो बाद भी पुलिस का रवैया अभी तक गदा है।"— अरविंद ने कहा।

" बहुत कारण है इसके। पुलिस का ही दोष नही। समाज है, आर्थिक परिस्थितियाँ है, विषमता है। फिर पुलिस भी तो हमी मे से है। जब सारा देश ही अनैतिकता पर तुला हुआ है तो पुलिस का ही क्या दोष ?"

" इसका कभी अत होगा ?"—अरविंद ने पूछा।

" अत होगा, लेकिन समय लगेगा। सामाजिक और आर्थिक विषमता के मिटते ही व्यक्ति का प्रौढ रूप प्रकट होगा जिससे समष्टि स्वस्थ और सुदृढ होगी। लेकिन यह राजनीति की बात है जो अपना विषय नही।"

बाबू रूपकिशोर ने फिर कहा, " सम्भवत मै एक सप्ताह के लिए दिल्ली जाऊँ। यहाँ मुकदमो को देख लेना। जहाँ जरूरत हो तारीख बढवा लेना। अब तुम स्वतत्र रूप से काम कर सकते हो। विश्वास के साथ आगे बढो।"

घर पर माधुरी और करुणा अभी वापस नही आयी थी। बाबू रूपकिशोर कचहरी के कपडे बदल चाय पर बैठे ही थे कि महेश ने बताया, " राजा रमणीमोहन आये है।"

बाबू रूपकिशोर ने बाहर तक आकर राजा रमणीमोहन का स्वागत किया।

" माफ कीजिये आपका समय नष्ट करने आ पहुँचा। आपको असुविधा तो नही हुई ?"—राजा रमणीमोहन ने हाथ मिलाते हुए कहा।

"चाय पी रहा था। एक प्याला चाय आप भी ले।"—कह कर बाबू रूपकिशोर राजा साहब को चाय की मेज पर ही ले आये। जान्हवी रसोई मे चली गयी।

राजा साहब ने कहा, "आप जैसे प्रतिभाशाली वकील के यहाँ टेलीफोन होना आवश्यक है।"

प्याली मे राजा साहब के लिए चाय ढालते हुए बाबू रूपकिशोर हँस कर बोले, "टेलीफोन सर दर्द बन जाता है, जान-बूझ कर नही लगवाया।"

चाय की चुस्की लेते हुए राजा साहब काम की बात पर आये, "मै सवेरे श्रीमती तनेजा से मिला था। उनकी बडी इच्छा है कि जगमोहन बरी हो जाय। आशा क्या है?"

प्रश्न का उत्तर न देकर बाबू रूपकिशोर ने पूछा, "श्रीमती तनेजा की जगमोहन के लिए इतनी दिलचस्पी क्यो है?"

"लाला घासीराम मोटा आसामी है। श्रीमती तनेजा को तो आप जानते ही है। अगर जगमोहन बरी हो गया तो उनकी पाँचो घी मे है, मालामाल हो जायेगी। वह चाहती है कि साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे। आपसे उन्हे बहुत आशा है। कहती थी कि आपके हाथ मे मुकदमा है, जगमोहन छूट ही जायगा। इसी बहाने उनका घर भर जायेगा। सेठ आज कल बडी सेवा मे है।"—हस कर राजा रमणीमोहन ने कहा।

राजा साहब ने बात साफ-साफ कही। बाबू रूपकिशोर को कुछ पहले से ही अनुमान था। लेकिन राजा साहब क्या केवल श्रीमती तनेजा की इच्छा ही प्रकट करने आये थे या कुछ अपनी भी कही सिद्धि थी, यह राजा साहब की बातो मे बाबू रूपकिशोर को ठीक-ठीक समझ मे नही आ रहा था।

गरम समोसो की तश्तरी राजा साहब को बढाते हुए बाबू रूपकिशोर ने पूछा, "व्यवसाय कैसा चल रहा है राजा साहब?"

"व्यवसाय कुँवर प्रद्युम्न नारायण—राजा साहब के बडे लड़के—के जिम्मे है। मै तो, आप जानते ही है, अब नेताओ की श्रेणी मे आ गया हूँ! समय ही ऐसा है। इस साल शहर कमेटी का लोग मुझे प्रधान बनने को विवश कर रहे है। मै इन झंझटो मे पडना नही चाहता। इन लोगो के साथ नेतागिरी का मतलब अपने

को निहायत ही निम्न स्तर पर गिरा लेना है। लेकिन जैसी बयार बहे पीठ तब वैसी कीजे——जीवन मे सफलता पाने के लिए यह जरूरी हो जाता है।"

"आप ऐसे सामाजिक अगुआ को अपनी पद-मर्यादा के लिए धन-सचय भी तो आवश्यक ही है।"——बाबू रूपकिशोर ने सहज भाव से राजा साहब की प्रतिक्रिया जानने के लिए कहा।

"हॉ, इसका ध्यान तो रखना ही पडता है।"——राजा साहब ने एक बार बाबू रूपकिशोर की ओर चाय का घूँट पीते हुए देखा। उनके चेहरे पर कोई विशेप भाव न देख कर उन्होने कह ही डाला, "कुँवर प्रद्युम्न अहमदाबाद के 'रेयन' की एजेसी ले रहे है। श्रीमती तनेजा कहती है वे लाला को तैयार कर एजेसी कुँवर प्रद्युम्न के नाम करा देगी।" फिर हँस कर राजा साहब ने कहा, "श्रीमती तनेजा की भी गुप्त रूप से पत्ती रहेगी—चार आने की।"

बाबू रूपकिशोर को आकाश अब साफ-साफ दिखायी पडा। हँस कर बोले, "राजा साहब, मै निश्चित तो कुछ नही कह सकता। पर वकील हूँ। जब फीस लेता हूँ तो पूरी कोशिश करता हूँ।"

राजा रमणीमोहन ठीक-ठीक वकील साहब का भाव समझ नही सके। लेकिन उनकी बात उन्हे प्रिय लगी। चाय समाप्त हो रही थी। उन्होने वकील साहब से पूछा, "आज क्लब की ओर आ रहे है?"

"आज तो नही आ सकूँगा।"

"क्लब आया करे बाबू रूपकिशोर। क्लब का आना भी हम लोगो के लिए व्यवसाय है। आपको भी तो बहुत मौका मिलेगा।"

किस ओर राजा रमणीमोहन का इशारा था, यह बाबू रूपकिशोर सोच ही रहे थे कि राजा साहब ने बिदा चाही। बाबू रूपकिशोर राजा साहब को उनकी गाडी तक छोड आये। राजा साहब ने वडे ही प्रेम से इस बार वाबू रूपकिशोर का हाथ दबाया।

राजा रमणीमोहन के जाने के बाद बाबू रूपकिशोर को श्री तनेजा की एक चिट्ठी का ध्यान आया जिसमे बार एसोसिएशन से उन्होने भ्रष्टाचार मिटाने मे सहायता मॉगी थी। गिरगिट-सा रॅग बदले राजा रमणीमोहन के शुद्ध श्वेत

भेष-भूषा का भी उन्हे ध्यान आया। यही लोग इस देश के नव निर्माण का बीडा उठाये है—वे सोचते रहे ?

साढे सात बजे माधुरी और करुणा आयी। करुणा ने बताया, "ज्योत्स्ना जीजी के घर उनकी कक्षा की सहेलियो की पार्टी थी। खूब नाच-गाना रहा, वडा मजा आया।"

खाना खाते समय सुबह की तीक्ष्णता को कम करने के लिए बाबू रूपकिशोर ने माधुरी से पूछा, "पार्टी कैसी रही ?"

माधुरी ने गम्भीर भाव से उत्तर दिया, "मै जा नही रही थी, कक्षा की लडकियाँ मुझे विवश कर ले गयी।"

माधुरी के मन की तीक्ष्णता अभी मिटी नही थी। बाबू रूपकिशोर को दुःख हुआ कि माधुरी को अकारण ही उन्होने सवेरे डाँट दिया।

महेश से उन्होने पूछा "तुम्हारी छमाही परीक्षा कब से है ?"

"अठारह दिसम्बर से शुरू होने वाली है।"

"दिल्ली से कुछ लाना तो नही है ?"

"दिल्ली कब जा रहे हो ?"—चौक कर जान्हवी ने पूछा।

"अभी तय नही है। सुप्रीम कोर्ट मे एक अपील है। तारीख पडने ही वाली है। शायद एक हफ्ते के लिए जाना पडे।"

"पिता जी, हम भी चलेगे"—केदार और करुणा एक साथ बोल उठे।

"अभी काम से जाने वाला हूँ, व्यस्त रहूँगा। कभी फुरसत से चलेगे। मै तुम लोगो के लिए बहुत सारी चीजे लाऊँगा और कोई खास चीज मँगानी हो तो कागज पर लिख देना।"—पत्नी की ओर देखते हुए उन्होने कहा।

जान्हवी ने कहा, "माधुरी के लिए घडी लेते आना। उसकी बहुत दिनो से इच्छा है।"

"कौन-सी घडी पसन्द है माधुरी बेटे ?"—बाबू रूपकिशोर ने अतिशय प्रेम का स्वर बना कर पूछा।

माधुरी की खिन्नता मगर मिटी नही थी। उसने जवाब दिया, "मुझे घडी नही चाहिए।"

"पिता से नाराज हो। मुझ से गल्ती हो गई।"—प्रेम से वाबू रूपकिशोर ने आर्द्र होकर कहा।

माधुरी का मन तब भर आया। खाना खतम हो रहा था। माधुरी उठ कर चली गई।

'माधुरी की नाराजी अभी मिटी नही।"—वकील साहब ने पत्नी से विनोद पूर्वक कहा।

"सयानी लडकी है, भावना-प्रधान है। जानते हुए भी, जो मन मे आता है कह देते हो। उसे बुरा लगा होगा। करुणा कह रही थी कि वह किसी तरह डाक्टर दत्ता के घर नही जा रही थी। ज्योत्स्ना और सहेलियाँ उसे खीच कर ले गयी।"

खाना समाप्त कर सब लोग उठ गये।

९

दिल्ली के प्रवास मे बाबू रूपकिशोर को एक सप्ताह की भरपूर छुट्टी मिली—दैनिक नियम और कचहरी के एकरस काम से। मन मे उमग-उल्लास था। बिल्वमाला और बीरा साथ थी।

वाबू रूपकिशोर के दो ससार थे, अन्य प्रवृत्तियो का जो उनके पेशे से सम्बद्ध थी, इसमे समावेश नही। उनका एक ससार विवाहिता पत्नी जान्हवी और बच्चो को लेकर था। दूसरा प्रेम-परिणय का, जैसा बिल्वमाला कहा करती थी, विल्वमाला और बीरा को लेकर था। जीवन-सगिनी दो या उससे अधिक हो ऐसा सृष्टि के आदि से अब तक कई महान पुरुषो के साथ रहा है। महाराज दशरथ की ही तीन रानियाँ थी। मर्यादा पुरुषोत्तम राम अपवाद थे। एक पत्नीव्रत का आदर्श स्थापित कर वे मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाये। योगीराज श्रीकृष्ण ने इसके विपरीत का उदाहरण प्रस्तुत किया।

बाबू रूपकिशोर की जान्हवी सामाजिक थी और बिल्वमाला व्यक्तिगत। बिल्वमाला से जो खेल शुरू किया था बाबू रूपकिशोर ने वह समय बीतने पर

केवल खेल नहीं रह सका। बिल्वमाला का उनके जीवन में, हृदय में, एक अपूर्व स्थान बन गया। बाबू रूपकिशोर ने अपने दोनों रूपों को मन से स्वीकार भी कर लिया। और कर ही क्या सकते थे ? उनकी हमेशा कोशिश रहती थी कि उनके दोनों संसार प्रसन्न रहें––दोनों में कभी किसी कारण से व्याघात न पैदा हो जाय और जीवन की सरसता जाती रहे। इसके लिए भी वे सतर्क रहते थे कि जान्हवी बिल्वमाला से उनके प्रगाढ़ सम्बन्ध को भाँप भी न सके। दिल्ली की यात्रा बाबू रूपकिशोर ने हवाई जहाज से की थी। एक दिन पहले बिल्वमाला और बीरा एक विश्वसनीय नौकर के साथ दिल्ली के लिए रेल से रवाना हुई थीं।

दिल्ली के एक आलीशान होटल में एक परिवार की तरह वे लोग ठहरे थे। सदियों की पुरातन दिल्ली में वर्तमान काल से पहले शायद व्यक्ति विशेष की गतिविधि उतनी अलक्षित न रहती हो जितनी अब थी, दिल्ली हिन्दुस्तान का ही नहीं, एक माने में विश्व का एक प्रधान केन्द्र है। जीवन की गति वहाँ अविराम, कोलाहल पूर्ण और स्वच्छंद है। व्यस्तता के जीवन में एक दूसरे को देखने-परखने का अवकाश ही वहाँ किसे ? बाबू रूपकिशोर के प्रवास के दिन बिल्वमाला के साथ स्वच्छंदता से ही बीत रहे थे। वे प्रसन्न थे, परम प्रसन्न। भूल गये थे कि वे वकील हैं ! बिल्वमाला की भी प्रसन्नता असीम थी। जेनरल के स्वर्गीय होने के बाद पहली बार वह प्रवास में बाहर आयी थी और जेनरल के स्थान की पूर्ति प्रेम परिणीत से था जो जेनरल से लाख गुना अधिक प्रिय था। मन में किसी भी अभाव का, आशंका का, खटका नहीं था। एक सप्ताह उसके जीवन का अपने प्रेमी के साथ निर्बाध बीतेगा; वह रस से, जीवन के राग से, सराबोर थी।

बिल्वमाला के मन में अपने जीवन के प्रति भी कहीं किसी प्रकार का संशय नहीं था। उसका जीवन, उसका प्रेम-परिणय, अधार्मिक है, इसकी वह कल्पना भी नहीं कर सकती थी। ऐसा सदा से होता आया है, होता रहेगा। जीवन का यही पवित्र मोल है––उसका यह निश्चित मत था। जान्हवी, धर्म की विवाहिता पत्नी, जिसे वह बहन मानती थी; का होना भी उनके सम्बन्ध की पवित्रता का द्योतक था। और बीरा-धीरा, यह सब रनिवास की परंपरा की शान थीं। उनको लेकर बिल्वमाला के मन में उलझन पैदा ही नहीं हो सकती थी।

लेकिन दिल्ली प्रवास मे यह देख कर कि वकील साहब बीरा की ओर अधिक झुके है, बिल्वमाला के मन मे एक बार हल्की-सी ईर्षा की आँच आयी। हस कर अपने मन के भाव को उसने टाल दिया। वकील साहब राजा तो थे नही, यद्यपि राज-सुख भोग रहे थे, कि रनिवास की परपरा-मर्यादाओ—मे वह पूर्ण परि-चित हो। उसने स्वय बीरा को सुलभ किया था, ऐसा उसे करना ही था। यही रनिवास का धर्म था। पहले, इतिहास मे, दासी रानी का कभी-कदा स्थान छीन चुकी थी। पर राज-पाट के बिना राज मे तो इसकी कल्पना भी हास्यास्पद थी और बाबू रूपकिशोर को वह सम्पूर्ण हृदय से प्यार करती थी। बाबू रूपकिशोर का प्रेम भी उसके प्रति अगाध था। बिल्वमाला निश्चित थी। उसका प्रेम-सरोवर शात, सुनिश्चित और अपरिमेय था।

कुतुब घूम कर लौटे थे। बिल्वमाला बोली, "तुम थके नजर आते हो, आराम कर लो, बीरा पॉव दबा देगी।"

बाबू रूपकिशोर ने एतराज नहीं किया। उस दोपहरी भर बीरा पॉव दबाती रही।

उस रात बिल्वमाला ने पूछा, "क्या हम और अधिक दिन दिल्ली या कही और इस तरह नही रह सकते ?"

"क्यो नही ? पर इस समय तो मुकदमे है, जाना ही है।"

"गाडी कब आ जायगी ?"

"कल आ रही है। तुम्हारे नाम ही उसकी रजिस्ट्री करा रहा हूँ।"

'जिसको अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया, वह रिक्शे पर चले और मै गाडी पर चलूँ ? नहीं, यह अधर्म है,' उसने सोचा और कहा, "गाडी की रजिस्ट्री तुम्हारे नाम होनी चाहिए।"

बाबू रूपकिशोर की इच्छा के एकदम विपरीत यह बात नही थी। लेकिन उन्होने कहा, "नही, हम-तुम क्या दो है ? गाडी तुम्हारे ही नाम रहेगी।"

बिल्वमाला ने प्रतिवाद किया जिसे बाबू रूपकिशोर माने नही।

[illegible] दूसरे दिन दोनो गाडी देखने गये। कई रग की गाडियॉ थी। निश्चय करना कठिन था कि किस रग की ली जाय। बाबू रूपकिशोर और बिल्व-

माला जब किसी निश्चय पर नही पहुँचे, तब रानी ने बीरा से पूछा, "अच्छा, तू ही बता । कौन रग तुझे पसन्द है ?"

हल्की स्लेटी रग की गाडी की ओर उसने इशारा किया । बाबू रूपकिशोर ने परिहास मे पूछा, "तुम्हे वह रग क्यो पसन्द है ?"

"रानी जीजी की पसन्द, मेरी पसन्द है ।"

बाबू रूपकिशोर अर्थ का अनर्थ समझ बैठे और बिल्वमाला हँस पडी ।

गाडी लेकर जब वे कम्पनी से बाहर निकले तो आनन्दातिरेक से बिल्वमाला और बाबू रूपकिशोर दोनो भरे थे । पीछे बैठी बीरा भी परम प्रसन्न थी—बाबू रूपकिशोर ने गाडी मे आगे लगे शीशे मे देखा ।

गाडी आने के उत्साह और प्रसन्नता मे सारी दिल्ली उन्होने घूम डाली, एक ड्राइवर रख लिया था । उसे इनाम दिया ।

गाडी आने की दूसरी शाम बाबू रूपकिशोर ने बिल्वमाला से कहा, "आज होटल मे नृत्य है । तुम भी चलना ।"

"जेनरल भी नृत्य के शौकीन थे । पर मै कभी साथ गयी नही । मुझे नृत्य आता नही ।"

नृत्य मुझे भी नही आता । देखने चलेगे ।"

रात को खाना खाकर बिल्वमाला के साथ बाबू रूपकिशोर नृत्य-हाल मे पहुँचे । हाल खचाखच भरा था । रग-बिरगे परिधानो मे युवक-युवती, सभी स्त्री-पुरुष, इन्द्रधनुष की छटा को हाल मे बिखेरते हुए पेय का पान कर रहे थे । जब बैंड बज उठा तब सैकडो जोडे हाल के प्रागण मे एक-दूसरे की कमर मे हाथ डाले नृ[illegible]-अवरोह मे द्रुत-विलम्बित गति से सगीत के समानान्तर थिरकने लगे । बडा ही मनोरजक और मनोहारी समा था । बाबू रूपकिशोर ने बेयरे से दो पेय का आदेश दिया ।

"दो क्यो ? मै सार्वजनिक स्थान मे थोडे पीऊँगी ।"—बिल्वमाला बोली ।

"मै तो तुम्हारे सग जनपथ पर भी रहता हूँ तो पूर्ण एकात का अनुभव करता हूँ । तुम्हारे अलावे कोई ध्यान ही नही रहता ।"—परिहास किया प्रेम पुलक से बाबू रूपकिशोर ने ।

"मै जानती हूँ, मेरा परम सौभाग्य है। लेकिन यहाँ मै पेय कैसे ले सकूँगी ?"—बिल्वमाला ने भी सरसता से ही उत्तर दिया।

"[illegible] नहीं है। [illegible]।"—हँस कर बाबू रूपकिशोर ने कहा। जो पति के स्थान पर है, उसका आदेश मान रानी ने पेय मे बाबू रूपकिशोर का साथ दिया।

बिल्वमाला ने जीवन मे पहली बार पश्चिमी ढग का नृत्य देखा था। उसका हृदय नृत्य की गति के साथ-साथ नाच रहा था। उसने कहा, "कितना मनोरजन है। कितने सुखी है ये जोडे।"

"एक शरीर की उष्मा दूसरे को शीतल जो कर रही है। रोमाच की अनुभूति विचार के जीवन से कही श्रेयस्कर है, वास्तविक है। एक हमारा समाज है, जैसे मुर्दा हो।"

"पर नृत्य तो अपने यहाँ के भी मनोहारी होते है।"—बिल्वमाला ने प्रश्न किया।

"हाँ, कला मे, रस के सृजन मे, शायद हमारे नृत्य बडे उच्च कोटि के है। लेकिन रोमाच की जो अनुभूति दो शरीरो के सामीप्य और परस-पुलक से होती है, वह हमारी नृत्य-शैलियो मे कहाँ ? दोनो का धरातल ही भिन्न है। थी कभी हमारी प्राचीन सस्कृति भी। हमारे रासलीला के नृत्य से ही पश्चिम को शायद इस नृत्य की प्रेरणा मिली। पर आज हम अपना सब कुछ भूल बैठे है। केवल भूले नही है—अन्धविश्वास और ब्राह्मणवाद।"

बिल्वमाला इतिहास बहुत नही जानती थी, पर प्राचीन सस्कृति का नये रूप से विश्लेषण सुन वह हँस पडी। बोली, "तुम्हारे इतिहास के शोध की प्रवृत्ति की दाद देनी पडती है।"

बाबू रूपकिशोर पेय और नृत्य की मधुरिमा के वातावरण से तरगित थे। उन्होने कहा, "कल तुमने राष्ट्रीय सग्रहालय मे उस मिट्टी की छोटी मूर्ति को नही देखा था। कितनी पुराने काल की थी। उसका [illegible] ललाट पर लटका हुआ बालो का कुण्डल, आजकल हालिवुड का नवीनतम फैशन है। प्राचीन भारत मे पश्चिम के अति आधुनिकतम सौन्दर्य प्रसाधन से कही अधिक

विकसित विन्यास थे। हम वास्तव मे अपने को भूल गये है। अन्धविश्वास मे इस जीवन के सात्विक उपभोग को भी बुरा मानते है।"

जीवन के उपभोग पर बिल्वमाला, जो स्वय तरग मे थी, बोल उठी, "चलो चले।"

कमरे मे आकर बिल्वमाला ने बीरा से जोधपुरी आसव का पेय मँगाया। आसव को गिलासो मे ढाला बीरा ने। बाबू रूपकिशोर की आँखे कमनीय बीरा पर टिक-सी गयी। जोधपुरी आसव ने बीरा की पहली रात की याद ताजा कर दी। बाबू रूपकिशोर की रगो मे विजली दौड गयी। नृत्य-हाल से आती हुई सगीत-ध्वनि उनके शरीर की मादकता को और अधिक प्रगाढ कर रही थी।

बीरा के जाने के वाद बाबू रूपकिशोर से विल्वमाला ने कहा, "बीरा तुम्हारे लिए अपनी बहन से झगडा कर बैठी।"

'क्यो, क्या बात हुई ?"

"एक दिन मैने धीरा से कह दिया कि जाकर तुम्हारे पाँव दबा दे। वह जाने के लिए तैयार हो रही थी। तुमने उमसे कहा था न कि किसी दिन पाँव दवाना। वीरा इस पर झगडा कर बैठी और वोली, "जेनरल साहब थे तो कभी मैने उनका पाँव दवाया था ?" धीरा ने कहा, "तब तुम दुधमुँही बच्ची थी। अब तो वकील साहब जेनरल साहव की जगह है। मै जाऊँगी।"

जब वह चलने को उद्यत हुई तो वीरा ने उसका हाथ पकड लिया और कहा कि अगर वह गयी तो बीरा अपना प्राण दे देगी। तुम्हारे सब काम वही करना चाहती है। तुम जादूगर हो, तुम्हारे जादू का असर सब पर है।"

'तुम पर भी ?"—वकील साहब ने प्रसन्न मन पूछा।

"मै तो तुम्हारी जन्म-जन्म की दासी हूँ। तुम्ही मेर जेनरल हो, अगर कभी यह समझ सको।"

प्रेम-परिणीत दोनो एक-दूसरे मे रात भर खोये रहे।

दूसरे दिन शाम को वकील साहव की आज्ञा ले बिल्वमाला अपनी किसी बुआ से जो दिल्ली मे ही रहती थी, मिलने गयी। बीरा को जानबूझ कर छोड गयी।

एकांत में बाबू रूपकिशोर ने बीरा से कहा, "तुम मेरे जीवन की प्राणधारा हो। तुमने मुझे वह सुख दिया जिसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था।"

"मेरा जीवन तो जीजी रानी को लेकर है।"——बीरा ने कहा। यद्यपि वह वकील साहब की बात से मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुई।

"क्या, तुम्हारा कोई अपना अस्तित्व नहीं ?"——बाबू रूपकिशोर ने पूछ लिया।

"नहीं, मेरा जीवन जीजी रानी को समर्पित है और उसे समर्पित है जिसने मुझे पहला पेय दिया था। लेकिन मेरा सौभाग्य जीजी रानी को ही लेकर है।"——बीरा ने अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए कहा। बाबू रूपकिशोर की अपने प्रति वह कमजोरी समझ चुकी थी।

जो हो; उस रात भर बाबू रूपकिशोर बीरा की संगीत-लहरियों में डूबे रहे——वह संगीत-लहरियाँ, जो साक्षात स्वर्ग से उतरी थीं और जिसके स्मरण मात्र से ही उन्हें अभिनव पुरुष होने का बोध होता था।

दिल्ली का प्रवास बीतने को आ रहा था। रानी प्रसन्न थीं, बीरा प्रसन्न थी और बाबू रूपकिशोर पृथ्वी से दूर, अन्तरिक्ष के कोण के किसी देवलोक में थे।

सात दिन बिताकर प्रेमी युगल ने आगरा जाने का निश्चय किया। ताजमहल की छाया में प्रेमपयोनिधि का उफान कुछ और ही होता है। गाड़ी थी ही। यह तय हुआ कि आगरे में रात बिता कर वे कानपुर तक कार से जायेंगे और फिर वकील साहब रेल से, जिससे प्रयाग में किसी पर इस पुनीत यात्रा का किसी तरह भेद न खुल जाय। बाबू रूपकिशोर 'स्थान भ्रष्टे न शोभन्ते' न्याय से अपने दोनों रूपों को अलग-अलग निबाहने में ही परम सुख की कामना रखते थे। उनके दोनों रूपों को कोई जान कर एक करने की चेष्टा न करे——यही उनका प्रयत्न था।

आगरे का ताज, पृथ्वी के पंकिल सागर में खिला हुआ शुभ्र कमल, प्रेमियों का तीर्थ है।

बिल्वमाला ने वहाँ कहा, "शाहजहाँ की सात रानियों में मुमताज एक थी!"

"शाहजहाँ का सच्चा प्रेम लेकिन मुमताज से ही था। तभी इस आश्चर्य-स्मारक का निर्माण बादशाह ने कराया। काश, मैं भी शाहजहाँ होता!"

—बाबू रूपकिशोर ने बिल्वमाला की ओर भरपूर नयनों से देखते हुए कहा।

"शाहजहाँ होते तो क्या करते ?"—समझ कर भी रानी ने पूछा।

"ऐसा स्मारक बनाता जो युग-युग तक हमारे-तुम्हारे प्रणय की याद दिलाता और जिसके आगे ताजमहल को दुनिया के लोग भूल जाते।"

रानी अचानक गम्भीर हो उठी और बोली, "जब मन मे भाव है तो वह दिन भी आयेगा।"

बाबू रूपकिशोर बिल्वमाला की उक्ति को समझ नही सके। पर आगरा ने उनके प्रेम मे नया रस भर दिया। फिर कानपुर और उसके बाद उनका सामाजिक घर।

घर पहुँचते ही बच्चो ने घेर लिया। ढेर-का-ढेर उपहार लाना बाबू रूपकिशोर भूले नही थे। बच्चे उपहार से खिल उठे। माधुरी के लिए कीमती कलाई घडी आई थी और जान्हवी के लिए अँगूठी वाली घडी। माधुरी इतनी सुन्दर घडी पाकर जरूर खुश हुई। पर जान्हवी ने अपने चेहरे पर उल्लास या आह्लाद का कोई भाव नही प्रकट किया। उसने पति से केवल इतना पूछा, "दिल्ली मे अच्छी कटी ?"

"तुमसे दूर अच्छी कैसे कटती ?"—रसिकता से बाबू रूपकिशोर ने जवाब दिया।

पत्नी ने परिहास किया, "मुखमण्डल की आभा तो कुछ और कह रही है।"

बाबू रूपकिशोर का मन चौका। लेकिन उत्तर मे उन्होने कहा, 'तुम्हे पास पाकर चेहरा भी आभामय हो उठता है।"

जान्हवी के मुख पर मुस्कान की एक रेखा खिच आई।

१०

जान्हवी ने एक दिन पति से पूछा, "जगमोहन वाले मुकदमे मे क्या होगा ?"

"कुछ कहा नही जा सकता ?"—बाबू रूपकिशोर ने हुक्के की कश खीचते हुए कहा।

"तुम जब दिल्ली गये थे, उसकी माँ आई थी। बहुत रो रही थी। शायद तुमने जगमोहन से कहा था कि तुम मुकदमा भी न लो।"

"हाँ, अगर मुझे जगमोहन का सच्चा किस्सा नही मालूम हुआ तो ऐसा मुमकिन है। जगमोहन का घटना मे कुछ सरोकार तो जरूर है, वरना पुलिस उसके पीछे क्यो पडती ?"

'शायद जगमोहन डर रहा हो कि अगर उसके मुँह से निकला तो सर्वविदित न हो जाय।"

"सच तो कभी छिपता नही, जान्हवी ! वह नही बतायेगा तो कही और से पता चल जायेगा। लेकिन जिस मुअक्किल को अपने वकील पर विश्वास नही, उसका मुकदमा, वह भी इतना सगीन, सफलता से लडा नही जा सकता। बचाव के दाँव-पेच तभी तैयार किये जा सकते है, जब सत्य मालूम हो। अपराधी ने किस परिस्थिति मे बाध्य हो कर, किस उत्तेजना मे, अपराध कर डाला, यह [illegible] बचाव के लिए जरूरी है। नही तो हर वकील को अपराधी को सजा ही दिलानी चाहिए।"

"अगर तुम मुकदमा नही लोगे तो उसकी माँ बेचारी मर जायगी। उन्हे बहुत दुःख है कि ऐसे कुकृत्य से जगमोहन का सम्बन्ध भी पाया गया। सेठ घासीराम तो सुना जगमोहन से बोलते ही नही है। उसकी माँ कह रही थी कि जब से यह मुकदमा उठा है तब से घासीराम तीनो काल की पूजा विधिवत् करते है और रात को केवल फलाहार करते है, अन्न उन्होने छोड दिया है।"

"प्रायश्चित्त तो जगमोहन को करना चाहिए था। उसके पिता का तो कोई अपराध नही। पर उनका दुःख मै समझ सकता हूँ। जमानत के समय मैने देखा था, उनका चेहरा बिलकुल पीला पड गया था।"

"उसकी पत्नी भी मन-ही-मन गल रही है। बेजबान बहू, कुछ कह तो पाती नही होगी।"—जान्हवी के भाव से यह प्रकट होता था कि सेठ घासीराम के परिवार मे उसे वडी सहानुभूति थी।

बाबू रूपकिशोर कुछ कहने ही वाले थे कि नीचे से किसी ने आवाज दी कि जगमोहन आये है। बाबू रूपकिशोर कपडे पहन नीचे दफ्तर मे आये।

"कहो जगमोहन, सब कुछ सोच-समझ लिया ?—प्रेम से ही वकील साहब ने पूछा ।

"जी हाँ, आप से कोई बात नही छिपाऊँगा ।"

"बडा अच्छा है। और इसका विश्वास रखो कि मुझसे तुम जो कुछ भी बताओगे, उसको कोई नही जान पायेगा। लेकिन सच कभी छिपता नही । वह कहीं-न-कहीं से जरूर प्रकट हो जाता है। अच्छा, तुम्हारा और सुखजीत का परिचय कैसे हुआ ?"

"सुखजीत की एक मित्र थी । उसका नाम न पूछिये । कालेज मे मेरे साथ थी। मेरा उसका घनिष्ठ सम्बन्ध था। सुखजीत के पडोस मे ही वे रहते थे। उनका पारिवारिक आना-जाना था । एक बार सुखजीत उसके साथ सिनेमा आई थी । वही भेट हुई। यह एक वर्ष पहले की बात है। धीरे-धीरे परिचय हो गया ।'

"तुम्हारा शारीरिक सम्बन्ध सुखजीत से घटना के कितने दिन पहले हुआ ।"

जगमोहन की आँखे घोर लज्जा से दब गयी । किसी तरह साहस कर उसने पूछा, "क्या यह जानकारी जरूरी है ?"

"हाँ, बलात्कार का आरोप भी तो है ।"

'सिनेमा मे मिलने के चार महीने के अन्दर, चौथी या पाँचवी मुलाकात मे । सच तो यह है कि बढावा उसी की ओर से था । पर वकील साहब यह बात किसी को, कम-से-कम मेरे माँ-बाप को कभी न मालूम हो ।"—काँपते स्वर मे हाथ जोड कर जगमोहन ने कहा ।

"इसका विश्वास रखो,"—वकील साहब ने उसे आश्वासन दिया और पूछा, "तुम्हारे कहने से तो यह मालूम पडता है कि सुखजीत एक दुश्चरित्र लडकी थी ।"

"हाँ, एकाध और लोगो से भी उसका सम्बन्ध था। पर वह प्रकट यही करती थी कि मेरे साथ ही उसका घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। सच यह है कि वह काफी रकम लेती थी ।"

"तो क्या उसके माँ-बाप भी यह सब जानते थे ?"

"उसकी माँ तो जरूर जानती थी। कम से कम मेरे बारे मे तो कोई शक नही था। एक बार मै सुखजीत के घर गया था, तो उसकी माँ ने उसके लिए मुझसे सलवार और सूट का कपडा मँगवाया था ।"

"पर मुहल्ले मे, स्कूल मे, सुखजीत के बारे मे ऐसा किसी का अनुमान भी नही था। हो सकता है कि वह सावधानी बर्तती हो। अच्छा, तेरह अप्रैल से पहले तुम्हारी उसकी मुलाकात कब हुई थी ?"

"मै ग्यारह अप्रैल को उससे कालेज जाते समय रास्ते मे एक मिनट के लिए मिला था। तेरह अप्रैल को चित्रलोक मे दोपहर को आने के लिए उसे मैने कहा। पहले तो उसने कालेज का समय बता कर बहाना किया। फिर जब मैने जोर दिया तब उसने कालेज से तीन बजे चल कर चित्रलोक आने का वादा किया। तीन बजे के समय कालेज छोडने मे कोई उसकी अनुपस्थिति जान नही पाता। आखिरी घण्टा उसका अक्सर खाली ही रहता था।"

'तो वह कहाँ मिली ?"

"ढाई बजे मै दुकान से कार लेकर चला। उसके कालेज के फाटक के पास दस मिनट मे पहुँचा हूँगा। ठीक पौने तीन बजे वह फाटक से निकल कर कटरा के चौराहे की ओर चली। मैने चौराहे से कुछ पहले गाडी को एक सुनसान जगह मे छाया मे लगा लिया। वही आ कर वह गाडी मे बैठ गयी।"

"वहाँ से किस-किस रास्ते तुम लोग चित्रलोक पहुँचे ?"

"हम लोग पहले चित्रलोक सीधे ही जा रहे थे। पर सुखजीत ने मैकफरसन झील देखने की इच्छा प्रकट की। हम बाहरी रास्ते से मैकफरसन झील पहुँचे। वहाँ से चार बजे के लगभग सिविल लाइन लौटे।"

"मैकफरसन झील पर क्या तुम लोग गाडी से उतरे भी ?"

"केवल कुछ मिनटो के लिए। वहाँ माली के अलावे और कोई नही था। उसे कोई शक न हो, इसलिए हम लोग गाडी से उतर कर झील तक गये। फिर चले आये।"

"मैकफरसन झील काफी सुनसान मे है। मीलो तक कोई प्राणी नही नजर आता। शायद झील के आगे गगा के तट की ओर किसी पेड की छाया मे गाडी रोक कर तुमने शारीरिक सम्बन्ध भी स्थापित किया ?"

जगमोहन हैरानी से वकील साहब को देखते हुए बोला, "जी, हाँ।"

"फिर सिविल लाइन पहुँच कर कहाँ गये ?"

"चोराहे वाले रेस्टराँ मे चाय पीने घुसे। सुखजीत आमलेट और मीट-कटलेट की शौकीन थी। रेस्टराँ के सुरक्षित कक्ष मे बैठे ही थे कि बलबीर सेठी और एक अन्य मित्र आ गये। सेठी को देख कर सुखजीत चौकी। वह उसके घर आता-जाता था। सुखजीत उसे चाचा कहती थी। लेकिन सेठी की नीयत बुरी थी। उसने बैठने ही सुखजीत का हाथ दबाया और उससे हँस-हँस कर छेडछाड की बाते करने लगा। मुझे बहुत बुरा लगा। सुखजीत तो भय और आशका से स्याह पड गयी।"

"दूसरे मित्र का नाम क्या है ?"

"न पूछे तभी अच्छा है"—जगमोहन ने अत्यन्त कातर भाव से कहा। वकील साहब बोले, "अच्छा, अपनी कहानी खतम कर लो। फिर सोचूँगा कि नाम जानने की जरूरत है या नही। हाँ, फिर क्या हुआ ?"

फिर जब हम चाय पी चुके तब सेठी ने मुझसे कहा, "तुम पाँच मिनट को गाडी दे दो तो हम लोग सुखजीत को छोड आये।"

सुखजीत किसी भाव उसके साथ जाने को तैयार नही हुई। उसने मुझसे कहा, "आप चलकर छोड आइये या रिक्शे से चली जाती हूँ।"

तब तीसरे मित्र के सुझाव पर मैने गाडी स्टार्ट की। कटरे के पास पहुँचे, तब उस मित्र ने कहा, "अभी तो साढे चार ही बजे है। चलो जरा गगा जी का दर्शन कर आये।"

उनकी बात नाहक मान ली, सुखजीत के विरोध की भी मैने परवाह नही की। प्रयाग आ, सडक छोड, गगा जी की तरफ चल पडे। कुछ दूर पहुँचने पर गाडी लायक रास्ता न रहा। गाडी को रोकना पडा। गाडी मोडने के लिए मै उतर कर जगह की तजवीज कर रहा था। वह मित्र और सेठी सुखजीत को बलपूर्वक नीचे उतार कर पास के एक अरहर के खेत मे ले गये। मै उनका उद्देश्य ठीक-ठीक न समझ सका। गाडी मोडने मे लगा कि एकाएक मैने सुखजीत का चिल्लाना सुना। लेकिन थोडी देर बाद ही वह चिल्लाहट बन्द हो गयी। उस मित्र ने जबरदस्ती उसके साथ बलात्कार किया। फिर सेठी ने भी किया। जब गाडी के पास सुखजीत आयी तो वह अपनी काया की छाया मात्र थी। सुखजीत की दशा देख मै क्षण भर के लिए सुन्न हो गया। गाडी जब चली, तब सेठी और उस मित्र ने भी सुखजीत

गाड़ी से मार डालने की नीयत से उसे फेंक देने के अपराध में कठिनाइयाँ होंगी, फिर भी निराश होने की कोई बात नहीं। मैं तुम्हारा मुकदमा लूँगा। मुकदमे में जान है, काफी जान है। कल अपने पिता जी को भेजना; वकालतनामा भर दूँगा।"

जगमोहन ने हाथ जोड़ लिया और कहा, "पिता जी दस हजार तक खर्च करने को तैयार हैं, अगर मैं छूट जाऊँ।"

वकील साहब ने जगमोहन के चेहरे की ओर उसका भाव समझने के लिए गौर से देखा, फिर कहा, "कल अपने पिता को भेज देना।"

जगमोहन जब चला गया तब बाबू रूपकिशोर सोचने लगे कि जीवन भी क्या है? इंसान किस परिस्थिति में क्या कर बैठे, कोई नहीं जानता। एक युवती के साथ दो ने बलात्कार किया, और फिर बात को केवल छिपाने के लिए उसे चलती गाड़ी से फेंक दिया जिससे वह मर जाय। कितना बीभत्स काण्ड है। यौन-सम्बन्ध के कारण कत्ल के कई मुकदमों को उन्होंने देखा था, किया था और पढ़ा था। पर इतनी भयंकर और बीभत्स घटना उनकी जानकारी में पहले कभी नहीं आयी थी। इन यौन-सम्बन्धी अपराधों का कारण क्या है?—उन्होंने सोचना चाहा। क्या केवल आर्थिक विषमता और गरीबी के कारण ये अपराध होते हैं या यौन-सम्बन्धी शिक्षा का अभाव और प्रेम करने की समाज में स्वतंत्रता का अभाव इसका प्रधान कारण है? कारण जो भी हो, उन्होंने सोचा—'लेकिन इंसान क्या इतना बीभत्स कांड कर सकता है जैसा कि सुखजीत के साथ हुआ।' वह मन-ही-मन काँप उठे। फिर सहसा अपने आप पर उनका ध्यान गया। क्या, उन्होंने सोचा, कभी इस तरह की घटना उनके जीवन में भी घट सकती है? प्रश्न से मन आशंकित हो उठा। उन्होंने सोचा—'नहीं, उनके दोनों जीवन का अपना-अपना स्वरूप था। दोनों जीवन एक परम्परा और प्रथा की लीक पर थे। उसमें कुछ भी 'कु' कहाँ था?' अपने मन की आशंका को मिटाने की कोशिश की बाबू रूपकिशोर ने।

लेकिन अपने मन की शंका से दिन भर वे खिन्न रहे। शाम को क्लब पहुँचे। क्लब जाने का एक कारण यह भी था कि वह पुलिस अधीक्षक से मिल कर पता करना चाहते थे कि जगमोहन के मुकदमे में पुलिस की कैसी और कितनी सरगर्मी

थी। क्लब मे राजा रमणीमोहन और श्री तथा श्रीमती तनेजा के अलावा और कोई नही था।

बाबू रूपकिशोर का सबने अभिवादन किया। श्रीमती तनेजा बाबू रूपकिशोर को अलग ले जा कर बैठी और बोली, "कहिये, उस मुकदमे मे क्या हो रहा है ?"

"आप शायद सुखजीत के कत्ल के मुकदमे का जिक्र कर रही है ?"—बाबू रूपकिशोर ने जान-बूझ कर पूछा।

"जी हाँ, सेठ घासीराम हमारे पुराने मिलने वाले है। तनेजा तो अधिकारी होने के नाते मुकदमे मे कोई दिलचस्पी ले नही सकेगे। लेकिन क्या जगमोहन बरी हो जायगा ?"

"पुलिस ने अभी तक तो अदालत मे चालान भी नही भेजा है। मैजिस्ट्रेट से तो बरी हो नही सकता। मुकदमा सेशन सुपुर्द तो हो ही जायेगा। तफतीश के बयान को पढ कर ही मै कोई राय कायम कर सकता हूँ। अभी तक तो मै यह भी नही जानता कि सबूत पक्ष के प्रमाण क्या है ?"

बात काट कर श्रीमती तनेजा ने कहा, "मैने सुना है कि आपने मुकदमा लेना स्वीकार कर लिया है ?"

बाबू रूपकिशोर हँस कर बोले, "सेठ घासीराम-जैसे मुवक्किल का मुकदमा न लेना लक्ष्मी को ठुकराना होगा श्रीमती तनेजा।"

"लक्ष्मी को किसी पेशे मे भी ठुकराना मूर्खता है। मगर आप तो कोई मुकदमा स्वीकार नही करते जब तक उसकी सचाई ज्ञात न हो जाय और आपके पक्ष में बल न हो।"

बाबू रूपकिशोर सोच रहे थे कि श्रीमती तनेजा मुकदमे के हर मिनट की खबर रखती है। कहाँ तक उनकी जानकारी है ? उनकी दिलचस्पी का कारण वह समझ ही चुके थे। उन्होने कहा, "अभी कुछ भी कहना कठिन है। अदालत मे पुलिस चालान आ जाय, तभी उस पर राय कायम की जा सकती है।"

राजा रमणीमोहन ने आवाज़ दी, "वकील साहब आइये, ब्रिज हो जाय। श्रीमती तनेजा, क्या आप नही खेलेगी ?"

श्रीमती तनेजा ने राजा साहब से हँस कर कहा, "हमलोग आये।"

ब्रिज प्रारंभ हुई। खेल में कोई दिलचस्प बात नहीं थी, इसके अलावा कि राजा रमणीमोहन श्री तनेजा को पेय की कमी नहीं होने देते थे।

तीसरा हाथ जब बँट रहा था, पुलिस अधीक्षक अपनी पत्नी के साथ आ गये। पुलिस अधीक्षक की धर्मपत्नी को बाबू रूपकिशोर ने खेल में अपनी कुर्सी दे दी।

अधीक्षक महोदय ने हँस कर बाबू रूपकिशोर से पूछा, "कहिये, वकील साहब जमानत तो सेठी की भी हो गयी।"

"हाँ, सुना है। बाबू रमाशंकर उसकी ओर से वकील थे।"

"पर मुकदमा ऐसा नहीं था जिसमें जमानत स्वीकार की जाती।"

"आपका चालान अदालत में आ जाय, तभी इस पर कुछ कहा जा सकता है। लेकिन तीसरे अपराधी का पता चला या नहीं ?

"शायद एक ड्राइवर था, रामभरोसे नाम का। वह लापता है, चालान उसके बगैर ही भेजने का आदेश दे दिया गया है। मुकदमा सेशन सुपुर्द तो हो ही जायगा।"—हँस कर पुलिस अधीक्षक ने व्यंग-भाव से कहा।

"हाँ, फैसला सेशन अदालत ही कर सकेगी।"

"आपकी शोहरत को यह मुकदमा चुनौती है।"—पुलिस अधीक्षक ने फिर व्यंग कसा।

"जी हाँ, पर मुवक्किल धनी है, मुकदमा मैंने स्वीकार कर लिया है।"—वकील साहब ने बात काटी। उन्हें जो जानना था उसकी जानकारी हो गयी। अधिक की अपेक्षा उन्हें नहीं थी।

क्लब से घर आते समय वे मन-ही-मन यह सोचकर हँसते रहे कि इस देश की पुलिस भी क्या चीज़ है ? झूठ को सच बनाना इनका बायें हाथ का खेल है। किसी कल्पित रामभरोसे ड्राइवर को तीसरे स्थान पर ला खड़ा कर दियां, उसे फरार बता दिया। दो गिरफ्तार अभियुक्तों पर मुकदमा चलेगा। फरार जब कभी पकड़ा जायगा तब अलग से मुकदमा चलेगा। तब तक वर्तमान अधिकारी बदल जायेंगे और फरार तो कल्पित व्यक्ति है, वह कभी भी क्यों कर पकड़ा जायगा। इस तरह असली अपराधी को पुलिस की कृपा से कोई नहीं जान पायेगा।

घर पहुँचे तो बच्चे खा-पी चुके थे। जान्हवी प्रतीक्षा कर रही थी। बोली, "आज बहुत खुश नजर आ रहे हो ?"

"तुम्हे देख कर मै कब नही खिल उठता।"

"सच !"—पत्नी ने स्नेह की अल्प-अति अल्प-व्यजना की"।

"क्या कोई शक है ?"

"तुम मेरे परमेश्वर हो। तुम्हारी बात पर मै कभी शक कर सकूँगी ?"

: ११ :

आशा के अनुकूल मैजिस्ट्रेट की अदालत से मुकदमा सेशन सुपुर्द हो गया। पुलिस ने एक गाँव वाले को गवाही मे पेश किया। उसने बताया कि घटना के दिन घटनास्थल के पास ही वह गाय चरा रहा था और घटना को उसने देखा। प्रयाग के दो दुकानदारो ने बयान दिया। उन्होंने गाडी मे अभियुक्तों को एक सुन्दर लडकी के सग जाते देखा और फिर लौटते समय गाडी मे उस लडकी को नही देखा। एक अन्य गवाह जिसने घटना की सूचना थाने मे दी थी तथा डाक्टर, जिसने लाश की चीर-फाड कर सुखजीत की मौत का कारण निर्धारित किया था, का भी बयान हुआ।

अन्य गवाहो से जिरह नही की गयी। केवल डाक्टर से बाबू रूपकिशोर ने जिरह मे पूछा, "आपने बताया है कि मृतक के गुप्तागो से तीन बार रति-क्रिया का प्रमाण मिला। क्या आप समय भी निर्धारित कर सकते है कि मृत्यु के कितने पहले ये क्रियाएँ हुई ?"

"तीनो क्रियाएँ मौत से छ घण्टे से अधिक की नही थी और जीवित अवस्था मे की गयी प्रकट होती थी।"

"पहली, दूसरी और तीसरी क्रियायो मे क्या समय का अन्तर बता सकते है।"

"दो और तीन मे तो अधिक समय का अतर नही था। सम्भव है नम्बर

एक रति-क्रिया एकाध घण्टे पहले की गयी हो। रज और वीर्य के दागो से यही अनुमान लगा।"

"आपने मृतक की गुप्तेन्द्रिय का परीक्षण किया है। क्या आपका मत है कि मृतक यौन-सम्बन्ध की पहले से आदी थी ?"

डाक्टर जब तक उत्तर दे सरकारी वकील की ओर से आपत्ति उठायी गयी, "मृतक एक सम्भ्रान्त परिवार की युवती थी। उसके चरित्र के बारे मे शक की कोई बात मिलती नही। ऐसे प्रश्न से मृतक के परिवार की मानहानि की सम्भावना है और मुकदमे से इस सवाल का सीधा सम्बन्ध नही।"

"सवाल का मुकदमे से सम्बन्ध साफ है। मुझे दु ख है कि मुझे यह प्रश्न पूछना पड रहा है। पर अभियुक्त भी सम्भ्रान्त परिवार का है। उस पर बलात्कार का आरोप है। मेरा प्रश्न इस आरोप से सीधा सम्बन्ध रखता है। अगर मृतक रति-क्रिया की आदी थी तो कम-से-कम अपराध की गुरुता घटती है। इससे मुकदमे के सच-झूठ पर भी प्रकाश पडेगा।"

मैजिस्ट्रेट ने प्रश्न उचित करार दिया।

डाक्टर ने उत्तर मे कहा, "गुप्तेद्रिय की जॉच से इसमे कोई शका नही शेष रही कि मृतक रति-क्रिया की आदी थी। इन्द्रिय के आकार से कम-से-कम एक वर्ष या उससे कुछ अधिक दिनो से उसे रति-क्रिया का अभ्यस्त मानना पड़ा।"

"मृत्यु का कारण आपने दिल पर एकाएक सदमा बताया है। क्या यह सम्भव है कि मृतक रति-क्रिया से ही मर गयी हो ?"

"नही, चलती गाडी, जैसे रेल या कार से फेके जाने पर कडी जमीन से चोट लगी, उससे दिल की झिल्ली फट गयी। दाहिने हाथ की हड्डी का एक जोड टूटा है। उससे साफ है कि मृत्यु का कारण तेज रफ्तार से चलने वाली गाड़ी से फेके जाने पर सख्त जमीन से चोट खाने से उत्पन्न सदमा है।"

"अगर गाडी से मृतक ने स्वय उतरने की कोशिश की हो और गिर पडी हो, तब भी क्या ऐसी चोटे और ऐसी मृत्यु सभव है ?"

"हॉ, अगर तेज़ रफ्तार की गाड़ी हो"—डाक्टर ने जवाब दिया।

"अगर मृतक गाडी की तेज रफ्तार मे अपनी असावधानी से धक्का खाकर गिर पडे तब भी क्या इन चोटो के साथ ऐसी मृत्यु सभव है ?"

"बिलकुल असम्भव नही ।"

"अगर यह भी मान लिया जाय कि गाडी से फेका ही गया हो तो क्या गाडी के ड्राइवर को गाडी को तेज रफ्तार से चलाते समय फेकना या फेकने में मदद देना सभव है ?"

"नही । गाडी उस स्थिति मे भयकर दुर्घटना की शिकार होगी ।"

"धन्यवाद, डाक्टर साहब ।"

सेशन मे जज के सामने मुकदमा विधिवत् चल रहा था । यहाँ एक-एक गवाह का बयान और जिरह पूरा पूरा होता था । सबूत के सभी गवाहो से जिरह हुई । लेकिन तफतीश करने वाले इस्पेक्टर से बाबू रूपकिशोर ने लम्बी जिरह की ।

"आपने अपने बयान मे बताया कि कार का पता लगाने मे कोई कठिनाई नही हुई । आपको किसी ने कार का नबर बताया नही, कार के बारे मे और कोई सुराग डायरी मे आपने दिखाया नही है । खैर, आपने कार ढूँढ निकाली । पर यह कैसे आपको पता चला कि अभियुक्त जगमोहन भी कार मे था ?"

"तफतीश से पता चला ।"

"सवाल यह है कि कैसे पता चला ? किसने बताया या किस आधार पर आपको विश्वास हुआ कि अभियुक्त जगमोहन भी घटना के समय कार मे था । आपका सन्देह ही अभियुक्त जगमोहन पर कैसे गया ? कार उसकी कोई माँग कर भी तो ले जा सकता था, वह चोरी भी जा सकती थी ।"

"मुझे तफतीश मे यह पता चला कि अभियुक्त जगमोहन मृतक के घर भी आता-जाता था। मृतक की माँ ने कपडे भी उससे मँगाये थे । कार उसकी थी ही,इसलिए उस पर भी तफतीश करनी पडी ।"

"पर तफतीश मे पता क्या चला ? किसी ने कार मे जगमोहन को तो पह-चाना नही ।"

"मैने अपने बयान मे कहा है कि अभियुक्त सेठी का और मृतक के परिवार

का आपस मे आना-जाना था। अभियुक्त सेठी को मृतक 'चाचा' कहा करती थी। घटना के दिन चार बजे मृतक और अभियुक्त जगमोहन सिविल लाइन के रेस्टरॉ मे देखे गये ––चाय पीते हुए। अभियुक्त सेठी भी वहॉ आ मिला। फिर मृतक को ये गगा की कछार मे ले गये।"

"उसके वाद का आपका बयान और सबूत की गवाही साफ है। पर मृतक रेस्टराँ मे कैसे पहुँचा, स्वेच्छा से या किसी के साथ ?"

"कालेज की छुट्टी होने के पहले ही अभियुक्त सेठी मृतक को सिनेमा दिखलाने के बहाने निकाल लाया। पूर्व निश्चय के अनुसार अभियुक्त जगमोहन को उसने मिलाया। अभियुक्त जगमोहन और मृतक रेस्टरॉ मे चाय पीने पहुँचे। अभियुक्त सेठी किसी कारण से थोडी देर वाद रेस्टरॉ मे पहुँचा। वाद मे गगा की कछार मे घटना हुई।"

"सबूत की ओर से पेश हुए मैनेजर ने अपने बयान मे कहा है कि अभियुक्त सेठी के सग एक अन्य व्यक्ति भी रेस्टरॉ मे आया था। वह कौन था ?"

"मैनेजर ने ड्राइवर रामभरोसे, फरार अभियुक्त को ही, तीसरा व्यक्ति कहा है।"

"आपकी राय है कि ड्राइवर ने भी चाय दोनो अभियुक्तो की तरह मृतक के साथ पी ?"

"सम्भव है।"

"यह आपने जानने की कोशिश नही की कि मृतक और जगमोहन रेस्टरॉ मे पहले क्यो पहुँचे और अभियुक्त सेठी उस समय कहॉ रह गया, जबकि वह मृतक को कालेज से सिनेमा दिखाने के बहाने लाया था ?"

"मैने जो कहा है, वही सत्य है।"

"आपको मालूम है कि अभियुक्त जगमोहन स्वय कार चलाते है, यद्यपि उनकी कार पर एक ड्राइवर भी है।"

"जी हॉ।"

"तफतीश पहले सी० आई० डी० ने की थी ?"

"जी हॉ"

"किस अधिकारी विशेष को यह तफतीश वहाँ सुपुर्द थी ?"

"यह अदालत चाहे तो पुलिस अधीक्षक से जान सकती है।"

बाबू रूपकिशोर ने माननीय जज से निवेदन किया कि खुफिया विभाग के मूल कागजात मँगाये जायँ।

सुखजीत के पिता से भी जिरह की गयी।

"क्या आप अभियुक्तगण को पहले से जानते हैं ?"

"सेठी को भगवान रौरव नरक दे। वह मेरी लड़की को बेटी कहता था। उसका हमारा घर का आना-जाना था। उससे हमें ऐसी नीचता की आशा नहीं थी।"—रोता हुआ वह बोला।

"अभियुक्त जगमोहन को आप कब से जानते हैं ?"

"इसी सेठी के जरिये उसको भी मैंने जाना। वह आस्तीन का साँप निकला।"

"कभी मृतक ने सलवार और सूट के लिए बिना कीमत दिये अभियुक्त जगमोहन से कपड़े मँगवाये ?"

"कपड़े कीमत देकर मँगवाये। मेरी लड़की ने यही कहा था।"

"लड़की की फीस, किताब आदि के लिए भी कई बार आपको रुपये मिले जो लड़की ने लाकर दिये ?"

"मैं ठीक नहीं जानता। हम गरीब हैं। मेरी लड़की ने कभी मदद माँगी हो तो मुझे पता नहीं।"

"मृतक सुखजीत कई बार जगमोहन के साथ सिनेमा देखने भी गई थी ?"

"सेठी के कारण यह सब हुआ। हमें क्या मालूम था कि वह सफेदपोश गुण्डा है।"

"आपको कभी अपनी लड़की के चरित्र पर सन्देह हुआ था ?"

लड़की का पिता रोने लगा। विद्वान जज ने कहा, "सवाल के उत्तर पर जोर न दिया जाय !"

बाबू रूपकिशोर ने निवेदन किया, "मृतक की माँ को तब सफाई-पक्ष की ओर से गवाही के लिए बुलाना पड़ेगा।"

"आपका मतव्य हासिल हो गया। माँ को इन्ही बातो के लिए बुलाना मै जरूरी नही समझता"—विद्वान जज ने कहा ।

"जैसी श्रीमान् की आज्ञा ।"

सफाई-पक्ष की ओर से मैकफरसन झील का माली पेश हुआ । उसने अभियुक्त जगमोहन को और मृतक के चित्र को देखकर बताया कि घटना के दिन साढे तीन बजे ये मैकफरसन झील गाडी से गये थे। उसके पहले भी एकाध बार गये थे । सिविल लाइन के एक होटल के मैनेजर पेश हुए । उन्होने वताया कि मृतक दो-तीन बार भिन्न-भिन्न व्यक्तियो के साथ होटल आयी थी । अभियुक्त जगमोहन के साथ भी गई थी। खुफिया विभाग के इस्पेक्टर श्री छिब्बर, तफतीश करने वाले अधिकारी से बाबू रूपकिशोर ने पूछा, "आपकी जाँच से रेस्टराँ मे अभियुक्त सेठी के साथ तीसरा व्यक्ति कौन था ?"

"ड्राइवर रामभरोसे ।"

अरविन्द ने उसी समय एक कागज बाबू रूपकिशोर को दिया ।

"ड्राइवर रामभरोसे चुनार का रहने वाला था। उसके पिता का नाम रामसुभग था ?"

"जी हाँ ।"

"उसकी आज से दो साल पहले मृत्यु हो गयी ?"

"यह गलत है ।"

बाबू रूपकिशोर ने अदालत से निवेदन किया, "रामभरोसे, पेशा ड्राइवर, पिता रामसुभग, निवासी चुनार की मृत्यु का प्रमाण-पत्र वहाँ की चुगी से जो प्राप्त हुआ है, वह मै पेश कर रहा हूँ।"—उन्होने प्रमाण-पत्र जज महोदय को दिया। जज ने पढकर गवाह से कहा, "आप भी देख ले ।"

गवाह श्री छिब्बर के पसीने छूटने लगे । उन्होने कहा, "मै मुकदमा को मुल्तवी करने का निवेदन करता हूँ । इसकी छानबीन का समय दिया जाय ।"

सरकारी वकील श्री सिंह ने भी मुकदमा स्थगित करने की प्रार्थना की।अरविद ने बाबू रूपकिशोर के कान मे कुछ कहा । बाबू रूपकिशोर ने निवेदन किया, "मै श्री छिब्बर से और कुछ भी नही पूछना चाहता । मुकदमा स्थगित करने का

भी मेरा विरोध नहीं। लेकिन अदालत में खुफ़िया विभाग के एक दूसरे इंस्पेक्टर श्री रामनरेश उपस्थित हैं। मैं उनको गवाह के रूप में पेश करने की अदालत की आज्ञा चाहता हूँ।"

श्री रामनरेश ने अदालत के कमरे से बाहर निकल जाना चाहा। लेकिन अर-विन्द उनके पास जाकर खड़ा हो गया था। विद्वान जज ने पछा, "वह कौन हैं ?"

अरविन्द ने बताया, "ये हैं।"

जज ने श्री रामनरेश को गवाह के कटघरे में आने के लिए हुक्म दिया। उनको आना ही पड़ा।

बाबू रूपकिशोर ने पूछा, "आप अभियुक्त सेठी के मित्र हैं ?"

"अपने कार्य के सम्बन्ध में मेरी उनसे जान-पहचान रही है।"

"घटना के दिन आप तीन बजे से छः बजे तक कहाँ थे ?"

"मैं एक तफतीश में सिराथू गया था।"

"अगर मैं आपसे कहूँ कि आप चार बजे सिविल लाइन के रेस्टराँ में अभियुक्त सेठी के साथ अभियुक्त जगमोहन और मृतक से मिलने गये और अपने पद का भय दिखाकर उन्हें, जगमोहन की गाड़ी में, जिसे जगमोहन चला रहा था, गंगा की कछार में ले गये, तो क्या झूठ होगा ? वहाँ अभियुक्त जगमोहन को भी धोखा देकर आपने और अभियुक्त सेठी ने मृतक के साथ बलात्कार किया। मृतक को इससे बड़ा भारी सदमा पहुँचा। विशेषकर जब वह अभियुक्त सेठी को अपना चाचा मानती थी। कार में लौटते समय मृतक रो-रो कर अभियुक्त सेठी से उसे पत्नी रूप में स्वीकार करने को कहने लगी। उसने यह भी कहा कि यदि वह उसे पत्नी नही स्वीकार करेगा तो मृतक उसके घर जबरन जाकर उसकी पत्नी से सब कुछ कह कर वहीं रहेगी। तब आपने चुप कराने के लिए मृतक को मारा जिससे वह बेहोश हो गयी। फिर डर कर आपने अभियुक्त सेठी की सहायता से उसे मार डालने की नीयत से जबरदस्ती गाड़ी की तेज़ रफ्तार में उसे बाँध की ऊँचाई से गाड़ी से बाहर फेंक दिया जिससे उसकी मृत्यु हो गयी।"

अदालत मे सन्नाटा छा गया। गवाह ने लेकिन बिना किसी भाव को चेहरे पर प्रकट किए हुए साफ शब्दो मे उत्तर दिया, "यह बिलकुल झूठ है।"

विद्वान जज भी आश्चर्य-चकित थे। उन्होने बाबू रूपकिशोर से पूछा, "आपके पास कोई प्रमाण है ?"

बाबू रूपकिशोर ने रेस्टरॉ के मैनेजर को पेश किया। न चाहते हुए भी उसे स्वीकार करना पडा कि तीसरे व्यक्ति यही थे। जगमोहन का बयान कराया।

अभियुक्त सेठी को भी स्वीकार करना पडा।

रामनरेश की जज ने फौरन गिरफ्तारी का आदेश दिया और अदालत दूसरे दिन के लिए उठ गयी।

दूसरे दिन कचहरी जाने के लिए बाबू रूपकिशोर तैयार ही हो रहे थे कि अभियुक्त सेठी उनके एक मित्र के साथ आ पहुँचा। उसने प्रार्थना की, "मेरी ओर से भी आज आप ही बहस करे।"

"सभव नही।" —बाबू रूपकिशोर ने कहा।

"मै आप जो भी फीस चाहे देने के लिए तैयार हूँ"—सेठी ने कहा।

"अनुचित बात है। आपकी ओर से बाबू रमाशकर पैरवी कर ही रहे है।"

"मेरे जीवन का प्रश्न है।"

"मै मजबूर हूँ।"—कह कर बाबू रूपकिशोर कमरे के बाहर हो गये।

अदालत मे बहस के दौरान बाबू रूपकिशोर ने निवेदन किया, "श्रीमान् मेरे मुवक्किल जगमोहन और मृतक की घटना के दिन से वर्ष भर पहले से आपस मे घनिष्ठता थी। क्यो हुई और कैसे हुई—इसके विवरण मे जाना मेरा अभीष्ट नही। मृतक के पिता के बयान से कारण स्पष्ट है। अभियुक्त जगमोहन के साथ मृतक स्वेच्छा से उस दिन आई थी। मैकफरसन झील के माली के बयान से यह साबित है कि पहले वे उधर गये। सुनसान नीरव स्थान, वहाँ यदि उनका शारीरिक सम्बन्ध भी हुआ तो आश्चर्य नही। डाक्टर के बयान की नम्बर एक रति-क्रिया से भी यही साबित होता है। फिर रेस्टरॉ मे जब वे आकर प्रसन्नमन चाय पी रहे थे तब अभियुक्त सेठी और रामनरेश आये। अभियुक्त रामनरेश

अपने पद का भय और गगा की कछार के भ्रमण का लालच दिखा कर मृतक को वहाँ ले गया। अभियुक्त सेठी को मृतक चाचा मानती थी। मृतक अनिच्छा-पूर्वक भी चली गयी होगी। इस्पेक्टर रामनरेश एक जिम्मेदार अधिकारी था। उसकी बात पर किसी अनहोनी घटना का अभियुक्त जगमोहन को भी सदेह नही होना स्वाभाविक था, मृतक के प्रति उसका कुछ कर्त्तव्य भी था। वह अपनी गाडी ले गया। वहाँ मौका पाकर अभियुक्त सेठी और रामनरेश ने मृतक के साथ बलात्कार किया और बाद मे, जब वह अभियुक्त रामनरेश की मार से बेहोश हो गयी, जैसा कि गवाहो ने बताया है, चलती गाडी से मृतक को फेक कर उसका कत्ल कर दिया। ड्राइवर रामभरोसे कभी का मर चुका है। पुलिस ने जान-बूझ कर रामनरेश को बचाने के लिए ड्राइवर का नाम मुकदमे मे घुसेड दिया और उसे फरार बना दिया। लेकिन ड्राइवर रामभरोसे तो घटना के दिन से दो वर्ष पहले ही दुनिया से ही फरार हो चुका था।

गाडी अभियुक्त जगमोहन ही चला रहा था। गाडी की रफ्तार तेज थी। उस परिस्थिति मे श्रीमान्, जगमोहन की मन स्थिति का अनुमान कर सकते है। उसे जरा भी सदेह नही हुआ होगा कि पीछे से मृतक को दोनो अभियुक्त मिट्टी के ढेले की तरह चलती गाडी से फेक देगे। जगमोहन, मेरा मुवक्किल, बलात्कार और भगाने के आरोप से तो सर्वथा मुक्त है ही। उस पर कत्ल मे मदद करने का भी अभियोग प्रमाणित नही होता। उसका कोई इरादा नही था और उसे गाडी मे पीछे बैठे जिम्मेदार अभियुक्तो से पाशविक व्यवहार की आशा नही थी। उसके साथ ऐसी कोई परिस्थिति ही नही थी जो अभियुक्त सेठी या रामनरेश के साथ थी। इसलिए मेरा निवेदन है कि मेरा मुवक्किल निर्दोष करार दिया जाय और सही अपराधी को अदालत न्यायोचित दण्ड दे।"

बहस बहुत लम्बी हुई। उस दिन भर अभियुक्तो की ओर से बहस होती रही। अदालत निर्णय दिये बिना उस दिन उठ गयी।

अदालत के कमरे के बाहर बाबू रूपकिशोर तेज कदमो से चले जा रहे थे। बाहर इस सनसनी खेज मुकदमे को सुनने के लिए भीड इकट्ठी थी। भीड ने उनके लिए हर्षध्वनि प्रकट की। श्री सिह ने रोकना चाहा, यह कहकर,

"तुमने तो पुलिस की नाक कटा दी। वह कही मुँह दिखाने लायक नही रही।"

लेकिन बाबू रूपकिशोर ने सुना नही। वह अपने कमरे की ओर चलते गये। उनके मन मे एक ख्याल पैदा हो गया था जिसने उनको झकझोर दिया था। उन्हे डक मारा था उस ख्याल ने। जैसे ही वे अदालत मे बहस समाप्त कर बैठे कि उनके मन मे यह सवाल उठा कि क्या बीरा के साथ उनका सम्बन्ध शुद्ध बलात्कार नही? उनके मन का भाव यह था कि सत्तरह-अठारह साल की बीरा ने एक परपरा का शिकार होकर बिल्वमाला की आज्ञा मान, उनको अपना सब कुछ सर्मपित कर दिया। लेकिन क्या उसका समर्पण किसी भी तर्क से स्वेच्छा से किया गया माना जा सकता था। अगर वह स्वतत्र होती, माँ-बाप द्वारा प्रदत्त रानी की दासी नही होती तो क्या उनकी उम्र के अधेड पुरुष को कभी भी मन से स्वीकार करती और यह जानते हुए कि उनकी पत्नी थी और उसकी मालकिन रानी से उनका प्रेम-परिणय था। उनकी बुद्धि ने जवाब दिया कि नही, स्वतत्र बीरा कभी ऐसा नही करती। न मालूम अपने किन-किन अरमानो को उसे कुचलना पडा होगा, कितनी मानसिक यातनाओ को उसे सहन पडा होगा। अपने मन की कितनी उमगो को दबाना पडा होगा। बाबू रूपकिशोर सोच रहे थे कि उन्होने बीरा के साथ घोर अन्याय किया। उनका सम्बन्ध बीरा से बलात्कार, जैसा कि रामनरेश और सेठी ने किया था, से कम नही था। उनको मन-ही-मन बडा सन्ताप हुआ, दिल बैठ गया और चेहरा काला पड गया।

कमरे मे जब वह पहुँचे तो आरामकुर्सी पर गिर गये। अरविद और मुशीजी पीछे-पीछे आये। एक साथ ही दोनो ने पूछा, "तबियत तो नही खराब हो गयी?"

उत्तर मे उन्होने कहा, "हाँ तबियत एकाएक खराब हो गयी है। मै इस समय एकात चाहता हूँ।"

बाहर वकील-समुदाय, सेठ घासीराम जगमोहन आदि खडे थे। अरविन्द ने उन्हे बता दिया कि वकील साहब मानसिक और शारीरिक परिश्रम से थक गये है। वे अभी किसी से मिल न सकेगे।

घर पहुँच कर भी वकील साहब को शाति नही मिली। माधुरी घर पहुँचते ही सामने पड़ी। उसने बीरा की याद ताज़ा कर दी। 'बीरा की तरह अगर

माधुरी का हाल ही तो उन्हे कैसे लगेगा?'—एकाएक यह सवाल मन मे उठा। वह थर-थर काँप गये।

उनको यह चिन्ता सता रही थी कि उनके-जैसे बुद्धिजीवी प्राणी को जो समाज के सदस्यो को न्याय दिलाने का पेशा करता है, साथ ही अपने गोपनीय जीवन मे घोर अत्याचार और अन्याय को प्रश्रय देता है, सेठी और रामनरेश जैसे शैतान पुरुषो को दण्ड दिलाने का अधिकार ही क्या है ? वह स्वय अपराधी है ठीक सेठी और रामनरेश जैसे, यह भाव उनके मन से किसी तरह मिट नही पाया।

अपने कमरे मे जाकर वे लेट गये। जान्हवी ने जो वदन छुआ तो हरारत मालूम पडी। अरविन्द से पता चला कि आज जगमोहन वाले मुकदमे मे जी तोडकर काम करना पडा, उसी से थक गये है। जान्हवी ने डाक्टर बुलाने का आदेश दिया। पर वकील साहब ने मना कर दिया। वे चुपचाप लेटे रहे। मन उनका उद्वेलित था। बीरा के सद्य प्रस्फुटित शरीर का आकर्षण, बीरा का सम्पूर्ण हृदय से आत्म-समर्पण, बीरा की उनके प्रति प्रेम और श्रद्धा की भावना, उसकी सेवा-सुश्रुपा उसकी उनको लेकर प्रसन्नता, ये सब भावनाएँ उनकी प्रधान भावना मे कि बीरा का मन ही नही शरीर भी स्वतत्र नही था, सुप्त थी। उनको यही लग रहा था कि उसका समर्पण, उसके शरीर का उपभोग, केवल बलात्कार था।

वकील साहब को बिस्तरे मे भी आराम नही मिला। पत्नी से उन्होने कहा, "त्रिवेणी चलेगे।"

टैक्सी मँगायी गयी। पत्नी और बच्चो समेत वकील साहब त्रिवेणी तट पहुँचे। बाँध के पास सोये महावीर जी के मन्दिर मे देर तक आराधना करते रहे।

जान्हवी मन-ही-मन सोच रही थी, 'हो न हो, ये किसी घोर दुश्चिन्ता मे पड गये है।' पर क्या, वह बिलकुल नही कयास कर सकी। उसने भी मन्दिर मे प्रार्थना की कि पति का मन स्वस्थ हो जाय।

सगम की शीतल वायु से बाबू रूपकिशोर का मन काफी हल्का हो आया। वहाँ घण्टो बिताकर घर वापस आये। रास्ते मे बच्चो से वे व्यग-विनोद करते रहे। घर पहुँचे तो स्वस्थ थे।

रात को सोते समय उन्होने पत्नी से कहा, "कल से पूजा करूँगा । एक कमरा पूजाघर बना दो और महावीर जी की मूर्ति मँगा लो ।"

"हमारा परिवार तो देवी का पुजारी है ।"

"जगमोहन महावीर जी की पूजा करता है । मेरे मन मे भी आज उन्ही की पूजा की भावना उठी ।"

पत्नी ने सोचा, घोर सकट मे जगमोहन को त्राण मिला, शाम को हनुमान जी के मन्दिर मे प्रार्थना कर पति का मन शात हुआ । इसीलिए महावीर जी की पूजा का आग्रह है ।

: १२ :

जगमोहन वाला मुकदमा कब का समाप्त हो चुका था । जगमोहन सन्देह के लाभ पर कत्ल के आरोप से बरी कर दिया गया था । सेठी और रामनरेश को सात-सात साल का कठोर कारावास मिला था । उस मुकदमे में बाबू रूप-किशोर को धन-लाभ के साथ-साथ बडी प्रसिद्धि भी मिली, जिससे कुछ ही महीनो मे वे प्रतिभा और प्रसिद्धि के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गये । पुलिस का तो जिले का सारा अमला, अधीक्षक से दारोगा तक, सरकार ने बदल दिया ।

बाबू रूपकिशोर को उस मुकदमे मे जो बीरा को लेकर आत्म-श्लाघा की भावना उठी थी, वह उनके मन मे बहुत दिनो तक वर्तमान रही । उस भावना के आवेग मे उन्होने बीरा का कही विवाह करने का भी प्रयत्न किया । लेकिन रानी से भी अधिक बीरा प्रस्ताव के विरुद्ध पडी । उसने कहा था, 'उसका विवाह हो गया । वैसे ही, उसने बताया, उनका विवाह होता है ।' उसने वकील साहब को प्रेमभरे वचनो की याद दिलाई । उनके मन की अशान्ति को उसने और बिल्व-माला दोनो ने पहचाना । पर उनका अपना धर्म वही था, जो उन्होने किया था । धर्म से विरत बीरा जी कैसे सकती थी ? जब तक वकील साहब के मन से विवाह की बात मिटी नही, तब तक बीरा ने रो-रो कर अपने दिन बिताये । धर्म की

भावना की कालक्रम से विजय हुई और बाबू रूपकिशोर को बीरा के विवाह का विचार छोड ही देना पडा। बिल्वमाला और बीरा इसमे बहुत प्रसन्न हुई।

फिर बिल्वमाला और बीरा जीवन वकील साहब के साथ पूर्व क्रमानुसार चलने लगा। बिल्वमाला ने समझा था कि बीरा का विवाह वकील साहब उसके प्रति अनन्य प्रेम का भाव रख कर ही करना चाहते थे, इससे उसकी आस्था वकील साहब के प्रति सौ गुनी बढ गयी। बीरा प्रसन्न थी कि जिसे धर्मानुसार उसने अपना सर्वस्व समर्पण किया, वह उसपे पूर्ववत् ही रत था, उससे भी अधिक अनुरक्त है। बाबू रूपकिशोर ने भी सोचा कि जब यह ही होना है तो ऐसा ही हो। बुद्धि ने यह भी कहा कि जैसा वह अचानक समझ बैठे थे, वैसी बात नही। एक देश-काल की परिस्थित विशेष है वहाँ। यही बीरा का धर्म है। उस धर्म-पालन मे 'कु' का सवाल ही नही उठता। मन-ही-मन इस तर्क से वह हँस भी पडे कि यदि बीरा का समर्पण अनुचित है तो इस देश की जो विवाह-पद्धति है जिसमे माँ-बाप की इच्छा से लडकी-लडके का विवाह होता है, वह भी बलात्कार के अपराध की परिधि मे आ जायगा।

उनके मन का तूफान शान्त ही हो गया और वह अपने दोनो जीवन को और दूसरे के तृतीय भाग को निभाते ही चले जा रहे थे।

लेकिन घोर दुविधा मे उठी पूजा की भावना उनके जीवन मे समा गई। जिस दिन से घर मे पूजा का कमरा बना, उस दिन से बिना नागा वह पूजा करते थे। साथ ही अवकाश के समय वह रामायण, महाभारत और शास्त्र-दर्शन की दूसरी पुस्तके भी पढने लगे थे।

माधुरी अब बी० ए० के द्वितीय वर्ष मे थी। महेश अब रुडकी मे इजीनियरिंग पढ रहा था। पति की पूजा की वृत्ति का प्रभाव जान्हवी पर भी पडा। वह भी रामायण का विधिवत् पाठ करने लगी। बच्चे भी अपने-अपने ढग से पूजा-गृह मे पूजा करने जाते थे। करुणा-केदार छोटे थे। कभी-कभी बाबू रूपकिशोर स्वय उन्हे सुन्दर काड का पाठ करने को कहा करते थे।

प्रेम परिणीता बिल्वमाला भी नियमित पूजा करने लगी थी। वैसे परिणय के पहले से ही वह धर्मभीरु थी। एक मात्र बीरा थी, जो इससे दूर थी।

बाबू रूपकिशोर ने एक बार बीरा से भी कहा, "तुम तो हिन्दी पढ लेती हो, रामायण पढा करो !"

"क्यो ?"—उसने पूछा ।

"थोडा भगवान का स्मरण करना अच्छा ही होता है ।"

"मेरे जो भगवान है, उनकी याद मुझे हर साँस मे बनी रहती है ।"

बाबू रूपकिशोर चुप हो गये थे । करुणा-मिश्रित विषाद से हृदय भर आया था ; ज्ञातयौवना बीरा का उनके प्रति इतना अगाध प्रेम था । ठीक वह दासी-जैसा व्यवहार तो था नही ?

बाबू रूपकिशोर जहाँ अपने हृदय के अन्तराल मे कभी-कभी अपने को लेकर मर्मान्तक पीडा का अनुभव करते थे, वहाँ उनकी प्रतिभा की प्रखरता और व्यावसायिक बुद्धि पर अन्तर नही पडा था । बिल्वमाला ने उन्हे रिक्शे पर आते-जाते देख एक दिन कहा, "मुझे क्या नरक मे भी ठौर नही पाने दोगे ? गाडी खडी रहती है और तुम इतना कष्ट सहते हो, गाडी ले जाओ ।"

बाबू रूपकिशोर ने कहने-भर के लिए कहा था, "जिस बात को हमने आज तक सबकी नजरो से बचा कर सुरक्षित रखा है, उसे प्रकट करने का कारण यह गाडी होगी ।"

"क्या तुम मेरी गाडी खरीद भी नही सकते ?"—बिल्वमाला ने तब पूछा ।

बाबू रूपकिशोर ने बहुत-कुछ सोच-विचार कर कहा, "ऐसा तो हो सकता है ?"

"तो यही करो, आज ही ।"

बाबू रूपकिशोर हँस पडे और बोले, "दो-चार दिन मे ही खरीद लूँगा । तुम्हारी चीज खरीदना क्या आसान है ? जीवन का मोल देना पड़ता है ?"

"जन्म-जन्मान्तर का, बल्कि ?"

"हाँ रानी, सत्य यही है ।"—बाबू रूपकिशोर ने अपना हार्दिक उद्गार प्रकट किया ।

घर मे पत्नी की सलाह लेकर गाडी खरीद ली बाबू रूपकिशोर ने । कागज-पत्र सब दुरुस्त करा कर खरीद-बिक्री हो गयी ।

गाडी जिस दिन घर पहुँची, उस दिन जान्हवी और माधुरी गाडी को देखकर खुशी से उछल पडी । साल-डेढ-साल ही पुरानी थी। लेकिन नयी-जैसी लग रही थी और थी ही ।

बाबू रूपकिशोर ने पत्नी से पूछा भी, "गाडी पसन्द आई ?"

"तुम्हारी रुचि से भिन्न दूसरी कोई मेरी रुचि हो सकती है ?"—जान्हवी ने आह्लाद से उत्तर दिया ।

माधुरी की प्रसन्नता की तो सीमा नही थी। ज्योत्स्ना के पिता के पास एक पुरानी फोर्ड थी, सन् तीस माडल वाली। उसकी गाडी एकदम नयी थी। केदार और करुणा भी गाडी के उत्साह से भरे थे। उसी रात भोजन के बाद सारा परिवार गाडी मे घूमने गया। बाबू रूपकिशोर ने ही गाडी चलायी। गाडी चलाना उन्होंने सीख लिया था। एक कुशल चालक की तरह फाफामऊ के पुल तक चाँदनी रात की छाया मे वे गाडी ले गये। सब की प्रसन्नता भरपूर थी।

माधुरी ने कहा, "बाबू जी, मुझे भी गाडी चलाना सिखा दीजिये।" करुणा और केदार ने भी कहा, "मुझे भी।"

बाबू रूपकिशोर ने हँस कर कहा था, "तुम सबको सिखाऊँगा और तुम्हारी माँ को भी।"

परिहास से जान्हवी रक्तवर्ण हो उठी थी और माधुरी हँस पडी थी।

लेकिन गाडी आने की खुशी दूसरे दिन ही चिन्ता मे बदल गयी। दूसरे दिन डाक से एक रजिस्ट्री लिफाफा मिला। नोटिस थी बाबू रामकिशोर की ओर से पारिवारिक मकान मे आधे हिस्से के लिए। नोटिस मे फैसला कर लेने के लिए महीने भर का समय दिया गया था। यदि उस समय मे आधा हिस्सा बाबू रामकिशोर को नही मिला तो वह सीधे अदालत जायेंगे—ऐसा नोटिस मे लिखा था।

बाबू रूपकिशोर ने पत्नी से कहा, "नोटिस दिया है दद्दा ने। इस मकान के आधे हिस्से का मुकदमा करेंगे। हजारो मुकदमे अब तक लड चुका हूँगा। अब सगे बडे भाई से लडना पडेगा।"

जान्हवी बोली," जेठ जी की मति मारी गयी है। यह सब आपकी प्रिय भाभी की करतूत है। अदालत क्या है, अभी उन्हे मालूम नही।"

"अब देख लेगे, अदालत का मजा मिल जायेगा।"

"आपकी भाभी का दिमाग हमेशा से तेज है। अब जो कुछ भी जमा-पूँजी है, उसे भी ले डूबेगी।"

"मै दद्दा से ऐसी उम्मीद नही करता था। पर कोई बात नहीं। जब चुनौती दे ही दी है तब बिना स्वीकार किये बनेगा कैसे ?"—हँस कर बाबू रूपकिशोर ने कहा।

बाबू रामकिशोर का जीवन चल ही रहा था। अर्से से भाई के परिवार से आना-जाना बन्द था। वे जानते थे कि भाई शीर्षस्थवकील है, दिनो-दिन उन्नति ही करता जा रहा है, समाज मे ऊँचा स्थान है और आदर है। मन तो भाई के लिए भर आता था। मगर जहाँ आकाश-पाताल का अतर हो, वहाँ मेल-मिलाप की बात ही क्या ? पत्नी से उन्होने कहा था, "हम गरीब है। हमारा ही तो भाई है। वही सुखी रहे।"

सुरेश ने बीच मे बात काट कर कहा, "वह बडे वकील है तो हुआ करे। कितने छल-छन्दो से उन्होने धन कमाया है, यह कौन नही जानता ? वकालत का पेशा ही ऐसा है। हमे उनके अपने कमाये धन से कुछ भी नही लेना। पर जो कुछ पैतृक है, उसमे हमारा हिस्सा है। उसे हम लेकर रहेगे।"

पुत्र की बात सर्वथा अनुचित नही, बाबू रामकिशोर ने सोचा। फिर भी उन्होने कहा, "आखिर मकान तो नये सिरे से धन खर्च कर उन्होने ही बनवाया।"

"पर मकान की जमीन हमारी भी तो है। उसका जो मलवा बचा होगा, उसकी भी तो कोई कीमत होगी ही। फिर आप कहते थे कि समय-समय पर आपने भी उसमे धन लगाया, उसके निर्माण की देखभाल की।"

"देखभाल तो वकील साहब की भी जीवन भर की। तुम तो मेरे पुत्र हो। तुम्हारे लिए मै उतना नही कर सका जितना उनके लिए किया। तब सस्ती का जमाना था। तुमने जब होश सँभाला तो जमाना बदल चुका था। रोटी के ही तब लाले पडे थे।"

"उसी का बदला तो रूपकिशोर चुका रहे है"—सुरेश की माँ ने लम्बी साँस लेकर कहा।

सुरेश बोला, " अब सीधे उँगली घी नही निकलेगा। हमको अपना अधिकार लेना ही पडेगा।"

" कैसे अधिकार मिलेगा ?"—बाबू रामकिशोर ने पूछा।

" दीवानी मे मुकदमा करेंगे। मैने कई वकीलो से परामर्श कर लिया है।"

" नही, यह काम मेरे जीते-जी नही होगा। जिसे पुत्र की तरह पाला, जो अपना ही सगा छोटा भाई है, उसके खिलाफ अदालत जाना मुझसे सम्भव नही होगा। मैने अपने पिता के अतिम क्षण मे उन्हे वचन दिया था कि छोटे भाई को हमेशा पुत्र की तरह समझूँगा।"

" उस बचन के पालन मे तो आपने कोई चूक नही की। हम बेघर-वार के हो गये, हमारा कोई ठिकाना नही। आपने अपना कर्त्तव्य हर तरह निभाया है। ससुर जी का यह कदापि मतलब नही था कि हम अपने पैतृक घर से भी वचित हो जायँ। मुझे तो सुरेश जो कह रहा है, वही ठीक जान पड़ता है।"—पत्नी ने कहा।

बाबू रामकिशोर के लिए स्त्री और पुत्र के विचारो के विरुद्ध निर्णय करना कठिन हो गया था और माँ-बाप की निशानी—पैतृक मकान, उन लोगो का आदि स्थल—उससे भी वह सदा के लिए वचित हो जायँ, यह भी असम्भव था। अब तक वे मौन साधे रहे, इस आशा मे कि शायद रूपकिशोर सच को अपना ले। पर अब तो उनको आये कई वर्ष बीत चुके थे। इतने दिनो मे तो बाबू रूपकिशोर ने उनसे भेट भी नही की थी। यह सोच कर उनका हृदय रो उठा। ऐसा दिन भी कभी आयेगा, यह उन्होने कभी नही सोचा था।

बाबू रामकिशोर बहुत ही व्यग्र हो उठे। अपने कई परिचित मित्रो से उन्होने सलाह की। अत मे सब कुछ सोचकर वह सुरेश के साथ एक वकील के यहाँ गये। वकील के परामर्श से उन्होने नोटिस भेज ही दिया।

लेकिन नोटिस भेजकर भी उनके मन का भार उतरा नही। उनकी चिन्ता बढती ही गयी। जिस भाई को उसकी आँख खोलने के समय से ही पाल-पोस कर बड़ा किया उससे मुकदमा करना पडेगा, यह उनके लिए घोर दु ख का

कारण था। क्या इसी दिन के लिए वे जिन्दा थे, यही सोच उन्हे खाये जा रहा था। सुरेश से उन्होने कहा, " बेटा, अच्छा नही हुआ।"

सुरेश ने गुस्से से भर कर कहा, " अभी मुकदमा तो दायर नही हुआ है, न आप दायर करेगे। मेरा क्या है ? मै तो कुली-मजदूरी कर के भी अपना पेट पाल लूँगा, फुट-पाथ पर सो लूँगा। बाप-दादो की निशानी थी, अपने खून की मर्यादा थी, इसीलिए मैने जोर दिया। अब कभी कुछ नही कहूँगा।"

पिता ने पुत्र के रोष को पहचाना। कुछ बोले नही। ठीक ही था सुरेश अपनी जगह पर, उन्होने सोचा। पर जीवन की सान्ध्य वेला मे जब अस्ताचल का रक्तिम-शिखर साफ दिखायी पड रहा था तब ऐसी बात, जिसकी जीवन भर स्वप्न मे भी उन्होने आशा नही की थी और उसके विरुद्ध जिसे जीवन भर सँवारते ही रहे, बाबू रामकिशोर के जर्जर हृदय को समूल झकझोर गयी। वह बीमार पड गये। बुखार आया, जकड लिया और ऐसा लगने लगा कि अब वह बिस्तर से फिर उठ न सकेगे।

उनकी पत्नी ने कुहराम मचा लिया। डाक्टर बुलाये गये। इलाज प्रारम्भ हुआ। अतिम बीमारी जानकर अहबाब-दोस्त सभी मिलने आये। वयोवृद्ध श्री सहाय भी आये। वे सुप्रसिद्ध नागरिक थे और बाबू रामकिशोर के पिता के मित्र थे।

बाबू रामकिशोर की बीमारी ही नही, उनकी दयनीय हालत देखकर उनकी आँखे सजल हो गयी। अपने को किसी तरह सँभालकर उन्होने कहा," रामकिशोर जी, आपका दु ख समझता हूँ। आप धीरज रखे। भगवान के यहाँ अधेर नही।"

बाबू रामकिशोर मौन सुनते रहे।

श्री सहाय ही फिर बोले, " रामकिशोर जी, जीवन का यही नाटक है। हमेशा यही होता आया है कि बोइये गुलाब और काटिये बबूल। क्यो ऐसा होता है यह कोई जानता नही। आपके पूज्य पिता धर्मात्मा पुरुष थे। सारा जीवन भगवत भजन मे उन्होने बिताया। उन्ही के प्रताप से आप दोनो भाई फूले-फले। लेकिन चाँदी की माया, बाबू रामकिशोर, इसान को काट डालती है। क्या नही है बाबू रूपकिशोर के पास ?"—उदास हो कर उन्होने कहा, "अतुल धन है, अगाध बुद्धि

है, व्यवहार की छाप है दुनिया पर। पर वे चाँदी की चमक मे उलझ गये है। क्या नही किया आपने उनके लिए ? भगवान तो सब कुछ जानता है और हम लोग भी जानते है। पर जाने दीजिए, जो जैसा करेगा, वैसा भरेगा।"

"कैसे है रूपकिशोर ?"—आर्त स्वर मे बाबू रामकिशोर ने पूछा।

"अच्छे ही होगे। आप-जैसे भाई का अनादर कर वे मन से सुखी तो रह ही नही सकते।"—श्री सहाय ने गभीर स्वर मे कहा।

"नही सहाय साहब, भगवान करे वे और भी उन्नति करे और सदा सुखी रहे। उनका क्या दोष ? अपना-अपना भाग्य होता है।"—भाई की याद से बाबू रामकिशोर विह्वल हो उठे। इतने दिनो से बीमार है, भाई देखने भी नही आया ! कैसे आता, नोटिस जो मिल चुकी होगी। बाबू रामकिशोर का मन दर्द से कराह उठा।

सुरेश आ गया। "डाक्टर ने कहा है कि अगूर का रस सुबह, दोपहर और शाम को दिया जाय। एक इजेक्शन बताया है, रोज लगाने के लिए। आज का तो लेता आया हूँ। चार रुपये का मिलता है।"— उसने कहा।

बाबू रामकिशोर ने शून्य भाव से कहा, "इजेक्शन नही चाहिए। यह भी लौटा आओ। ठीक होना होगा तो ऐसे ही हो जाऊँगा।"

सुरेश ने और श्री सहाय ने भी बाबू रामकिशोर के भाव को समझा। जहाँ दो जून की रोटी-दाल भी जुटनी मुश्किल थी, वहाँ अगूर का रस और चार रुपये का इजेक्शन कहाँ से जुटता ?

श्री सहाय ने ऐसा नही कि अभाव कही देखा न हो। लेकिन जहाँ अभाव होने की कोई भी गुजाइश नही थी, वहाँ गरीबी का ऐसा ताण्डव देख कर वे आर्द्र हो उठे और अधिक न ठहर सकने के कारण बाबू रामकिशोर को यथाविधि आश्वासन दे चलते बने।

श्री सहाय सीधे बाबू रूपकिशोर के घर पहुँचे। बाबू रूपकिशोर से उन्होने बाबू रामकिशोर की बीमारी की हालत बतायी और कहा, "शायद उनकी यह आखिरी बीमारी है। आज देखने गया था। बडी दयनीय हालत है, उन लोगो की। डाक्टर ने अगूर का रस पीने को बताया है। एक इजेक्शन बताया है चार

रुपये रोज का। रामकिशोर जी ने मना कर दिया है। दवा-इलाज के लिए भी पैसे नही है।"

वकील साहब को बडे भाई के बीमार पडने का समाचार मिल चुका था। पर ऐसी हालत होगी, इसका अनुमान उन्हे नही था। श्री सहाय की ओर प्रश्न सूचक नेत्रो से देखते हुए उन्होने कहा, "मुकदमा करने की नोटिस दी है उन्होने।"

"जब बर्तन-भाडे साथ है तो खटकते ही रहते है। लेकिन इसीलिए भाई के ऐसे समय मे भाई का काम न आना अनुचित होगा।"

श्री सहाय बाबू रूपकिशोर के पिता के मित्र थे। शायद इसी कारण वकील साहब ने शालीनता से कहा, "मदद मैने हमेशा करनी चाही, पर भाई अगर सम्बन्ध तोड ले और मुकदमे की धमकी दे तो उसकी मदद कैसे की जाय।"

श्री सहाय ने बाबू रूपकिशोर को ध्यान से देखा। बडा भाई, जिसने पिता की तरह बाबू रूपकिशोर को पाल-पोस कर आज जो है वह बनाया, उसकी बाबू रूपकिशोर मदद करना चाहते है और वह बडा भाई दारुण दुःख उठा कर भी आज भी उनकी प्रशसा करते थकता नही। मदद क्या रामकिशोर जी स्वीकार करेगे—सोचा श्री सहाय ने। वह तडप-तडप कर मर जायेगे तब भी छोटे भाई से मदद नही स्वीकार करेगे। श्री सहाय बाबू रूपकिशोर की मदद की उक्ति से दुखित हुए। चलने की इच्छा प्रकट कर बोले, "अपना कर्त्तव्य समझा कि आप से उनकी हालत बता जाऊँ। लेकिन भाइयो के आपसी झगडे मे मै पड ही कैसे सकता हूँ ?"

श्री सहाय के चले जाने के बाद बाबू रूपकिशोर शून्य भाव से छत की कडियाँ निहारते रहे। बडे भाई की बीमारी और दयनीय दशा को बताने के लिए उनके पास श्री सहाय का आना साधारण घटना नही थी। पर वे क्या करे, यही नही समझ पा रहे थे। मन बहलाने के लिए किसी किताब के पन्ने उलटने लगे।

माधुरी आकर कमरे मे खडी हो गयी।

पिता ने पूछा, "क्या है ?

वह चुप खडी रही। उसने कुछ कहा नही।

वकील साहब ने प्रेम से पूछा, "क्या है बेटे, कहती क्यो नही ?"

माधुरी जैसे अपनी वाक्-शक्ति खो चुकी हो ! वह गुम-सुम खडी रही। वकील साहब ने उसकी मनोदशा को समझा। उठ कर उसके पास आ स्नेह से उसका सर सहलाते हुए बोले, "ताऊ जी के लिए दुखी हो ?"

"बाबू जी, मै हो आऊँ उनके घर ?" —माधरी का कठ पिता का स्नेह पाकर फूट गया।

"जाने के लिए कहना बडा कठिन है बेटा ! मै तुम्हारे भाव को समझता हूँ। पर जो बडा भाई इसी नगर मे रह कर हम लोगो के लिए अनजान बना रहा, जो हमसे मुकदमा लडने जा रहा है, उसके यहाँ क्या जाना उचित है ?"

"ऐसे समय मे बाबू जी, न जाना ही अनुचित होगा ?"—माधुरी की आँखो से जल की धार बह निकली।

"तो चली जाओ, अपनी माँ से भी पूछ लो। और यह, "—सौ का एक नोट निकाल कर देते हुए बोले, "किसी तरह वहाँ दे देना। वे लेगे नही। कुछ ऐसा करना कि बुरा न माने।"

पिता की आज्ञा पा माधुरी माँ के पास गयी। गृहस्थी के किसी काम मे वह लगी थी। माधुरी ने कहा, "माँ दारागज हो आऊँ ? पिता जी ने कह दिया है। यह भी दे देने को कहा है।"—उसने नोट दिखाया, "ताऊ जी बहुत बीमार है।"

जान्हवी ने एक क्षण को माधुरी की ओर देखा, "जा बेटे, हो आ। कितने भी तो अपने बुजुर्ग है।"

माधुरी रिक्शे से गयी। ड्राइवर कार के लिए रखा गया था, वह उस समय था नही।

दारागज मे ताऊजी के मकान का दरवाजा खुला था। लेकिन चारो ओर सुन-सान की चुप्पी थी, कही से भी कोई आहट या आवाज नही मिल रही थी।

कमरे के अदर घुसते ही उसने देखा कि ताऊजी एक बाँस की खटिया पर बेहोश-से लेटे है। उन्हे पहचान पाना मुश्किल था।

आहट पाकर ताऊजी ने आँखे माधुरी की ओर फेरी। बडी देर तक पहचानने की कोशिश करते रहे, लेकिन पहचान नही पाये। तब माधुरी रोकर बोली, "ताऊजी !"—और मरणासन्न ताऊजी से लिपट गयी।

"अच्छी तो हो, माधुरी बेटे ?"––माधुरी को पहचान कर भर्राये कण्ठ से ताऊजी ने कहा और चुपचाप रोने लगे।

"ताऊजी, तुम जल्दी अच्छे हो जाओ, जल्दी।"––माधुरी की आँखे भी बरस पडी और वह ताऊ जी की खटिया के सहारे धम्म से बैठ गयी।

माधुरी का स्नेह-परस पा बाबू रामकिशोर मृत्यु-शैया पर भी अतीत मे जा खोये थे, जहाँ मन का भाव-विभाव सब मिट चुका था और केवल एक चेतना शेष थी कि नन्ही माधुरी उनकी अपनी बेटी है और न वे उसके बिना रह सकते है और न वह उनके बिना। और माधुरी सुन्न बनी आँखो से अविरल आँसू बहा रही थी। देर तक ऐसी हालत रही, न माधुरी का रोना रुका, न बाबू रामकिशोर की चेतना मे कोई फर्क आया।

बाबू रामकिशोर ही बहुत देर के बाद माधुरी को सुस्थिर कराने की कोशिश मे बोले, "बेटे सब लोग कुशल से तो है ?"

माधुरी अपने मे आ चली थी। उसने ताऊजी से फिर कहा,"तुम जल्दी अच्छे हो जाओ, ताऊजी।"

"तुम्हारी बात कभी टाली है, बेटा ?"

ताऊ जी के अनुराग-भरे शब्दो से माधुरी की भावना को बल मिला। यथार्थ मे वापस आकर उसने पूछा, "ताईजी नही है क्या ?"

"सुरेश दुकान गया है। तेरी ताईजी पडोस के सेठ जी के घर गयी है, आती ही होगी।"

"तुम्हे अकेले छोडकर वे क्यो गई ?"––माधुरी के मुँह से निकला।

ताऊजी के अब फूट-फूट कर रोने की पारी थी। रोते-रोते उन्होने कहा, "बेटे, हम लोगो के अब बुरे दिन आ गये है। जीवन मे यह दिन भी देखना बदा था। तेरी ताईजी ने सेठ जी के यहाँ नौकरी कर ली है। वह उनकी रसोई बनाती हैं।"––कह कर ताऊजी ने घोर लज्जा से अपना मुँह छिपा लिया।

और माधुरी, बी० ए० की समझदार माधुरी को काटो तो खून नही। उसकी इच्छा हुई कि पृथ्वी फट जाय और वह उसमे समा जाय।

ताऊजी के पास तो वह आकर बैठ चुकी थी। लेकिन ताईजी को मुँह दिखाना

उसके लिए अब किसी तरह सम्भव नही था । उसने निश्चय किया कि वह अपना मुँह ताईजी को नही दिखायेगी ।

सौ का नोट निकाल कर ताऊजी के तकिए के नीचे उसने सुरक्षित रख दिया । तकिए की आहट से ताऊजी ने पूछा, "क्या है माधुरी ?"

"कुछ नही, ताऊजी, बिस्तरा ठीक कर रही थी । अच्छा ताऊजी, मै कल फिर आऊँगी, रोज आऊँगी । अब चलूँ ।"

"बेटे, तेरे पिताजी तो अच्छे है ?"

माधुरी ताईजी के आने के पहले चली जाना चाहती थी । वह उठ खडी हुई; उसी भाव से जैसे शव अतिम स्नान के लिए उठाया जाता है । बाहर सडक पर आकर एक रिक्शे मे बैठ गई ।

घर पर केदार-करुणा ने कुछ पूछा । वह बोली नही । सीधे जान्हवी के कमरे मे आकर माँ की गोद मे उसने अपना मुँह छिपा लिया और फूट-फूट कर रोने लगी । जान्हवी ने उसके मन के दु ख को समझा । लेकिन असली बात वह जान नही सकी । छोटे बच्चे की तरह उसने माधुरी को अपनी गोद मे दुलार लिया ।

माधुरी ने आवेश कम होने पर धीरे-धीरे ताऊजी की दशा और ताईजी के बारे मे बताया और कहा, "ताऊजी को यहाँ फौरन ले आना जरूरी है ।"

जान्हवी ने भी इस स्थिति की कल्पना नही की थी । वह भी भर आई, पर मौन रही । माधुरी के सवाल के उत्तर मे कुछ कहा नही ।

शाम को बाबू रूपकिशोर जब आये तो चाय समाप्त होते ही माधुरी ने कहा, "ताईजी, पडोस के किसी सेठ के यहाँ रसोई बनाने का काम करती है ।"

"किसने बताया तुम्हे ?"—बाबू रूपकिशोर पर मानो गाज गिरी । उनका चेहरा फक्क हो गया ।

"ताऊजी घर मे अकेले थे । उनको पहचान पाना भी कठिन है । मुझे भी उन्होंने आवाज से ही पहचाना । बाबूजी, उनको यहाँ फौरन ले आना जरूरी है ।"—माधुरी के स्वर मे कातर विनती थी । उसने फिर कहा, "आपको और अम्मा को पूछ रहे थे । केदार-करुणा को आशीर्वाद कहला भेजा । ताईजी काम पर गयी थी । सुरेश दुकान पर गया था । ताऊजी मुझे पहचान कर बहुत रोये ।"

करुणा सुन रही थी, बोल उठी, " बाबूजी, कल हम जाकर उन्हे गाडी मे लायेगे ।"

जान्हवी का हृदय भी भरा था, बोली, "बच्चो की राय है तो जाकर ले ही आओ ।"

" कौन सा मुँह लेकर मै जाऊँ उनके पास ?"—वकील साहब की आँखे भी गीली थी और चेहरे पर जैसे स्याही पुती हो ।

माधुरी ने समझ कर कहा, "बाबूजी, मै ले आऊँगी । वे इतने कमजोर हो गये है कि उठा-बैठा भी नही जाता ।"

" अच्छा,"—पत्नी से उन्होने कहा, " नीचे के दो कमरे खाली करा दो ।"

बाबू रूपकिशोर ने सम्पूर्ण मन से स्वीकृति दी थी । माधुरी नीचे के कमरे साफ करा रही थी । जान्हवी भी हाथ बँटा रही थी । लेकिन सात बजे सुरेश आया। बाबू रूपकिशोर को प्रणाम कर बोला, " माधुरी गयी थी । शायद भूल से यह पैसा छोड आयी ।"

सौ का नोट उसने वकील साहब की मेज पर रख दिया और चला गया ।

बाबू रूपकिशोर तो जैसे सज्ञाहीन हो गये ।

माधुरी को जब बात मालूम पडी तब उसने कहा, "मै जानती थी । बहुत छिपाकर मैने उनके तकिए के नीचे रखा था । तकिए की हलचल से उन्होने पूछा था, 'क्या है ?' मैने झूठ कहा था—'बिस्तरा ठीक कर रही हूँ", उनसे कहने का साहस नही हुआ था । पर मै कल उनको ले जरूर आऊँगी । क्या वे मेरे ताऊजी नही है ?"

" नही बेटा, वे आने के नही । मै उन्हे जानता हूँ ।"—दु ख से विह्वल बाबू रूपकिशोर ने कहा ।

" मै जरूर ले आऊँगी बाबूजी "—माधुरी ने कहा ।

बाबू रूपकिशोर ने फिर कुछ नही कहा । माधुरी की ओर देखते रहे । उनके पारिवारिक जीवन के अतीत की वह अतिम कडी थी । अपने ताऊजी की गोद मे खेली थी, बडी हुई थी, कितना विश्वास था अपने पर उसे ताऊजी को लेकर ।

रात भर बाबू रूपकिशोर को नीद नही आई । बडे भाई बुला रहे है—बार-

बार यही मन मे आता था। वह रात भर इसी चिन्ता मे करवटे बदलते रहे।

दूसरे दिन जब वे कचहरी जाने लगे तो माधुरी ने कहा, "गाडी अभी भेज दीजियेगा।"

बाबू रूपकिशोर ने कुछ कहा नही। लेकिन गाडी उन्हे कचहरी पहुँचा कर लौट आयी। माधुरी ने सोचा था, जब ताईजी न हो, तब वह जाकर ताऊजी के ले आयेगी। वह उसके ताऊजी थे। क्या उसकी बात वह नही मानेगे? जरूर मानेगे, उसका निश्चित विश्वास था।

लेकिन जब वह दारागज पहुँची तो गली से ही उसे ताईजी के रोने का स्वर सुनायी पडा। माधुरी के पॉव आशका से रुक गये। किसी तरह मकान के दरवाजे तक वह पहुँची। कमरे मे तीन-चार आदमियो की भीड थी। डाक्टर परीक्षा कर रहे थे। डाक्टर ने कहा, "सब से जरूरी तो यह है कि इन्हे किसी दूसरी जगह मे फौरन ले जाया जाय।" यह कह तो गये डाक्टर, पर मन मे उन्हे बडा पश्चात्ताप हुआ। अयर मरीज किसी अच्छी जगह मे रहने के काबिल होता तो क्या वह ऐसे मकान मे रहता!

यह सोच कर उन्होने कहा, "अगर कोई उपयुक्त जगह नही है तो इन्हे सरकारी अस्पताल मे ले जाया जाय। मै अस्पताल के डाक्टर को लिख देता हूँ।"

"मै ताऊजी को ले जाने आई हूँ।"—माधुरी ने भीतर आकर कहा।

"आप कौन है?"—डाक्टर ने पूछा। ताईजी रो रही थी। सुरेश डाक्टर की बतायी दवा लाने बाजार गया था। कमरे के दूसरे लोग माधुरी को पहचानते नही थे।

"ये मेरे सगे ताऊजी है। मेरे पिता है बाबू रूपकिशोर!"—माधुरी ने डाक्टर से बताया।

डाक्टर का आश्चर्य रोके नही रुका। बोल पड़े, "क्या ये वकील साहब के भाई है? इतने दिनो से परिचय है, कभी बताया नही इन्होने।"

तब तक बाबू रामकिशोर आँखे बन्द किये ही बोले, "कौन माधुरी बेटा, तुम आ गयी। रूपकिशोर अच्छे तो है। केदार कहाँ है? करुणा किस दर्जे मे पढती है? महेश सुना, बाहर पढता है। डाक्टर साहब, मेरे भाई को एक बार बुला दो।"

डाक्टर ने माधुरी से कहा, "उन्हे कल से सरे शाम का दौरा पडता है। अच्छा किया जो आप आई । कोई सवारी है ?"

"जी हॉ, गाडी सडक पर खडी है ।"

"मै भी पहुँचाने चलूँगा । ले चलिए ।"

सुरेश आ गया। घोर विरोध करना चाहता था पिता के ले जाने का। लेकिन पिता की हालत और इतने लोगो का सामना——वह कुछ कह नही सका और सुरेश की मॉ तो अपनी सुध-बुध खो केवल रो रही थी ।

डाक्टर और दूसरे लोगो की सहायता से चारपायी पर ही उठाकर बाबू रामकिशोर को गाडी मे ला लिटाया गया । माधुरी ताई जी को सहारा देकर लायी । वह जैसे मुर्दा हो, ऐसे चली आई । सुरेश और डाक्टर साथ आये ।

घर पर बाबू रामकिशोर को बच्चो के कमरे मे पलॅग पर लिटाया गया। वह बेहोश थे । माधुरी ने कचहरी से पिता को फौरन ले आने के लिए गाडी भेज दी ।

ताई जी चारपायी के पास मुर्दा-सी बैठ गयी । दवा-इलाज का काम माधुरी ने सॅभाला ।

जान्हवी जेठानी का पॉव छूने डाक्टर के जाने के बाद कमरे मे आई, पर जेठ और जेठानी की हालत देखकर वह दरवाजे पर ही गश खाकर गिर पडी । सुरेश माधुरी, महरिन के सहारे उसे उठा कर ऊपर ले गये ।

बाबू रूपकिशोर को गाडी लेकर तब तक आ गयी । भाई के पास गये बाबू रूपकिशोर । उनके कमरे मे प्रवेश करते ही भाई ने ऑखे खोली । भाई को पहचान गये । टूटे-फूटे शब्दो मे उन्होने पूछने की कोशिश की, "तुम अच्छे तो हो।" बाबू रूपकिशोर उनके चरणो पर गिर पडे । पर जब माधुरी ने पिता को सॅभाल कर उठाया तो ताऊ जी फिर बेहोश थे ।

तीन दिन तक उनका शरीर बेहोशी की हालत मे जिन्दा रहा। बाबू रूपकिशोर ने अच्छे-से-अच्छे डाक्टरो का इलाज कराया । लेकिन बाबू रामकिशोर की बेहोशी फिर मिटी नही और तीसरे दिन उनके [illegible] उड गये । उन्होने बाबू रूपकिशोर की कैफियत नही सुनी, जो बाबू रूपकिशोर देना चाहते थे,

किसी से अपनी स्त्री और सुरेश के लिए कुछ कह नही गये जो शायद वे चाहते थे, पारिवारिक मकान मे आकर उन्हे दुनिया को छोड जाना था—वे कूच कर गये ।

शव के देखने वालो ने बताया था कि उनके चेहरे पर अटल शाति विराजमान थी, जैसे परम सन्तोष से ही उन्होने शरीर का त्याग किया हो ।

: १३ :

बाबू रामकिशोर को मरे छ महीने से अधिक हो चुके थे । सुरेश की दुकान का काम बाबू रूपकिशोर ने छुडा दिया था । सेठ घासीराम के जरिये कलकत्ता मे सेठ के समधी के एक फर्म मे सुरेश को दो सौ रुपये की नौकरी मिल गयी थी । वह कलकत्ता चला गया था । कलकत्ता मे मकान इत्यादि ठीक कर वह माँ को लिवा जाने आया था ।

भाई की मृत्यु के बाद वकील साहब और जान्हवी का भी व्यवहार सुरेश की माँ के प्रति आदर और सहानुभूति का हो गया था । बच्चे पहले से ही ताईजी को प्यार करते थे । ताईजी का भी देवर और उसकी पत्नी की ओर से मन साफ हो चला था । जब पति ही ने देवर को आखिरी साँस तक अपने पुत्र की तरह माना तो उन्हे क्या लेना था ? सुरेश की जब आशा से कही अच्छी नौकरी लग गयी तब तो हृदय की रही-सही ग्लानि भी मिट गयी । वैसे अब अपना जीवन उन्हे भार ही लग रहा था । वह देवरानी से अक्सर कहा करती थी, "न मालूम मैने कौन-सा पाप किया था ? वे चले गये और मै यही हूँ ।"

जान्हवी को जेठानी से अब हार्दिक समवेदना थी, वह उनका हर बात में आदर करना न चूकती थी, पिछली कालिमा को जैसे धोने की चेष्टा कर रही हो ।

सुरेश ने जब आकर कहा, " माँ को ले जाऊँगा ।" तब जान्हवी को सच्चा दु ख हुआ । उसने कहा, "भइया, इस उम्र मे घर छोड कर परदेश जाना जेठानी जी के स्वास्थ्य के लिए अच्छा नही होगा ।"

जेठानी सुन रही थी । वे बोली, "नही माधुरी की माँ, एक बार घूम आने

दो। तुम लोगो के अलावे अब हमारा ठिकाना ही कहाँ है ? तुम लोगो के ऋण से क्या कभी भी हम उऋण हो सकेगे ?"

बाबू रूपकिशोर ने भी कहा, "भाभी, गलती सबसे होती है। मेरी पहाड-जैसी गल्ती को तुम माफ नही करोगी तो कौन करेगा ? घर छोडकर क्यो जाना चाहती हो?"

"नही भइया, तुमने हम लोगो को कहाँ-से-कहाँ पहुँचाया। तुमने परिवार का नाम उज्वल किया। तुमसे कोई गल्ती नही हुई। सबको करम का लिखा भोगना ही पडता है। अब जाने ही दो। तुम्हारे कारण सुरेश को रास्ता मिल गया। उसे यही आशीर्वाद दो कि वह आदमी बने और भइया तुम्ही अब इसके सब कुछ हो। उसका हमेशा ध्यान रखना।"

"भाभी, मेरे लिए जैसा महेश, वैसा सुरेश, इसका विश्वास रखना। पर तुम जाओ मत।"

"फिर लौटूँगी भइया, तुम लोगो को छोडकर जाऊँगी कहाँ ?"

"भाभी, सुरेश की शादी अब जल्दी कर देना चाहता हूँ। तुम शादी के बाद चली जाना।"

भाभी के मन की बात थी यह। लेकिन बोली, "जब कहोगे लौट आऊँगी। इस वक्त तो हो ही आने दो।"

चलते समय माधुरी को गले लिपटा कर ताईजी रो पडी और बोली "माधुरी, मेरी बच्ची, ताऊजी तेरे लिए हमेशा रोया करते थे। एक दिन भी न गुजरा होगा जब उन्होने तेरी कोई न कोई बात न की हो। तू सदा सुखी रहेगी, बेटा ! उस बूढे का आशीर्वाद वृथा नही जायेगा।"

ताईजी और सुरेश कलकत्ता चले गये।

जान्हवी ने पति से स्वीकार किया कि हम लोगो से भारी गलती हो गयी थी।

बाबू रूपकिशोर ने उत्तर मे कहा, "गलती हो ही जाती है। यही माया की भूलभुलैया है" और फिर वह चुप रह गये थे।

पत्नी ने समझा कि माँ-तुल्य भाभी के जाने से पति के चेहरे पर उदासी छा

गयी है। लेकिन उदासी का कारण कोई दूसरी बात थी, जिससे बाबू रूपकिशोर का मन जल रहा था।

एक दिन बरसात की-सी शाम में वह दीन दुनिया से भाग कर लूकरगंज गये थे। घर पर कह गये थे कि प्रतापगढ़ जा रहे हैं, दूसरे दिन लौटेंगे।

घोर दुःख और मन की अशांति में बिल्वमाला ही उन्हें क्यों सहारा दे पाती थी और जान्हवी नहीं, यह बाबू रूपकिशोर कभी समझ नहीं सके थे। कितनी बार उन्होंने इसका कारण समझने की कोशिश की थी। इतना अनुमान बस उन्होंने लगाया था कि जान्हवी जहाँ उनका संसार चलाने में सहायक है, वहाँ बिल्वमाला उनके हृदय की रागात्मक अनुभूति है। पर विश्वास इस पर टिका नहीं था, तर्क यह कारण स्वीकार नहीं कर सका था। उन्होंने संतोष की साँस ली थी कि बिल्व-माला उनके जीवन में आयी, अन्यथा उनका जाने क्या हाल होता! बिल्वमाला तब से उनके लिए हृदय की वस्तु बन गयी थी और सदा चिन्ताओं और दुःखों से पनाह लेने वह उसी के पास, चाहें या न चाहें, पहुँचा करते थे।

बिल्वमाला के घर उन्होंने देखा कि रानी स्वयं बीरा की चोटी-कंघी अपने शृंगार-कमरे में कर रही हैं। ऐसा उन्होंने पहले-पहल ही होते देखा था।

"बात क्या है?"—बाबू रूपकिशोर ने कमरे में प्रवेश करते ही पूछा।

"मेरी तबियत आज खराब है,"—बिल्वमाला मुस्कराती हुई बोली, "मुझे मालूम था कि आज तुम आओगे।"

"अच्छा!"—कुछ हैरानी प्रकट करते हुए बाबू रूपकिशोर ने कहा, "तुम्हें सदा मालूम कैसे हो जाता है कि आज मैं आऊँगा। क्या कोई खुफ़िया लगा रखा है?"

रानी ने परिहास किया, "इससे पूछो। यही बता दिया करती है। कहती है कि दिल की बात दिल को मालूम हो जाती है।"

"दूसरे के बहाने अपनी बात कहने का तरीका बुरा नहीं!"—बाबू रूपकिशोर ने भी परिहास किया।

बीरा चली गयी तब रानी ने कहा, "कपड़े बदल डालो। स्नान करना हो तो कर लो।"

"हाँ नहाऊँगा। टब भरवा दो।"

धीरा को हुक्म हुआ, टब भरने को। गुसलखाने मे टब भर कर स्नान का सारा सामान यथास्थान रख कर धीरा चली गयी।

"तुमने इसे बेमौत मार डाला है!"—रानी ने परिहास किया। लेकिन स्वर मे सचाई की गम्भीरता थी।

बात समझ कर बाबू रूपकिशोर ने कहा, "मैने तुमसे बता दिया है कि इस पवित्र शरीर को—रानी को बॉहो मे भर लिया उन्होने—छोड कर एक दूसरा ही काम तुम्हारे कहने से मुझे करना पडा। उसी को मै सर्वथा अनुचित मानता हूँ। अब आगे यह भूल कभी नही होगी।"

"तुम मेरे देवता हो। तुम्हारे पवित्र प्रेम को मै जानती हूँ। लेकिन हमारी रीति की मर्यादा भी तो है। क्या तुम यह पसन्द करोगे कि धीरा मुझे छोडकर किसी के साथ भाग जाय और फिर हमारी जग-हँसाई हो ?"

"नही बिल्वमाला, जो हो चुका वही नही होना चाहिए था। वह भी तुम्हारी प्रसन्नता के लिए करना पडा।"

"सच कह रहे हो ?"

"क्या विश्वास नही ?"

"अविश्वास की बात नही। पर मै तो अब ढलने की उमर को आ रही हूँ।"

"और मै भी तो पचास को छू रहा हूँ।"

"पुरुष कभी ढलता नही। वह भी तुम्हारे जैसा नर-रत्न ?"

बाबू रूपकिशोर ने रानी को प्रेम-पाश मे बॉध कर प्रेम के पुलक से कहा, "कभी मेरी ऑखो से तो अपने को देखा होता ?"

"तुम्हारी दया से कभी उऋण हो सकूँगी ? शायद तुम्हे विश्वास न हो। जेनरल मेरे जीवन मे आये जरूर थे। लेकिन मै सच कह रही हूँ कि भगवान ने अगर तुम्हे नही मिलाया होता तो प्रेम होता क्या है, मै जान ही नही पाती।"

"अगर मै भी कहूँ कि मै भी तुम्हारे लिए यही मानता हूँ !"

बिल्वमाला प्रसन्नता से खिल उठी और बोली, "तुम मेरे चिर काल के देवता हो। मेरे स्वामी, जन्म-जन्म के साथी।"

धीरा कुछ रखने गुसलखाने मे गयी।

"धीरा !"—रानी ने पुकारा ।

"बीरा क्या कर रही है ?"—उन्होंने पूछा ।

"आ ही रही है ।"

"उससे कह दे कि जौनपुर से जो गुलाव जल की नयी बोतल आया ह, वह टव मे उडेल दे ।"

बीरा ने स्वय सुन लिया था। आलमारी से गुलाबजल की बोतल निकाल कर टव मे ढालने चली ।

"देखे, जोनपुर का गुलाव !"—वाबू रूपकिशोर ने वीरा के हाथ से बोतल ले ली । काग खोली तो सुगन्ध से कमरा भर गया ।

"आधी ही बोतल छोडना ।"

रानी ने कहा, "दोनो बहने बिलकुल एक-सी है। दिखायी भी एक-सी ही पडती है । पाँच ही साल का तो फरक है दोनो की उम्र मे ।"

वकील साहब ने निश्चयात्मक शव्दो मे कहा, "यह कदापि सम्भव नही बिल्वमाला, लालच मत दो ।"

"मुझे चाहे नरक मे जाना पडे। मेरा चाहे धर्म भ्रष्ट हो जाये ।"—रानी के स्वर मे सच्चाई का रोष था ।

"बिल्वमाला, तुम मुझे समझती क्यो नही ?"—वाबू रुपकिशोर ने भी आग्रह के स्वर मे कहा ।

"अच्छा तो मै कोप-भवन मे जाती हूँ ।"

"मैंने मतलब नही समझा।"—रानी के स्वर की गम्भीरता से विचलित हो उठे वाबू रूपकिशोर ।

"कोप-भवन की हमारे यहाँ मर्यादा है। पत्नी यदि पति से रूठ कर कोप-भवन मे जाती है तो पति का कर्त्तव्य है कि पत्नी को मनाकर कोप-भवन से वाहर लाये । पत्नी मानती तभी है जब उसके रूठने का कारण मिट जाय ।"

"यदि पति मनाने ही न जाये तो ?"

"तब पत्नी की लाश ही कोप-भवन से बाहर चिता पर रखने के लिए लायी जाती है ।"

काँप गये बावू रूपकिशोर। बिल्वमाला की ओर जो देखा तो उसके मुख-मण्डल का भाव असाधारण रूप मे गम्भीर था। कहा उन्होने, "घोर धर्मसकट मे तुमने डाल दिया है। मैने प्रतिज्ञा की है कि अव ऐसा नही, कभी नही। लेकिन सोचने का समय दो।"

"जाओ स्नान कर आओ। तव तक मै भी तैयार हो जाऊँ। स्नान आज धीरा ही करायेगी।"—फिर बोली, "स्नान कराने मे क्या दोप है? हमारे यहाँ दासी के परिणय का प्रतीक पेय देना है। उससे पहले वह मात्र दासी है और कुछ नही। जब तुम 'हाँ' कह दोगे तभी पेय उसे दिया जा सकता है।"

"थोडी देर को बीरा को भेज दो, उसी से धीरा को बुला लूँगा।"

"तुम मुझे जान नही सके। जो मेरी सम्मति है, वही बीरा की है। लेकिन उसे भेजे देती हूँ।"—दु.खी होकर बिल्वमाला बोली। धीरा को आवाज दी रानी ने। दरवाजे के बाहर से बीरा बोली—

"मै रसोई मे महाराज की मदद कर रही हूँ। धीरा स्नान करा देगी।"

"मैं ह्विस्की भेजती हूँ। ह्विस्की लेकर टब मे बैठो तो नहाने का आनन्द ही कुछ और होता है। जेनरल को यह बहुत पसन्द था।"

"अब मै कोप-भवन मे जाता हूँ।"—रूठने का भाव बनाकर बाबू रूपकिशोर ने कहा।"

"क्या अपराध हो गया बाँदी से?"—रानी ने अनुनय का नाटक किया।

"मेरे रहते तुम्हे जेनरल की अब भी याद आती है। जेनरल न तुम्हारे जीवन में आया था, न है। मै पहले से ही, जन्म-जन्मान्तर से तुम्हारा हूँ। तुम मेरी रानी हो और मै तुम्हारा—"

"राजा!"—बिल्वमाला ने परिहास को समझ कर वाक्य पूरा किया और कहा, "तुम परिहास मे जो बात कह रहे हो, वह ध्रुव सत्य है और जेनरल की याद, यहाँ नही—हृदय दिखाया— उस दीवार पर टँगी है।"

मुस्कराती, प्रेम से भरी, विल्वमाला चली गयी।

लेकिन पेय लेकर बिल्वमाला ही आयी और बोली, "अच्छी मुसीबत आ पडी। [illegible] बैठी है और उधर बीरा ने आने से इनकार

कर दिया। धीरा को लाख मनाया, मगर आती ही नहीं और बीरा न मालूम क्यों मुँह फुलाये है ? जो हो, स्नान कराने के लिए तुम्हारी चिर दासी मैं तो हूँ ही।"

बाबू रूपकिशोर ऐसे संकट में पहले——बीरा के समय भी——नहीं पड़े थे। रनिवास की क्या यही रीति है कि राजा——पति को ठीक एक गुलाम की स्थिति में रखा जाय ? वह गुलाम से अधिक अन्तःपुर में हैं ही क्या——सोचा उन्होंने। रानी की इच्छा ही सर्वोपरि है। शायद राजमहलों की यही मर्यादा हो। कई प्रसिद्ध नवाबों और महाराजाओं का उन्हें ध्यान आया जिनके हरम में तीन सौ बेगमें या रानियाँ थीं। उनकी कथाओं को अत्यन्त विस्मय से बाबू रूपकिशोर ने पढ़ा था। कभी उनका जीवन वे समझ नहीं सके थे। अब विस्मय का कारण अनुपात में मिट चला था। राजमहलों की रीति-रिवाजों का एक रूप——छोटा ही सही——बिल्वमाला से परिणय के बाद उन्होंने देख लिया था। सोचा उन्होंने, बिल्वमाला धर्मसंकट में है, रौरव नरक उसे दिखाई पड़ रहा है। मैं धर्मसंकट में हूँ। शायद बीरा और धीरा भी धर्मसंकट में हैं। क्या धर्म है, क्या अधर्म——यही नहीं समझ में आता है ? क्या धर्म की परिभाषा देश-काल, रीति-रिवाज़ के अनुसार बदलती है ? शायद——।

बिल्वमाला ने तब तक कहा, "ह्विस्की लो और नहा लो। क्यों नाहक माथा-पच्ची कर रहे हो ?"

एक घूँट ह्विस्की का पी, हाथ में गिलास लिए हुए बाबू रूपकिशोर स्नानागार में घुसे। बिल्वमाला पीछे-पीछे आई। उसने वकील साहब के कपड़े उतारे। टब पानी से लबालब भरा था। वकील साहब को बिल्वमाला ने टब में डाल दिया। संगमरमर के टब में, गुलाब-सिक्त जल के बीच, बाबू रूपकिशोर का शरीर जल की हिलोर में चमक रहा था। बिल्वमाला देखती रह गयी——स्वस्थ, सुडौल शरीर, चौड़ा वक्षस्थल, भरी जाँघें, तना सुन्दर आकार, जल में लहराता हुआ।

"कौन कहता है कि तुम पचास के हो रहे हो ? यौवन की तरुणाई तो अभी रग-रग से फूट रही है।"——हँस कर चित्रवत्-सी जल के अन्दर प्रेमी के शरीर को देखते हुए बिल्वमाला ने कहा।

स्नानागार के दरवाजे पर दस्तक पड़ी।

"कौन है, भीतर आ जाओ ।"

"मै हूँ, बीरा ।"—कहते हुए बीरा ने प्रवेश किया ।

"आ गई । मुँह क्यो लम्बा है ? अच्छा स्नान करा दे । मै भी तैयार हो आऊँ ।"

विल्वमाला के जाने के बाद बाबू रूपकिशोर ने बीरा से पेय का गिलास माँगा और परिहास किया, "रूठ गयी थी ?"

उत्तर न दे, वह गिलास देने लगी । बाबू रूपकिशोर ने कहा, "अपने हाथ से पिला दो ।"

शात भाव से गिलास उसने बाबू रूपकिशोर के ओठो से लगा दिया । एक ही घूँट मे गिलास खाली हो गया ।

"रूठ गयी हो ?"—टब के जल मे लहराते बाबू रूपकिशोर ने फिर पूछा ।

"क्यो रूठी हो बताओगी नही ?"—सवाल का जवाब पाने के लिए बाबू रूपकिशोर ने रसिकता से पूछा ।

"आपने जीजी रानी की बात नही मानी ।"—बडी कठिनाई से बीरा का मान टूटा ।

"क्या तुम भी वही चाहती हो ?"

"जीजी रानी की इच्छा ही मेरी इच्छा है । आपसे पहले कह चुकी हूँ । हम तो दो बहनें ही है । दर्जन भर भी होती तो यही धर्म है ।"

"अच्छा मै तुम्हारी जीजी रानी की बात नही टालूँगा । अब कमल की तरह खिल जाओ ।"—कहने के ढग पर बीरा मुस्करा पडी ।

बाबू रूपकिशोर स्नान समाप्त कर टब से उठने लगे ।

बीरा ने कहा, "नही, मै धीरा को भेजती हूँ । वह शरीर मल देगी ।"

"तुम क्यो नही मल देती ?"—लालच-भरे नयनो से बाबू रूपकिशोर ने कहा ।

"धीरा अभी आई ।"—कह कर वह भाग गयी ।

वकील साहब को ह्विस्की ने गुलाब-सिंचित जल के हम्माम में नयी स्फूर्ति दे दी थी, वह छोटे-से टब मे तैरने की कोशिश कर रहे थे जब धीरा को भीतर ढकेल कर बाहर से बीरा ने स्नान-कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया ।

नयी स्फूर्ति मे धीरा बीरा से भी अधिक कमनीय कुसुम लगी बाबू रूपकिशोर को। धीरा चुपचाप खडी थी।

नये पुष्प के गन्ध समीरण ने बाबू रूपकिशोर के शरीर के तनाव को और बढा दिया। धीरा भी कनखियो से वकील साहब के लहराते हुए स्वस्थ शरीर को देख रही थी कि वकील साहब ने साबुन माँगा।

साबुन की बट्टी उठाकर धीरा ने उनका शरीर उससे मल दिया। टब झाग से भर गया। धीरा के हाथो के स्पर्श से बाबू रूपकिशोर सिहर उठे। धीरा से बोले, "मैने तुम्हे दु खी कर दिया।"

धीरा ने कोई उत्तर नही दिया।

"टब का पानी निकाल कर नया पानी भर दो।"

टब की नाली खोल दी धीरा ने। पानी बह गया। तब नाली को बन्द कर उसने ऊपर का नल खोल दिया।

टब के भरने के बाद वकील साहब पानी मे देर तक लहराते रहे। फिर निकल आये। तौलिये से बदन सुखाया धीरा ने। कपडा पहनाया। वह जा ही रही थी कि वकील साहव ने उसकी बाँह पकड उसे खीचना चाहा। लेकिन एक ही झटके से छुटा कर धीरा स्नान-कमरे से बाहर चली गई।

बाहर कमरे मे जब वकील साहब बैठे तो बीरा पेय लायी। पेय का घूँट लेकर वकील साहब ने पूछा, "तुम्हारी जीजी रानी अभी तैयार नही हुई।"

"मैं आ गई।"—कहते हुए रानी भीतर आई।

"बीरा खाना लाओ!"—बिल्वमाला ने आदेश दिया।

रुचिकर भोजन, प्रेयसी का साथ, जीवन के उन्माद की नयी तरग, खाने का नया आनन्द मिला बाबू रूपकिशोर को।

भोजन के बाद चाँदी का फर्शी हुक्का। हुक्के के कश का आनन्द लेते हुए बाबू रूपकिशोर पलँग पर लेट गये।

बिल्वमाला ने तब हँस कर कहा, "जानते हो, तुम्हारे स्वस्थ शरीर का क्या असर हुआ है? धीरा डर रही है। आना नही चाहती। उसे डरा दिया तुमने।"

"मै तो चाहता हूँ कि तुम्हारे घन-कुन्तल की छाया मे सो जाऊँ; और किसी की अभिलाषा नही।"

"बाते न बनाओ। फिर से व्यर्थ की बाधा उपस्थित कर रहे हो। कितनी मुश्किलो से मना पायी हूँ, तुम्हे। आज शुभ दिन है। धीरा बरसो से प्रतीक्षा मे है। आज अब नही टल सकता।"

हुक्के के कश मे बाबू रूपकिशोर अपने जीवन के अतीत के धुँधलके मे झाँक रहे थे। क्या थे, क्या बन गये, क्या होगा—यह क्रम-परिवर्तन का—अद्भुत अनुभूतियो का—यही जीवन है।

बिल्वमाला ने आवाज दी, "पेय।"

बीरा दो पेय रख गयी।

"अच्छा, अब चलती हूँ। आभारी है हम और बीरा कि शेष धर्म का तुमने हमारी प्रार्थना पर निवाह करना स्वीकार किया।"

रानी चलने लगी। बाबू रूपकिशोर ने पूछा, "रीति-रस्म कुछ भी नही बताया।"

"अरे, भूल गयी थी। यह अँगूठी। मगर परिणय के बाद, पहले नही देना। और जो तुम्हारी इच्छा हो। जीवन-भर की दासी बन रही है, चहेती बीरा की-सी ही।"—हँसते हुए उन्होने कहा।

बिल्वमाला चली गयी। वकील साहब का मन असमजस से भरा था। पर धीरा की वह प्रतीक्षा कर रहे थे। देर हुई उसके आने मे।

धीरा को भीतर कर बीरा ने बाहर से शयनागार बन्द कर लिया। रानी के यूडोक्लिन की सुवास उसकी केश-राशि से आ रही थी। शृगार-प्रसाधन से धीरा की रूप-गरिमा खिल उठी थी। उसका आकर्षण अभिनव मनोहारिता का था—बीरा से कही अधिक मन मोहनेवाला। बाबू रूपकिशोर अपना सारा विषाद-तर्क भूल जीवन-मद से भर उठे, धीरा की ओर एक टक देखते रहे।

फिर उन्होने गिलास का पेय माँगा। गिलास उठा कर दे दिया उसने। बाबू रूपकिशोर ने गिलास उसके ओठो से लगा दिया। अपने को पीछे खीच लिया धीरा ने।

"क्यों, क्या बात है ?"

वह संकोच से नयी दुल्हिन की तरह लजा रही थी। कुछ बोल नहीं सकी। स्फूर्ति में थे बाबू रूपकिशोर। एक चुस्की स्वयं ली उन्होंने। तब धीरा ने उनके गिलास के हाथ को अपनी ओर खींचकर गिलास अपने हाथ में ले लिया। दूसरा गिलास वकील साहब को दिया। गिलास खाली कर दिया वकील साहब ने।

बाबू रूपकिशोर ने धीरा को खींच लिया। बिजली का तेज़ प्रकाश बुझा कर पलँग का धीमा लैम्प उन्होंने जला दिया। धीरा को वस्त्र-विहीन कर प्रेम का चिह्न उसके अधरों पर अंकित करना चाहा। धीरा ने उँगली की ओर इशारा किया।

"समझा ! पर यह तो परिणय के बाद में।"

"नहीं, पहले। जीजी रानी को भ्रम है।"—किंचित् मुस्करा कर, संकोच के स्वर में बोली। कपोल लाज की गहरी ललाई से रँग गये।

"क्या भ्रम है उनका ?"

"मेरा यह प्रथम परिणय है। जेनरल साहब नशे में चूर थे। मैंने किसी से भी कहना उचित नहीं समझा था। लेकिन आज जिसे मैं सच्चे हृदय से प्रेम करती हूँ, जिसे अपना सर्वस्व समर्पण कर रही हूँ, उसे न बताना धोखा होगा।"

"लेकिन जेनरल के साथ कई बार तुम्हारा संसर्ग रहा।"—बाबू रूपकिशोर ने जिज्ञासा और विस्मय से पूछा। जेनरल के जीवन पर नया प्रकाश पड़ रहा था। कई बातें जो मन में संशय उत्पन्न करती थीं, आज साफ-साफ समझ में आ रही थीं।

"हाँ, लेकिन शारीरिक संसर्ग नहीं रहा।"—कह कर मानो लाज से गड़ गई धीरा।

"मुझे विश्वास है। अब मैं बहुत कुछ समझ सका।"—कह कर बाबू रूपकिशोर ने अँगूठी उसे पहना दी और उसे अपने वक्ष से लगा कर प्रेम-चिह्नों से सराबोर कर दिया। उसके शरीर की गरिमा बीरा से कम नहीं, आनन्दोल्लास में सोचा बाबू रूपकिशोर ने। हाथ धीरा के शरीर के आकार-प्रकार को नाप उसके प्रेम-पुंजों के वृत्त पर कोण बनाने लगे। एक सर्वथा नवीन मादकता की उष्मा से शरीर रोमांचित हो उठा। उसके शरीर को अपने शरीर के आवरण से ढँक लिया बाबू

रूपकिशोर ने और उन्मत्त-से शरीर के बन्धनो को तोड कर शरीर-शरीर जब दो से एक हो गये तो प्रेमपरिणय की रागात्मक अनुभूति---आरोह-अवरोह, विलम्बित द्रुत, ताल-सम---सब ध्वनियाँ समानान्तर गूँज उठी। अनुभवी बाबू रूपकिशोर को हर्षातिरेक मे विश्वास हो आया कि धीरा का यह प्रथम परिणय था। प्रसन्नता के आलोक से अभिभूत जीवन के अमृत सगीत मे वे लयमान हो गये, प्रणय-समाधि मे योगी की तरह।

दूसरे दिन जब वह नीद से उठे तो पिछली रात पर ही नही, अपने समूचे जीवन पर बाबू रूपकिशोर को हार्दिक क्षोभ हो आया। इस जीवन और पशु-प्रवृत्ति मे अन्तर क्या है---उनके मन ने प्रश्न किया ? पर जो होना था, वह हो गया था। रनिवास की मर्यादा उन्होने बखूवी निभायी। जब राजमहल मे वे आये है तो राजाओ की रीति का पालन करना ही पडेगा, जो उन्होने किया भी। अब, उन्होने सोचा, उसको निभाना ही है। लेकिन अतर का सस्कार बार-बार झाँक कर बुद्धि को शका और पश्चाताप से भ्रष्ट करने लगा।

जेनरल का कमरे मे जहाँ चित्र टँगा था, उसके समानान्तर उनका भी चित्र टँगा था। जेनरल के चित्र पर आँखे टिक गयी। सोचा उन्होने, सौभाग्य था उसका बिल्वमाला जैसी रमणी को पाना। पर क्या वे उसे सचमुच पा सके थे ? मन मे धीरा की बात का ध्यान आया। अगर जेनरल जीते होते तो बिल्वमाला का और इन दासियो का क्या हाल होता ? शायद धीरा की ही तरह जीवन भर मन मे टीस लिए, जीवन से अपरिचित, हर साँस को बेकार गवाँ, वे चिर निद्रा मे विलीन हो जाती। यह अच्छा होता या उनका उनके साथ वर्तमान परिणय का जीवन अच्छा था ? बाबू रूपकिशोर सोच रहे थे कि ऐसी हालत मे रनिवास का---इन लोगो का---धर्म क्या होना चाहिए था। उसके जेनरल के साथ के जीवन का अनुमान कर बिल्वमाला के प्रति उनके अगाध प्रेम की धारा करुणापूर्ण हो गयी।

तभी बिल्वमाला आ गयी---अभी-अभी स्नान से उनकी काति दीप्तिमान थी। बाबू रूपकिशोर अपनी विचारधारा के प्रवाह मे बिल्वमाला को एकटक देखते रहे।

बिल्वमाला ने कहा, "आभारी हूँ कि तुमने हमारी मर्यादा को निभाया

और अत्यधिक प्रसन्नता की बात यह है कि बीरा माँ बनने वाली है। तुम्हे मुबारकबाद पेश करती हूँ ।"

बिल्वमाला ने अपने ढग से बडी सुरुचि और प्रेमपूर्ण उल्लास से ही इस महत्त्व-पूर्ण सूचना को व्यक्त किया था। लेकिन बाबू रूपकिशोर को जैसे बिच्छू ने डक मारा हो, वह ऐसे तिलमिला उठे और मन की पीडा के वेग से कराह उठे।

मन का भाव चेहरे पर साफ झलक आया। बाबू रूपकिशोर का चेहरा एकदम काला पड गया ।

रानी ने प्रेमी को शात करने के लिए हँस कर कहा, "घबरा गये ! यह क्या बात है ?"

"लेकिन यह तो घोर अनर्थ हुआ ? अब क्या होगा ?"

"मै समझ नही पा रही हूँ तुम्हे। होगा वही जो होना चाहिए। यह तो मुमकिन ही था।"––

बात काट कर वकील साहब ने पूछा, "कौन महीना चल रहा है ?"

"तीसरा, अब कोई शक-सुबहा नही। इसीलिए बीरा को सावधानी का जीवन बिताना है।"

"मगर बीरा का क्या होगा ? बिना विवाह के माँ बनने का मतलब तो तुम समझती ही हो। फिर मेरे अन्दर भी तो आत्मा है। यह सब क्या हो गया ?"––वकील साहब का स्वर दर्द से भारी हो गया। [illegible] उन्हे कभी किसी सूचना से नही मिला था। मन की जो उनकी तात्कालिक भावना थी, वह यह थी कि बीरा की इस दशा का अत करना ही पडेगा, चाहे जैसे हो।

उनके मन का भाव शायद रानी ने पढ लिया। हँस कर ही बाबू रूपकिशोर से बोली, "पुरुष होकर घबरा रहे हो। अगर मुझे ऐसा हो गया होता तब ?"

"तुम्हारी बात और थी। तब यह महान प्रसन्नता का कारण बनता। तुम्हारा-हमारा मिलन धार्मिक है। पर यह, यह तो बिल्वमाला, असह्य है। इसका अत होना ही चाहिए। नही तो हम कही मुँह दिखाने लायक नही रहेगे। इसका परिणाम भयकर होगा।"––बाबू रूपकिशोर की साँस तेज चल रही थी।

"तुम व्यर्थ की चिन्ता मे न पडो। यह राजमहल की बात है। हमारे लिए यह

शुभ है। तुम्हारी परेशानी मैं समझती न होऊँ, ऐसी बात नहीं। सब ठीक हो जायगा—जैसा तुम चाहते हो। अपने मन में ढाढ़स रखो और बीरा से प्रेम ही बरतो। वह तुम्हारी सबसे छोटी और चहेती दासी है। मैं अभी आयी। तुम चाय पिओ।"

बिल्वमाला चली गयी। बीरा चाय लेकर आयी।

बीरा से बाबू रूपकिशोर ने पूछा, "पगली, यह क्या कर लिया ?"

"क्या आप इससे प्रसन्न नहीं ?"

बाबू रूपकिशोर के मन में जो भाव था, जिसे उन्होंने रानी पर सहज ही प्रकट कर दिया था, वह उनसे बीरा के सामने प्रकट करते नहीं बना। उन्होंने कहा—"प्रसन्न क्यों नहीं हूँ ? हमारा-तुम्हारा परिणय पवित्र है। उसी का अमृत-फल तो है यह।"

"सच!"—बीरा खुशी से भर कर बोली, "तब यह झोली प्रथा के अनुसार खाली नहीं रहनी चाहिए!"—कह कर उसने अपना आँचल फैला दिया। बाबू रूपकिशोर के पास जो कुछ था, वह सब उन्होंने फैले आँचल में भर दिया और बीरा को अपने आलिंगन में खींच लिया। उस आलिंगन की अनिर्वचनीय शांति में वह सब अनर्थ और उसका परिणाम भूलकर क्षण भर के लिए बेसुध से हो गये।

बड़ी देर तक मौन आलिंगन में युगों के बिछुड़े प्रेमी-प्रेमिका की तरह वे पड़े रहे। जब रानी के आने की आहट मिली तब वे अलग हुए। बीरा हुक्का लाने चली गयी।

बिल्वमाला ने पूछा, "बीरा का मन तो नहीं तोड़ा ?"

"तुम्हारा कोई हुक्म मैंने टाला है ?"

रानी हार्दिक कृतज्ञता के भाव से बोलीं, "मैं तुम्हारी चिरऋणी हूँ।"

"मगर जब यही होना था तो तुम्हारे साथ होता। तब तुम मेरी प्रसन्नता देखतीं।"

"ऐसा न कहो। भगवान को यही मंजूर था। बीज तो तुम्हारा ही है। वह मेरा ही होगा। तुम मेरे मन की प्रसन्नता का अनुमान लगा नहीं सकते।"

भोजन करके वकील साहब कचहरी चले गये।

: १४ :

दलदल मे जब मनुष्य फँस जाता है तब वह न उबर पाता है , न उसमे फँसे रहना चाहता है। वह किकर्तव्यविमूढ होकर अपने को छोड देता है, जो हो पर। बाबू रूपकिशोर की अब यही हालत थी। घर का काम-काज देखते थे, कचहरी जाते थे। ससार के अन्य कर्त्तव्य निभाते थे। पर हृदय से वह पीडित थे। उर के अन्तर मे आग लग गयी थी यद्यपि धुँआ अभी प्रकट नही दिखायी पडता था। क्या होना था और क्या हो गया, यही उनके दु ख का कारण था। क्या होगा—यह चिन्ता भी धर पकडती थी। स्वभाव से बाबू रूपकिशोर बुद्धिजीवी और धीर पुरुष थे। परिस्थितियो से लोहा लेना वे जानते थे। लेकिन अब ऐसी स्थिति आ उत्पन्न हुई थी, जिसका कोई निराकरण नही था। रानी से उन्होने इशारा किया था, खुलकर तो कह नही सकते थे कि बीरा की शारीरिक स्थिति का किसी तरह अंत कर दिया जाय। प्रस्ताव बिल्वमाला को केवल अमान्य ही नही था, उसने हार्दिक प्रसन्नता प्रकट की थी कि ऐसा शुभ दिन आया। अब बिल्वमाला की कोशिश बीरा को भली प्रकार—हर आराम से—दिन पूरे कराने की थी जिससे कोई विघ्न न आ जाय। बाबू रूपकिशोर को रानी ने हर तरह से समझाया था कि चिन्ता का कोई कारण नही। पर बाबू रूपकिशोर का मन और मस्तिष्क तो स्थिर नही था। आखिर बीरा की भावी सन्तान के जनक वे थे। अगर यह बात बिल्वमाला प्रकट भी न करे तो कभी बीरा ही प्रकट कर दे और अपने सन्तान का स्वत्व माँग बैठे। वह माँगेगी ही, न माँगने की सम्भावना कम थी? फिर समाज के एक चोटी के वकील थे बाबू रूपकिशोर और सर्वमान्य थे। यदि ऐसा दिन आया तो उनके जीवन भर की सारी शोहरत, सारा यश, जीवन के सामाजिक रूप का गौरव, वह सब मिट्टी मे मिल जायगा। लोगो को उनके नाम पर हँसने का अवसर मिलेगा। लोगो के अलावे अपने परिवार के ही लोग जान्हवी, माधुरी, महेश, केदार, करुणा और दूसरे निकट के सम्बन्धी उनके बारे मे क्या कहेगे, क्या सोचेगे ? उनके चार बच्चो के भविष्य का सवाल था और बीरा की सन्तान का भी तो प्रश्न था।

क्या कर डाला उन्होने—सोचा बाबू रूपकिशोर ने। पर जो सिर पर आ

पडा था उसे टालने का कोई उपाय नही था। अत दलदल मे फँसे व्यक्ति की तरह वह विवश थे, लाचार थे। उनका हृदय डूब रहा था, आत्म-पीडा से। कुछ ही दिनो मे बाबू रूपकिशोर पुराने बाबू रूपकिशोर नही रह गय। जीवन मे सब कुछ होते हुए भी जैसे कुछ नही है—ऐसा दीन भाव उनके मुखमण्डल पर आ छाया। मन मे निराशा का अँधेरा भर आया। शरीर कृश होकर रुग्ण रहने लगा। जब मन स्वस्थ होता है तभी शरीर भी ठीक रहता है। जब मन ही मिट रहा था तब शरीर को ठीक रखने के लिए सारे व्रत, नियम, सयम, बेकार थे।

जान्हवी ने पति के व्यवहार और स्वभाव के परिवर्तन को जल्दी पहचाना। क्या कारण सम्भव है? शायद जेठ जी के दु ख पूर्ण निधन से इनका मन उचाट हो गया है—उसने सोचा। जान्हवी अप्रकट रूप से पति को प्रसन्न रखने की हर सम्भव चेष्टा भी करती। पर पति के स्वभाव मे जो रुक्षता घर करती जा रही थी, वह उसके लिए, बच्चो के लिए, एक समस्या बन गयी।

नाश्ते पर थे बाबू रूपकिशोर। माधुरी, केदार, और करुणा भी थे। जान्हवी ने उनकी तश्तरी खाली देखकर एक समोसा और रख दिया। बाबू रूपकिशोर अचानक उबल पडे, "प्रेम-प्रदर्शन की इस तरह तो जरूरत नही।"

जान्हवी के साथ-साथ माधुरी भी उनके स्वर की रुक्षता से; व्यवहार की विलक्षणता से, सन्न हो गयी। बाबू रूपकिशोर बोलते गये, "क्या खाने से ही आदमी सुखी रहता है?"

जान्हवी ने साहस कर कहा, "गलती हो गयी। माफी चाहती हूँ।"

शाम को कचहरी से लौट कर आये। तभी माधुरी और करुणा भी कालेज से आयी। चार ही बजे थे। झल्ला कर कहा बाबू रूपकिशोर ने, "साढे तीन बजे कालेज बन्द होता है, इतनी देर कहाँ लगायी?"

करुणा बोल गयी, "सीधे तो चले आ रहे है।"

"ज़बान लड़ाती है, बदतमीज? माँ के ही सब गुण पा गयी है।"—कह कर करुणा को एक कड़ा चाँटा रसीद दिया उन्होने। माधुरी करुणा को अपने कमरे मे खीच ले गयी।

अचानक बिना किसी कसूर की मार से करुणा रो भी नहीं पायी। मन का दुःख सिसकियों में जरूर उबल पड़ा।

जान्हवी ने देखा, अपने गुण का बखान सुना, बोली कुछ नहीं।

बाबू रूपकिशोर ने चाय भी कमरे में मँगायी। जान्हवी चाय लेकर जब पहुँची, तब वह बिस्तरे पर खोये-खोये पड़े थे।

"चाय पी लें।"—जान्हवी ने कहा,

"रख जाओ!"—कह कर बाबू रूपकिशोर चुप हो गये।

पति का मुँह देखकर जान्हवी ने कुछ कहना उचित नहीं समझा। मन मसोस कर वह चली गई। आजकल यह कोई अनहोनी बात नहीं थी। प्रति दिन ही उनके स्वभाव की रुक्षता कहीं-न-कहीं टपक ही पड़ती थी। बात-बात में वह पत्नी को, बच्चों को, घुड़क देते थे। घर के जीवन में एक कलहपूर्ण वातावरण आ उपस्थित हुआ, घर की शांति खोने लगी।

घर ही में नहीं, कचहरी में भी बाबू रूपकिशोर के नये स्वभाव से वकील-समुदाय और मुवक्किल विस्मित थे। सहकारी वकीलों और मुवक्किलों पर ज़रा-सी बात में चिढ़ जाना उनकी आदत बनती जा रही थी। चोटी के वकील थे, मुवक्किल बँधे थे। फौज़दारी में दूर-दूर तक प्रसिद्धि थी। इसलिए उनकी वकालत की आमदनी में कमी तो नहीं हुई। पर मुवक्किलों और साथियों में उन्हें झक्की माना जाने लगा। कोई निश्चयात्मक बात उनके बारे में कही ही नहीं जा सकती थी, कब वे उबल पड़ें—इससे सभी सशंकित रहते थे। उनका काम भी अब अधिक-से-अधिक अरविंद कर रहा था। उनके प्रति उसकी अपार भक्ति में कोई कमी नहीं आयी।

लूकरगंज में रानी के यहाँ भी उनके स्वभाव का परिवर्तन अप्रकट नहीं रहा। बिल्वमाला ने कारण का मूल साफ समझ लिया। मन-ही-मन उसने सोचा—रनिवास के रीति-रस्म से वकील साहब परिचित नहीं। कुछ दिनों में सब ठीक हो जायगा। चिन्ता की कोई बात नहीं।

लेकिन एक दिन बिल्वमाला को भी सुनना पड़ा, "तुम्हारे ही कारण इतने पाप मैंने किए। नहीं जानता था कि आस्तीन में साँप पाल रहा हूँ।"

बिल्वमाला फूट-फूट कर रो उठी थी। लेकिन जिसे वह अपना पति मानती थी उसकी झिडकी उसे सहनी ही पडी। उस घटना के कुछ ही दिनो बाद बिल्वमाला ने कहा, "मै रामेश्वरम् दर्शन के लिए जाने की आज्ञा चाहती हूँ।"

"यह धर्म कहाँ से आ फूटा?"—बाबू रूपकिशोर ने आश्चर्य चकित हो पूछा।

"तुम्हारे और अपने सम्बन्धो को मैं अधार्मिक तो मानती नही। तुम चाहे जो समझो!"—बिल्वमाला ने दुखी मन से कहा।

"हज करने की इच्छा हुई है तो मेरी आज्ञा भी क्या जरूरत?"

बिल्वमाला सहम गयी—बिल्ली हज करने चली न्याय का स्मरण कर। आँखो मे आँसू भर उसने उत्तर दिया, "तुम मेरे साक्षात परमेश्वर हो। तुम्हारी आज्ञा के बिना क्या मै कभी कही गयी हूँ?"

बिल्वमाला की बात का कोई जवाब न पाकर उखडे हुए भाव से बाबू रूपकिशोर ने कहा, "मै तीरथ व्रत मे रुकावट ही कैसे डाल सकता हूँ?"

बिल्वमाला ने ननी-जननी कर बताया, "बीरा मेरे साथ जा रही है। धीरा यहाँ तुम्हारी सेवा के लिए रहेगी।"

"मेरी सेवा तो हो चुकी। एक का फल पा चुका, अब आगे न जाने क्या-क्या देखना पडे।"

"धीरा का घर-बार देखने के लिए यहाँ रहना जरूरी है। वह जाना भी नही चाहती। उस पर क्रोध मत करना। दीन-दुखी, तुम्हारी सेवा करती रहेगी।"

"अच्छा।" कह कर रोष से भर उठे बाबू रूपकिशोर।

बिल्वमाला आँखो मे बरसात भर कर रामेश्वरम् की यात्रा पर निकली। बाबू रूपकिशोर न यात्रा के दिन आये न उससे पहले।

लूकरगज वे महीनो नही गये। धीरा अकेली थी। लेकिन बाबू रूपकिशोर अपने मन की दावा मे जल रहे थे, तरह-तरह के उपाय सोच रहे थे जिससे बीरा से उत्पन्न परिस्थिति का अत कर दिया जाय। एक दिन तो उन्होने यहाँ तक सोच डाला कि किसी शोहदे बदमाश को रामेश्वरम् भेज कर वहाँ के समुद्र मे बीरा को ही समाप्त करा दिया जाय। लेकिन फौरन ही उन्होने अपने मन मे उठे इस भाव के लिए अपने को धिक्कारा। उनके लिए ऐसा सोचना भी

किनना अमानुषिक था, इससे वह ग्लानि मे बह चले। मन के इसी ऊहापोह मे एक दिन वह लूकरगंज की ओर आ निकले।

धीरा ने उनके स्वागत मे पलक-पॉवडे बिछा दिए। रानी जीजी की यात्रा का हाल बताया, घर की तिजोरी की चाभी उन्हे दे दी।

न जाने किस सोच मे उन्होने तिजोरी को धीरा से खुलवा कर देखा। बाबू रूपकिशोर ने एक साथ इससे पहले किसी जौहरी की दुकान मे भी इतने आभूषण और जवाहरात, जितना तिजोरी मे था, नही देखा था। वे चकित हो उठे। धीरा से उन्होने कहा, "लाखो की सम्पति की चाभी रानी मुझे सौप गयी ?"

'आप हम लोगो के सर्वस्व है। आप पर यदि जीजी रानी विश्वास न करे तो वह अपना मुँह कही दिखा सकेगी ?"

'क्या अपनी जीजी रानी की ही तरह तुम और बीरा भी यही विश्वास रखती हो ?"

"यही तो हमारा धर्म है। इसके अलावा हमारी गति कहाँ ?"—धीरा ने बाबू रूपकिशोर के प्रश्न का भाव पूरा न समझे बिना भी उत्तर दिया।

बाबू रूपकिशोर तिजोरी और जवाहरात के बक्सो की चाभी पर सोच रहे थे कि बिल्वमाला के मन मे कही भी कोई खोट नही। उसकी सचाई और पवित्र भावना का इससे अधिक और क्या प्रमाण मिल सकता था ? शायद जान्हवी भी अपने जवाहरात और आभूषणो की चाभी उन्हे देकर नही जाती। स्त्री-धन पर नारियो का प्राण से भी अधिक मोह होता है। पर बिल्वमाला के अगाध विश्वास को सोच-सोचकर उनके मन की दावा भडक उठी।

बाबू रूपकिशोर को अन्तर्दाह की उस अप्रकट पीडा ने छा लिया था जो मनुष्य के जीवन को सारहीन कर देती है। धीरा थी, धीरा की सेवा थी। बिल्व-माला और बीरा की मधुर स्मृति का भार कम नही था। मानवीय ढग से यह सब-कुछ सुख के स्रष्टा थे। लेकिन बीरा की शारीरिक स्थिति ने उनको पूरी तरह दबा कर एक बौने की तरह अपने आप मे ही छोटा बना दिया था। यह चिन्ता उन्हे खाये जा रही थी। लाख कोशिश कर के भी वह सुस्थिर नही हो पाते थे। वैसे जीवन का काम-काज पूर्ववत् चल ही रहा था।

इन्ही दिनो कलकत्ता से सुरेश की चिट्ठी आई, "माँ सख्त बीमार है।"

बाबू रूपकिशोर कलकत्ता चले गये। जिस दिन वे सुरेश के यहाँ पहुँचे, उसके दूसरे दिन सुरेश की माँ ने अपना प्राण-त्याग दिया। देवर को देख कर वह खूब रोयी थी। कहा था, "तुम्हारे दद्दा बुला रहे है। उनके चरणो की झलक मुझे साफ दिखलायी पड रही है। सुरेश का ध्यान रखना।"

इससे अधिक वे कुछ कह नही सकी थी या जान-बूझ कर कुछ कहा नही। दूसरे दिन सवेरे अच्छी-भली वे चल बसी थी।

भाभी का क्रिया-कर्म समाप्त होने के एक सप्ताह बाद तक वह कलकत्ता रहे। सुरेश के साथ, प्रयाग के जीवन से भिन्न, उन्हे कुछ शाति मिली। वे अधिक दिन रुकना चाहते थे। मुकदमो के कारण लौटना पडा।

कलकत्ता से लौटकर बाबू रूपकिशोर कुछ शातचित्त थे।

माधुरी ने माँ से कहा भी, "बाबू जी आजकल पहले से कही अच्छे है।"

"पता नही, क्या हो गया है उन्हे। शरीर सूखता जा रहा है। डाक्टर भी तो नही बुलाने देते। माधुरी, हम लोगो के बुरे दिन आ रहे है। पता नही क्या हो ? तुमसे भी तो प्रेम से नही बोलते।"—जान्हवी की आँखे भर आई।

माधुरी कहना नही चाहती थी पर कह गयी, "कोई बात हो गयी है जिससे दुख पहुँचा है। धीरे-धीरे सब ठीक हो जायगा, माँ!"

"हाँ बेटे, भगवान से रोज यही मनाती हूँ। पर तुम लोग किसी चिन्ता का कारण मत बनना। तुम लोगो को लेकर भी एकाध बार इन्होने चिन्ता व्यक्त की।"

माधुरी ने माँ का भाव समझा। बडी देर तक सोचकर उसने कहा, "माँ, विश्वास रखो। मेरी ओर से कभी कोई ऐसी बात नही होगी जिससे तुम लोगो को दुख पहुँचे।"

माधुरी ने अब एम० ए० मे प्रवेश किया था। जान्हवी न चाहते हुए भी पूछ बैठी, "क्या कुमार ने भी तुम्हारे ही विषय मे एम० ए० किया है ?"

"हाँ।"

"ज्योत्स्ना ने क्या विषय लिया है ?"

"उसने भी साहित्य ही लिया है।"

"कुमार अब क्या करना चाहता है ?"

"कानून पढ रहे है। वकालत करने का विचार है। नौकरी के वोर विरोधी है।"

जान्हवी ने माधुरी की ओर देखते हुए कहा "कुमार योग्य लडका है।"

माधुरी चुप रही।

उसी दिन शाम को ज्योत्स्ना और कुमार आये थे। बाबू रूपकिशोर ने बडे प्रेम से उनका स्वागत किया। चाय पर साथ आकर बैठे। आग्रह पूर्वक दोनो को नाश्ता कराया।

रात को उन्होने प्रेमभाव मे—बहुत दिनो मे यह भाव प्रकट हुआ था—जान्हवी से कहा, "माधुरी की कुमार से मित्रता है। कही उसका कोई अनहोना रूप न हो जाय।"

"क्या मतलब है आपका?"—जान्हवी ने भी प्रेम से ही पूछा।

बाबू रूपकिशोर ने पत्नी की ओर देखते हुए कहा, "आजकल का समय अद्भुत है अपनी मर्यादा का ध्यान रखना ही चाहिए।"

"बुरा न मानिये तो एक बात पूछूँ ?"—जान्हवी ने साहस कर कहा।

"हाँ हाँ, बुरा क्यो मानूँगा?"—उत्सुक हो बाबू रूपकिशोर बोले।

"माधुरी और कुमार की जोडी कैसी रहेगी ?"

बाबू रूपकिशोर के मन मे भी कई बार पहले यह सवाल उठ चुका था। डाक्टर साहब से पिता के समय से ही पारिवारिक आना-जाना था। डाक्टर साहब प्रतिष्ठित नागरिक थे। कुमार प्रतिभा-सम्पन्न और योग्य लडका था। माधुरी का उसकी ओर खिचाव भी था। इसी खिचाव से अपने मनस्ताप की ज्वाला मे बाबू रूपकिशोर सशकित हो उठे थे।

उन्होने पत्नी से पूछा, "लेकिन क्या दोनो एक-दूसरे के साथ सुखी रह सकेगे ? कहाँ तक दोनो का सामजस्य है ?"

"यह तो माधुरी-जैसी सुशील और गम्भीर लडकी से जानना कठिन है।"—पत्नी ने कहा।

"हाँ, जान्हवी, इसी को जानने का अवसर हमारे समाज मे न युवक-युवती को मिलता है, न उनके माता-पिता को। वैसे बौद्धिक रूप से मैं प्रेम-विवाह का पक्ष-

पाती हूँ। विवाहित जीवन को सुखी बनाने के लिए प्रेम होना जरूरी है। पर प्रेम करने की हमारे समाज मे सुविधा नही। इससे इतना अनाचार, इतनी कुरीतियाँ घर-घर मे फैल गयी है कि तुम कल्पना नही कर सकती। इसीलिए ध्यान देना पडता है कि अविवाहित युवक-युवती का घनिष्ठ सम्बन्ध न हो। यही मै माधुरी के लिए इशारा कर रहा था।"

"माधुरी पर किसी तरह का शक करने का न कोई कारण है और न माधुरी-जैसी योग्य लडकी से किसी अनहोनी बात की आशा ही है। वह अब वयस्क है। अपना भला-बुरा सब समझती है।"—विश्वास के स्वर मे जान्हवी ने पति से कहा।

बाबू रूपकिशोर ने दीर्घ नि श्वास छोडते हुए कहा, "बडे-बडे विवेकी पुरुष भी पथ-भ्रष्ट हो जाते है।"

जान्हवी ने पहली बार—जीवन भर मे—पति को एक अजीब असमजस की नजर से देखा। मगर पति प्रसन्न है। वह उनकी प्रसन्नता की तन्द्रा तोडना नही चाहती थी। मन का भाव दबा कर जान्हवी ने पति से कहा, "डाक्टर साहब से कभी बात चलाइयेगा।"

पति कुछ सोच रहे थे, बोले, "अगर यह सम्भव भी हुआ तो वर्ष भर के पहले तो विवाह हो नही सकता ?"

"क्यो ?"—पत्नी ने पूछा।

उत्तर देने के लिए बहाना बनाया बाबू रूप किशोर ने,"मै सुरेश की शादी इस साल कर देना चाहता हूँ। उस उत्तरदायित्व से मुक्त होकर ही आगे का सोचना है।"

जान्हवी को लेकिन साफ लगा कि पति ने असली कारण नही बताया। थोडी देर बाद उसने पूछा, "सुरेश के मकान के बारे मे क्या हो रहा है ?"

"सुरेश से तय हो गया है। वह कलकत्ता के पास सलकिया मे मकान बनवाना चाहता है। दस हजार रुपये का मैने वादा कर दिया है। इसमे अब कोई बाधा नही और सुरेश के प्रति हमारा कर्त्तव्य भी है।"

बाबू रूपकिशोर का मन हल्का अवश्य हो गया था, लेकिन बीरा की

समस्या रह-रह कर उनको डॉवाडोल कर जाती थी। बीरा की सन्तान, पिता के होते हुए भी, दोगली कहलायेगी—यह बाबू रूपकिशोर की नैतिकता के लिए असह्य था। लेकिन वह खुलकर अपने को सन्तान का पिता स्वीकार भी तो नहीं कर सकते थे। कभी-कभी वह अपनी पीडा के वेग मे सोचते, 'बिल्वमाला ने उनकी चिन्ता का मूल कारण समझ लिया है। इसीलिए बीरा को लेकर वह दूर रामेश्वरम् की ओर चली गई है। बिल्वमाला कोई-न-कोई उपाय अवश्य करेगी जिससे उन्हे अपने घोर मनस्ताप से छुटकारा मिल जायगा। लेकिन जितना ही वे सोचते, उतनी ही उनके मन की कालिमा गहरी होती जाती।

इन्ही दिनो झूँसी मे एक स्वामी जी आये थे। बाबू रूपकिशोर को जब मन की शाति किसी प्रकार नही मिली, पूजा मे भी नही, तब वे एक दिन झूँसी, स्वामी जी के पास गये।

स्वामीजी से उन्होने पूछा, "महराज जीवन मे अशान्ति-ही-अशाति है, शाति कैसे मिले ?"

महात्मा जी ने उत्तर मे कहा, "शाति तो बडे-बडे देवताओ को नही मिलती। कठोर साधना की जरूरत है उसके लिए। मन ही शाति या अशाति की जड है। मन को ब्रह्म की तरफ मोडा जाय तो अभ्यास से शाति का मार्ग दिखायी पडेगा। इसके विपरीत माया मे लिप्त मन शाति के मार्ग से क्रमश दूर ही होता जायगा।"

"मन को वश मे करना क्या सम्भव है, महाराज ?"

"आसान तो जरूर नही। लेकिन असम्भव है, यह मै नही कह सकता। राजा जनक का उदाहरण ले ले। देह रह कर विदेह—पकिल सरोवर में प्रफुल्ल कमल जैसे। यह सब वृत्तियो के निरोध से सम्भव है।"

"माया का भी तो कोई महत्त्व होगा ? तभी स्रष्टा ने इसकी सृष्टि की है।"

"निश्चय ही, माया न होती तो यह सवाल ही आप क्यो उठाते आज ? माया भी उसी का रूप है, जिसका ब्रह्म। लेकिन सरोवर मे कमल का न्याय ही अनुभव

से श्रेयस्कर माना गया है। साधना से मनुष्य मे वह ज्ञान आ सकता है जिससे वह स्थितप्रज्ञ बन सकता है।"

स्वामीजी ने चित्त का निरोध और स्थितिप्रज्ञ की परिभाषा बडी सरलता से समझायी।

उस दिन जब बाबू रूपकिशोर घर लौटे तो योग-वाशिष्ठ के सभी भाग खरीद लाये।

योग-वाशिष्ठ को उन्होने पढना प्रारम्भ कर दिया। स्वामीजी को उन्होने अपने घर पर भी बुलाया। उनका प्रवचन हुआ, हरिनाम सकीर्तन हुआ।

प्रवचन मे डाक्टर दत्ता, श्रीमती दत्ता को भी उन्होने बुलाया था। वे कुमार और ज्योत्स्ना के सग आये।

प्रवचन होने के बाद जाते समय डाक्टर दत्ता ने बाबू रूपकिशोर से परिहास किया, "आप इन झझटो मे कब से फँसे ?"

"एक समय आता है जब सब को इनमे फँसना पडता है,"—बाबू रूपकिशोर ने गम्भीरता से कहा।"

"मै तो इन सबमे विश्वास नही रखता। मनुष्य अपना कर्त्तव्य सुचारु रूप से करे, वही धर्म है। अपने से बाहर की शक्ति भी तभी प्राप्त होती है, जब अतर जाग्रत रहे।"—डाक्टर दत्ता ने हँस कर कहा।

"और तुम बेटा ?,"—बाबू रूपकिशोर ने कुमार से पूछा। उस समय कुमार अपलक माधुरी के मुखचद्र को देख रहा था।

जैसे चोरी करता पकडा गया हो, इस तरह अप्रतिभ हुआ कुमार अपने से सवाल सुन कर। उसने जवाब मे कुछ कहा नही, कह नही सका। श्रीमती दत्ता ने कहा, "आजकल के लडके तो नास्तिक होते जा रहे है।" सब हँस पडे।

उस रात जान्हवी ने, जिसने घर से बाहर के अपार ससार मे कभी कोई दिलचस्पी नही ली थी, जिसके लिए दुनिया का सारा विस्तार घर की परिधि ही था—गागर मे सागर जैसा—पति से पूछा, "क्या कारण है आपके मन के दुःख का, क्या मुझे भी नही बतायेगे ?"

बाबू रूपकिशोर पत्नी के प्रश्न पर कुछ चकित हुए। उत्तर मे उन्होने कहा,

"कोई ख़ास कारण नहीं । जीवन का उतार-चढ़ाव है । मन, जैसा प्रवचन में स्वामी जी ने कहा था, लहरों की तरह जीवन की उथल-पुथल में डूबता-उतराता रहता है और कोई बात नहीं ।"

दर्शन की बात, जान्हवी कुछ भी नहीं समझ सकी । लेकिन उसके सहज ज्ञान ने इतना जरूर सोचा कि पति की चिन्ता साधारण नहीं । उसने मन-ही-मन भगवान से प्रार्थना की कि पति की चिन्ता जल्दी मिट जाय ।

उस रात भर जान्हवी का मन विचलित रहा । वह पति के दुःख का मर्म जानना चाहती थी, पर जानने का कोई तरीका नहीं था । रात भर वह इसी उधेड़-बुन में करवटें बदलती रही कि जाने कहाँ का अभिशाप घर की फुलवारी पर तुषार गिरा रहा है । सोते हुए पति के मुख पर घोर चिन्ता की रेखाएँ साफ उभर आयी थीं । सोते हुए पति का चेहरा इतना दीन और कातर लग रहा था कि एक बार जान्हवी की आँखें बरबस भर आयीं ।

बाबू रूपकिशोर प्रायः सूर्योदय के काफी बाद तक सोया करते थे । उस दिन लेकिन अभी ब्राह्म वेला होने ही वाली थी कि वह उठ कर 'जान्हवी,' 'जान्हवी' चिल्ला पड़े । जान्हवी को स्वयं देर से नींद आई थी । चौंक कर वह उठी और पति के पास भागी आकर उसने शोकाकुल हो पूछा, "क्या बात है ? घबराए क्यों हैं ?"

"जान्हवी, बड़ा भयंकर सपना था । मैंने देखा कि समुद्र के बीचोबीच एक डरावनी, काँटों-सी नुकीली चोटियों वाली पहाड़ी है, उस पर हरियाली का नामोनिशान नहीं । समुद्र की उत्ताल तरंगें जोर-जोर से टक्कर मार कर उस पहाड़ी को गिराने की कोशिश कर रही हैं । पहाड़ी की चोटी के बीचो-बीच एक सूखा पेड़ का ठूँठ है । मैं एक चट्टान का सहारा लेकर उस पेड़ के नीचे किसी प्रकार खड़ा होने की कोशिश कर रहा हूँ । तब तक पेड़ से बरगद की बरोह की तरह चारों ओर भयंकर काले साँप फुफकार करते लटक आते हैं । मैं भय से चीत्कार करना चाहता हूँ, मगर अवाज़ नहीं निकलती, जबान सुन्न हो जाती है और मैं किसी तरह चट्टान पकड़े चुपचाप काँपते खड़ा रहता हूँ । अगर वहाँ से जरा भी टसमस होता हूँ तो समुद्र के अतल में जा गिरता हूँ । दूसरा और कोई

रास्ता बचने का वहाँ है नही । अगर चोटी की दूसरी ओर किसी तरह भागता भी हूँ तो साँपो के जाल मे घिर जाता हूँ । भय और आशका की पीडा से मै कराह उठता हूँ—ऐसी भयकर पीडा जिसमे होश-हवाश खो जाते है । मैं त्राहि-त्राहि पुकारता हूँ । सामने लहरो मे जो नजर पडती है तो एक मुर्दा बहता जाता दिखाई पडता है । फिर मै तुम्हे ढूँढने लगता हूँ । पर तुम कही दिखाई नही पडती । मै तुम्हे पुकारने के लिए आवाज देना चाहता हूँ, लेकिन पुकार नही पाता हूँ । बेहोशी की मूर्छा आ छाने लगती है, नस-नस दर्द से टूटने को आ जाती है । दर्द से छुटकारा पाने के लिए आखिरी कोशिश करता हूँ तभी नीद खुल जाती है । कितना भयानक सपना था । ऐसी दारुण पीडा का मुझे अनुभव हुआ कि मेरे रोगटे अब तक खडे है ।" —जैसे पीडा से उन्हे अब तक त्राण न मिला हो, उन्होने पत्नी का हाथ जोर से पकड लिया ।

"आप नाहक सोच मे पडे है, मन न मारिए । साँप का सपने मे देखना शुभ होता है ।"

"जान्हवी !—शुभ-अशुभ मैं नही जानता । लेकिन क्या भयंकर सपना था ? मौत का-सा दुख मिला ।"—कहकर बाबू रूपकिशोर कराह उठे ।

जान्हवी उन्हे सँभाल कर हुक्का तैयार कर लायी । उनका बदन दबाती रही ।

स्वप्न की भयकरता का प्रभाव बाबू रूपकिशोर के मन से बहुत दिनो बाद तक नही मिटा । अपने मन की दारुण चिन्ता के साथ-साथ स्वप्न की पीडा ने उन्हे बेतरह झकझोर दिया । वे अज्ञात आशका से रात-दिन दु:खी रहने लगे ।

जीवन मे अक्सर होता है कि कई घटनाएँ, छोटी या बड़ी दोनो, किसी परिस्थिति विशेष के कारण मनुष्य के मन पर—अर्धचेतन या अवचेतन मन पर—इस तरह छा जाती है कि चाहे व्यक्ति के चेतन मन को याद रहे या न रहे, वे समय से मनुष्य की स्मृति मे उभर आती है, उसे कुरेद जाती है । सपने की भयकरता की पीडा अभी मन से मिट भी नही पायी थी कि बाबू रूपकिशोर को उनके किशोर वय की एक स्मृति उभर आयी । पुराने मकान की नीव जब खोदी जा रही थी, एक भयकर साँप निकल आया था । गारे के लिए जहाँ से

मिट्टी खोदी जाती थी, वहाँ एक गड्ढा बनगया था, करीब तीन फीट से भी अधिक गहरा। साँप उसमे चला गया था। बाबू रूपकिशोर के पिता तब जीवित थे। दद्दा भी थे। लाठी लेकर वे दोनो दौडे। लेकिन साँप की फुफकार से गड्ढे के अन्दर पैठे साँप को मारने की किमी की हिम्मत नही हुई। मजदूर और पास-पडोस के कई दूसरे लोग भी आ पहुँचे थे। एक बूढा मजदूर कही से बल्लम माँग कर ले आया। उसने गड्ढे मे झाँक कर साँप पर बल्लम का प्रहार किया। साँप ने क्रोध मे इतनी जोर से फुँफकार छोडी कि ऊपर खडे लोग डर से कदम-दो-क़दम पीछे हट गये। बूढे मजदूर ने साहस मे साँप को बल्लम का निशाना बना ही लिया। मरे साँप को गड्ढे से निकालना भी आसान काम नही था। किसी की गड्ढे के अन्दर जाने की साँप के मर जाने पर भी हिम्मत नही हुई थी। बुड्ढे ने ही आखिर हिम्मत की। वह अन्दर उतरा। साँप तो कब का मर चुका था। बुड्ढा बल्लम से साँप को बाहर उठा लाया। भयकर काला साँप था वह—सच्चा करैत और छ फीट लम्बा।

उसके बाद, मकान की नीव जब भरी जा चुकी थी तब साँप की एक केचुल एक कमरे के ऊबड मे दिखायी पडी थी। बाबू रूपकिशोर तब भी डर गये थे। फिर जीवन भर, अब भी, साँप का भय उसके मन से मिटा नही था। कई साँप भी बाद मे उन्होने मारे। लेकिन उसका भय नही मरा।

उनके स्वप्न की भयकरता को ठूँठ से झूलते साँपो ने ही बढा दिया था। सोचा उन्होने, "क्या सपने जीवन के अतीत और सभावित घटनाओ की छाया होते है। यदि हाँ, तो अपना भविष्य उन्हे घोर अन्धकारपूर्ण दिखायी पडा। सपने मे सागर की उत्ताल लहरो से टकराती नुकीली पहाडी की चोटी की उस जगह, जहाँ वे खडे थे, जहाँ हिलना-डुलना भी मौत के मुँह मे गिर पड़ना था, की तरह ही उन्हे अपना जीवन मालूम पडा। न वे आगे जा सकते थे, न पीछे हट सकते थे। वे जैसे थे, जहाँ थे, वहाँ रहने को विवश थे। अपने पचास वर्ष के घनिष्ट अनुभव के समूह पर खडे बाबू रूपकिशोर आज अन्तरिक्ष के किसी कोण मे पनाह माँग रहे थे। पर जहाँ थे, वहाँ से उबरना सभव नही था। यही जीवन का राज़ है।—उन्होने सोचा, 'और मौत—जीवन के सिलसिले का अन्त—वह भी तो

अपने समय से ही आती है। चाहने से ही क्या आदमी मर सकता है ? नहीं, मरने के लिए भी जीना जरूरी है—बाबू रूपकिशोर का निष्कर्ष था। वह जी रहे थे, जहाँ थे वहीं, जैसे थे ठीक वैसे ही। आगे पीछे, दाये-बाये कदम मोडना अब मुमकिन नही था। यँही उनके दुख का—घोर दुख का कारण था। उनका ऊपरी जीवन तो पूर्ववत् ही चल रहा था। मगर उनका भीतरी जीवन उस मछली की तरह तडप रहा था जो जल से बाहर किनारे की नग्न रेती मे पड गयी हो। साँसो की गति तेज हो जाय, जल्दी ये चुक जायँ—यही उनकी आन्तरिक कामना थी। परन्त साँसो की गति का भी एक क्रम है। प्रत्येक साँस जो मंजिल को करीब लाती है, अपनी चाल मे ही चलती है।

१५

अरविन्द ने आकर बताया, "धर्म सघ की नगर-शाखा का आपको इस बार प्रधान चुनने का निश्चय किया गया है।"

"सघ के सभासदो को इस चुनाव के लिए मैं बधाई नहीं दे सकता। मेरे जैसे पार्थिव पुरुष को ऐसी धार्मिक सस्था का प्रधान चुनना विवेक नहीं कहा जा सकता। कई मानो मे तो सघ की उन्नति मे यह चुनाव बाधा खडी कर देगा।" —बाबू रूपकिशोर ने गम्भीर भाव से कहा।

"सघ का प्रधान कोई विशिष्ट नागरिक ही होता आया है, वीतरागी होना इसके लिए जरूरी नही। मै कार्यकारिणी समिति की बैठक मे था। सर्व-सम्मति से आपका नाम स्वीकार किया गया।"

बाबू रूपकिशोर बेमन से हँस पडे और बोले, "अरविन्द, अभी जीवन के थपेडो से तुम परिचित नहीं। इसान जितना स्वय अपने को जानता है, उतना दूसरा कोई उसे नहीं जान सकता। तुम सघ के सदस्यो को मेरी ओर से विनम्र सूचना भेज दो कि मैं एक साधारण सदस्य के नाते जितनी सघ की सहायता कर सकता हूँ उतनी पदाधिकारी के नाते नहीं, न मै उसके योग्य ही हूँ।"

"स्वामी जी ने स्वयं आपका प्रस्ताव किया था।"

"स्वामीजी की कृपा है। लेकिन मेरा निश्चय अडिग है।"

"स्वामी जी अनाथ बच्चों के आश्रम तथा विद्यालय का भार आप ही को देना चाहते हैं।"

बाबू रूपकिशोर कुछ देर तक सोच कर बोले, "एक सदस्य की तरह आश्रम का काम शायद मैं कर सकूँ।"

अरविन्द बाबू रूपकिशोर की अनिच्छा से हैरान हुआ और पूछ बैठा—"क्या आपकी राय में एक योग्य वकील को सामाजिक कामों में नहीं पड़ना चाहिए ?"

"ऐसी बात नहीं। संसार के सभी देशों में वकील समुदाय ही ने सदा समाज का, राष्ट्र का, नेतृत्व किया है। हमारे देश के स्वतंत्रता-संग्राम में वकील समुदाय का ही अग्रणी योग रहा है। आज़ादी के बाद भी देश के विकास में वकील समुदाय ने गौरवशाली नेतृत्व किया है। लेकिन सफलता वहीं मिलती है, जहाँ अनुकूल प्रतिभा हो। असफलता वहाँ मिलती है जहाँ सहज प्रतिभा के प्रतिकूल प्रयत्न हों। हर एक व्यक्ति को, जो अपने से बाहर समुदाय के हित के काम करने की अभिलाषा रखता है, अपनी स्वयंभूत प्रतिभा को पहचान कर ही आगे बढ़ना चाहिए। तभी वह उपयोगी हो सकता है, तभी वह कोई महत् उद्देश्य पूरा कर सकता है।"

"आपका जीवन नैतिकता के आदर्श पर ढला है। वकालत के पेशे में भी आपकी नैतिकता अनुकरणीय है। आपसे अधिक उपयुक्त व्यक्ति संघ के सभापति-पद के लिए इस नगर में दूसरा कौन है ?"—अरविन्द ने पूछा।

"मैंने बताया न कि हर सच्चा मनुष्य अपने को पहचान कर ही काम करता है। क्या यह सम्भव नहीं कि एक वस्तु दिखायी तो कुछ पड़े और उसका असली रूप कुछ दूसरा हो ?"

अरविन्द उक्ति से विस्मित हुआ, असमंजस से भरे दिल से उसने कहा, "तर्क तो अकाट्य है। लेकिन आपके सम्बन्ध में आपका बड़ा-से-बड़ा विरोधी भी ऐसी निर्मूल धारणा नहीं बना सकता।"

"अरविन्द, व्यक्ति को जीवन भर अपने आपसे संघर्ष करना पड़ता है। उसका

सबसे वडा दुश्मन वह स्वय है। शायद यह मघर्ष अपने आप मे प्रमशसनीय उन्माह है। पर लडाई मे हर पक्ष की सफलता तो सम्भव नही ?"

अरविन्द ध्यान से बाबू रूपकिशोर की बाते सुन रहा था। बाते बिल्कुल सच थी। वह सोच रहा था कि जाने किस कटु अनुभव से पीडित हो वकील साहब ये बाते कह रहे है।

अरविन्द चाह कर भी वकील साहब की बातो का कारण नही समझ सका। मगर वह प्रसन्न था कि वकील साहब पद-लोलुपता से बिलकुल दूर है और अनाथ-आश्रम के काम मे सहयोग देगे।

आश्रम का मुट्ठीगज मे अपना भवन था। सौ बच्चो के वहाँ रहने की व्यवस्था थी। बच्चो का वहाँ स्कूल था, खेल-कूद का मैदान था और कृषि के योग्य आश्रम के अन्दर ही काफी जमीन थी।

आश्रम केवल बालको का ही था। ऐसे बालक यहाँ भर्ती किये जाते थे जिनके माँ-बाप का पता नही होता था। अभागिन माताएँ सामाजिक मजबूरियो से अपने जिन बच्चो को त्याग देती थी वही आश्रम मे भरती किये जाते थे। यो तो सौ फीसदी बच्चो के पिता अज्ञात थे, लेकिन काफी सख्या के बच्चो की माँ का भी पता नही होता था।

अठारह वर्ष की उमर तक के बच्चो को आश्रम मे शिक्षा दी जाती थी। फिर उन्हे जीवन मे किसी धधे-रोजगार मे लगा दिया जाता था। तब अपने पाँव पर खडे हो आश्रम से वे विशाल ससार मे चले जाते थे।

अरविन्द के साथ बाबू रूपकिशोर एक दिन आश्रम देखने गये। छोटे-छोटे देवता सरीखे सुन्दर बालको को देख कर उनका मन भर आया। माँ-बाप के होते हुए ये बच्चे अनाथ है, यह सोच कर तो वे विह्वल हो उठे। माँ-बाप का जो दोष रहा हो, समाज का इन शिशु देवताओ ने क्या बिगाडा है ? और अगर समाज की मर्यादाओ के विपरीत चरित्र से उत्पन्न ये शिशु है तो दोष क्या समाज का नही ? बाबू रूपकिशोर सहसा बहुत दुखी हो गये। उनका मन था कि समाज की ऐसी मर्यादा होनी चाहिए कि माँ-बाप बच्चो को अपने से अलग न कर सकें। क्योकि माँ-बाप की छाया से दूर बालक का समुचित विकास नही हो पाता। जीवन मे आनथ-

आश्रम की छाप लिये, माँ-बाप की जानकारी के अभाव की टीस लिये हुए ये बालक कभी भी समाज मे सिर ऊँचा कर नही जी सकेगे। इससे समाज के साथ-साथ देश का कितना बडा अपकार होगा—बाबू रूपकिशोर सोचते रहे।

बाबू रूपकिशोर को आश्रम के प्रबन्धक महोदय ने शिशु-अवस्था से लेकर किशोरवय तक के बालको का रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था बतलायी। आश्रम जो कुछ भी इन अभागो के लिए कर रहा था, उसकी बाबू रूपकिशोर ने सराहना की। प्रबन्धक महोदय से उन्होने पूछा, "जो बच्चे आश्रम की शिक्षा पूरी कर चले जाते है उनसे कोई सम्पर्क रखा जाता है या नही ?"

"जी हाँ, उनका तो घर-द्वार यही है। वे स्वय अपने बारे मे हम लोगो को सूचित रखते है और कई तो छुट्टियाँ लेकर बरसो बाद भी यहाँ आते है।"

"क्या अनुमान है आपका, इनमे से कितने प्रतिशत अच्छे नागरिको-सा जीवन बिना पाते है ?"

"अधिकाश क्या, शत-प्रतिशत को जीवन मे कदम-कदम पर घोर विरोध का सामना करना पडता है। उन्हे सुखी नागरिक की तरह स्वच्छन्द रहने नही दिया जाता। ये बच्चे हमारे समाज मे अपने जीवन भर एक नये किस्म के अछूत बने रहते है।"

"दुःख की बात है।"—अरविन्द से बाबू रूपकिशोर ने कहा, "समाज मे इन बालको को उचित स्थान नही मिलता। उन्नत देशो मे, खास कर योरोप मे तो ऐसे बालक सेना के उच्च पदो तक पहुँचे है और देश के महान नागरिक कहलाये है।"

"हमारा वर्णाश्रम धर्म और अन्धविश्वास इस दशा के मूल मे है।"—अरविद भावो मे ओत-प्रोत हो बोला।

हाँ अरविन्द, यह हमारे देश की असली समस्या है। अन्धविश्वास के कारण हम वर्ण, जाति, उपजाति इत्यादि मे विभाजित है। हमारे व्यक्तिगत जीवन मे नैतिकता नही, जिसके उदाहरण ये आश्रम है। हमे अपनी सामाजिक और आर्थिक परम्पराओ मे आमूल परिवर्तन करना पडेगा। तभी ये शिशु देवता देश के स्वस्थ नागरिक बन सकेगे और तभी ऐसे आश्रमो का अन्त भी होगा। क्या भगवान के

इन बच्चों को मनुष्य की तरह सुख और इज्ज़त का जीवन बिताने का अधिकार नहीं ?"––बाबू रूपकिशोर भावना में बह रहे थे। उनका हृदय करुण विषाद से भरा था और सुदूर भविष्य में वे जाने क्या कुछ अपनी मन की आँखों से देख रहे थे।

नये शिशुओं की नर्सरी में एक दो महीने से भी कम वय के शिशु को इंगित कर प्रबन्धक महोदय ने बताया, "यह स्वस्थ बालक, कूड़े के सार्वजनिक टब में कपड़ों में लिपटा पाया गया। शायद कूड़े के ढेर से दब कर मर जाने के लिए इसे टब में छोड़ा गया था।"

बच्चा बहुत सुन्दर था। इन लोगों को देखकर अपने हाथ-पाँवों को जोर-जोर से हिलाने-पटकने लगा; मानो वह इन लोगों के हृदय में उठे विचार की सराहना कर रहा था।

एकाएक बाबू रूपकिशोर को बीरा की याद आ गई। समय तो उसका कब का पूरा हो चुका होगा। मगर बिल्वमाला ने अब तक कोई खबर क्यों नहीं दी? अगर बीरा को लड़का पैदा हुआ तो वे उसे इसी आश्रम में भरती करा देंगे, जिससे उसकी देख-रेख हो सके। फिर जब आश्रम की शिक्षा समाप्त हो जायगी या उससे पहले ही, वे उसे लूकरगंज में ही किसी उचित काम पर लगा देंगे। उसकी माँ खुश रहेगी, उनका मन भी पश्चात्ताप की भट्ठी में सुलगने से बचा रहेगा। बाबू रूपकिशोर अपनी समस्या का इतना सरल निदान पाकर प्रसन्न हो उठे। लेकिन अचानक यह ख्याल आया कि बीरा के अगर लड़की हुई तो? वह इस आश्रम में तो रखी ही नहीं जा सकती और बीरा की लड़की अपनी माँ की तरह ही किसी की दासी बने––यह सोच बाबू रूपकिशोर को ऐड़ी से चोटी तक झकझोर गया। घोर निराशा की लहर में वे डूबने लगे।

उन्होंने प्रबन्धक महोदय से पूछा, "क्या बालिकाओं के लिए कोई आश्रम नहीं?"

"एकाध हैं। लेकिन वे आश्रम न होकर व्यभिचार फैलाने के अड्डे हैं।"

बात सच थी। बाबू रूपकिशोर यह जानते थे। बात से उनके दिल को

"धर्म का विवाह, प्रेम-परिणय—जन्म-जन्मान्तर के लिए।"

बाबू रूपकिशोर चुपचाप सोचते रहे। बिल्वमाला ने पत्नी से कहीं अधिक सुख और आत्मीयता उन्हें दी थी, इतना कि खेल अब प्रेम में बदल चुका था। उन्होंने सोचा कि अकारण ही धीरा से यह सब उन्होंने पूछा। लेकिन फिर भी उनके मुँह से निकल गया, "अच्छा धीरा, तुम दोनों बहनों का जो मुझसे सम्बन्ध है, वह क्या धार्मिक है ?"

"वह पूर्ण धार्मिक है। रानी जीजी की हम दासियाँ हैं। उनके पति की भी दासियाँ हैं। यही हमारा धर्म है। इसके विपरीत ही पाप होता है। हम कहीं और नहीं जातीं, चाहे सारा जीवन ही क्यों न बीत जाता ?"

"क्या कभी तुम लोग किसी दूसरे से प्रेम नहीं कर सकतीं ? मान लो किसी से प्रेम हो ही जाय।"

"ऐसा हो नहीं सकता।"—विश्वास के स्वर में धीरा ने उत्तर दिया।

"इतना अटल विश्वास", बाबू रूपकिशोर ने सोचा—क्या ये प्रेम भी करती हैं या केवल परम्परा निभाती हैं।

उन्होंने फिर पूछा, "धीरा, क्या तुमने कभी प्रेम किया है ? मतलब कि क्या कभी भी तुम्हारे मन में किसी से मिलने की इच्छा पैदा हुई है, किसी के आकर्षण ने मन में टीस जगायी है ?"

सर हिला कर लाज से धीरा ने जताया, "हाँ।"

"किससे और कब ?"—पूछ बैठे बाबू रूपकिशोर।

"मैंने जब पहले-पहल आपको देखा था, मुकदमे के सिलसिले में आप आये थे, तभी से रानी जीजी भी आपकी बहुत बात किया करती थीं। तब मैं नहीं जानती थी कि आपकी सेवा कर सकूँगी। पर वह पहली बार का दर्शन मन कभी भूल न सका। फिर जब आपने अनिच्छा प्रकट की, तब मैंने मर जाने की कामना की। वैसे बहुत लोग यहाँ आये, पर जैसा आपको पहली ही बार देखने में हुआ, वैसा कभी नहीं हुआ। पहले जेनरल के साथ तो कोई भावना थी ही नहीं और बाद में तो उनसे घृणा हो गयी।"—लज्जा ने धर दबाया धीरा को।

उस लज्जा को समेट लिया बाबू रूपकिशोर ने अपने अंकपाश में।

पाँच बजे के वाद चाय पीकर और स्नान कर बाबू रूपकिशोर लूकरगज से चले। तब उनका मन हल्का था और चेहरा खिला हुआ था।

घर पहुँचे तो मुशी जी ने कहा, "ठाकुर बलदेव सिह और राजा रमणीमोहन आये थे। कल फिर आयेगे।"

ऊपर कमरे मे पहुँचे तो जान्हवी स्नानागार मे थी। बाबू रूपकिशोर ने पत्नी से पूछा, "कितनी देर है ?"

"अभी आती हूँ। चाय पी लो। बच्चे इन्तजार कर रहे है।"—भीतर से ही जान्हवी ने कहा।

"चाय तो मै पीकर आया हूँ।"

"कहाँ ?"—भीतर से आवाज आयी।

"एक मित्र के यहाँ।"

"मित्र के पास ही शायद सारा दिन बिताया ?"

"कई जगह गया था।"—बाबू रूपकिशोर ने पत्नी के प्रश्नो से विस्मित होकर कहा।

"बच्चो से कह दो वे चाय पी ले। मै अभी आती हूँ।"

माधुरी को आवाज देकर बाबू रूपकिशोर ने कहा, "बेटे, तुम लोग चाय पी लो। मै चाय पी कर आया हूँ।"

करुणा ने कहा, "बाबू जी, आप भी आइये। आज जीजी ने चाट बनायी है।"

"आता हूँ।"—कह कर बाबू रूपकिशोर नीचे खाने के कमरे मे पहुँचे।

बाबू रूपकिशोर चाट के शौकीन थे। चाट बनी भी अच्छी थी। माधुरी से उन्होने कहा, "गोलगप्पे खूब बने है और उसके पानी का जायका भी खूब स्वादिष्ट है।"

"पानी माँ ने बनाया है।"—माधुरी ने कहा।

बाबू रूपकिशोर माधुरी की इस आदत को जानते थे। हमेशा वह अच्छी चीजो का श्रेय माँ को देने की कोशिश करती थी। स्वय जैसे वह कुछ न जानती हो।

"महेश की कोई चिट्ठी इधर आई ?"—बाबू रूपकिशोर ने माधुरी से पूछा।

"आई थी। गर्मी की छुट्टियों में आ रहे हैं।"

"कब आई उसकी चिट्ठी ?"

"ज्योत्स्ना के पास आई है।"

बाबू रूपकिशोर ने चौंक कर पूछा, "क्या महेश और ज्योत्स्ना आपस में पत्र-व्यवहार करते हैं ?"

"हाँ"—माधुरी ने सिर हिला कर जताया।

महेश, उनका बड़ा पुत्र, सब बच्चों से अलग स्वभाव का था, बहुत ही शांत जैसे नौजवानी का उल्लास उसमें हो ही नहीं। जब पैदा हुआ था, अस्पताल से घर आया था, तब पत्नी ने—महेश की माँ ने—उसे लाकर बाबू रूपकिशोर की गोद में रख दिया था। प्रेमभाव से गद्‌गद हो पिता ने प्रथम सन्तान को कलेजे से लगा, चूम लिया था। उसकी माँ चिल्ला पड़ी थी, "ज़रा सँभाल कर लिये रहें—कहीं गिर न जाय, कोई अंग दब न जाय।"

महेश को खेलाने में बाबू रूपकिशोर को यही कठिनाई हुआ करती थी, क्योंकि उसकी माँ उसे हिलाने-डुलाने भी नहीं देती थीं।

पर महेश जब घर में आया, तब से घर में एक नयी बहार आ गई। दद्दा उसके जन्म पर दानापुर से आये थे। उन्होंने आशीष दिया, "खानदान को यह उज्वल करेगा। तीसरी पीढ़ी में खानदान बदलता है।"

महेश का जन्म बड़ा शुभ फल लाया। वकील साहब को अपना पहला बड़ा मुकदमा उसी साल मिला। रीवाँ के किसी बड़े सरदार ने कत्ल किया था। दिन-दहाड़े खून किया गया था। उसके छूटने की कोई तरकीब नहीं थी, आशा भी नहीं थी। लेकिन बाबू रूपकिशोर ने उस मुकदमे की तैयारी में अथक परिश्रम किया। अपना जी-जान लगा दिया। भाग्य ने उनका साथ दिया और सरदार जुर्म से बरी कर दिया गया। सरदार हैसियत का जागीरदार था। उसने बाबू रूपकिशोर को मालामाल कर दिया था। उसी धन से उन्होंने इस पैतृक मकान को नये सिरे से बनवाया था। दद्दा कहते नहीं अघाते थे कि यह मकान महेश का है, उसके आते ही घर चमक गया।

महेश की विलक्षण बुद्धि का पता छोटी कक्षाओं में ही चल गया। गणित में उसके अध्यापक उसकी प्रखर बुद्धि पर दंग हो जाते थे। वकील साहब महेश के बचपन से ही उसे वकालत की ओर प्रवृत्त करना चाहते थे। लेकिन गणित के साथ-साथ उसे विज्ञान में दिलचस्पी थी। कल-पुर्जे जोड़ने की आदत बचपन से ही थी। खिलौनों को तोड़ा-बनाया करता था। लोहे के कुछ कल-पुर्जों से नये-नये खिलौने बनाता था। मोटर, रेल, हवाई जहाज के खेलों में ही उसका मन लगता था। कालेज में जब आया तो घर की बिजली का काम वही कर दिया करता था। मुहल्ले में वह मिस्त्री मशहूर था। लेकिन शैशव से ही वह बहुत ही गुरु गम्भीर स्वभाव का था। हमेशा शांत——चुप——रहता था। आज वकील साहब ने मन-ही-मन सोचना चाहा, लेकिन एक भी मौका ध्यान नहीं आया जब महेश ने ऊँची आवाज़ में भी बात की हो। अपनी माँ की तरह, जो सदा धीरा-गम्भीर रहती थी या तो वह पढ़ा करता था या गुमसुम बैठा रहता था। न कहीं जाने का उत्साह, न कहीं से आने की कलक। शीलवान और चुप्पा लड़का था महेश, बचपन से ही।

महेश की माँ जब मरी थीं तब वह छोटा ही था। लाश जव उठी थी तब माधुरी ——नन्ही माधुरी-ताई जी की गोद में चिल्ला-चिल्ला कर रो उठी थी। लेकिन महेश उनका हाथ पकड़े गुमसुम-सा चुप खड़ा माँ की लाश को अर्थी पर जाते देखता रहा। पूछने पर ताई जी ने कहा था, "अम्मा, भगवान के पास जा रही है। जल्दी लौट आयेगी।"

माधुरी ने रो-रोकर कहा था, "मैं भी उनके संग जाऊँगी।"

लेकिन महेश जैसे ठीक-ठीक समझ रहा था कि विमान माँ को कहाँ लिये जा रहा है। बाबू रूपकिशोर महेश के ध्यान में लीन हो उठे। फिर मन-ही-मन बोले, 'वह सदा स्थितप्रज्ञ रहा, जो मैं आज तक नहीं हो पाया

महेश ने युवकोचित उच्छृंखलता का कभी कोई आभास नहीं दिया था। ज्योत्स्ना से पत्र-व्यवहार का क्या मानी है, उनकी मित्रता की गहराई कितनी है——बाबू रूपकिशोर के मन में कई सवाल उठ खड़े हुए।

माधुरी की ओर बाबू रूपकिशोर ने दया-भाव से देखा। इतनी प्यारी और सुशील बच्ची पर उन्होंने कभी कोई खास ध्यान नहीं दिया। कितनी शिष्ट, कितनी

मधुर, कितनी मेधावी, कितनी समवेदना से भरी थी माधुरी। गुण मे ही नही, रूप मे भी सैकडो मे एक थी। लेकिन भगवान की यह कैसी मर्जी थी कि माधुरी कुमार की ओर झुकी है और महेश ज्योत्स्ना की तरफ। दोनो सम्बन्ध सम्भव नही थे, एक-न-एक तो नही ही होकर रहेगा। यह एक नई परिस्थिति बाबू रूपकिशोर के जीवन मे आ खडी हुई। लेकिन आज वह प्रसन्न थे और उनकी भावनाओ मे तीक्ष्णता न होकर कुतूहल और विनोद का ही रस अधिक था।

जब चाय समाप्त हो गयी तब बाबू रूपकिशोर ऊपर कमरे मे आये। ड्रेसिंग गाउन पहने जान्हवी शृगार की मेज के पास बैठी अपनी केश-राशि सँवार रही थी। एक हाथ मे ब्रश, दूसरे से जूडा पकडे शीशे मे पति को कमरे मे आते देख जान्हवी बोली, "गोलगप्पे पसन्द आये ? पानी कितना जायकेदार था। माधुरी ने तैयार किया था।"

"वह तो कह रही थी कि तुमने पानी बनाया।"

"उसी ने तैयार किया। मैने केवल जीरा और मसालो का अन्दाज बता दिया था।"

पनि जान्हवी के पाम आकर मेज पर पडी कघी उठा कर बोले, "आज मै केश सँवार दूँ।"

"क्या करते हो ? दरवाजा खुला है। कोई बच्चे आ जायँ ?"

बाबू रूपकिशोर पीछे हट गये। पत्नी ने परिहास किया,—

"स्त्रियो का काम तुमने कब से सीखा ?"

"स्त्रियो के साथ का असर है।"—विनोद से ही बाबू रूपकिशोर ने कहा।

"क्या बहुत स्त्रियो से सम्पर्क रहा है ? मेरे और बहन जी के अलावे भी ?"

बाबू रूपकिशोर सहम गये। मन के भाव को वश मे कर हँसी की मुद्रा बना कर बोले, "कौन जाने ?"

जान्हवी ने पति का भाव अगर लक्ष्य भी किया हो तो उसने उसे प्रकट नही होने दिया। उसने भी हँस कर उत्तर दिया, "पुरुष जो हो ?"

"महेश ने तुम्हे कोई चिट्ठी लिखी ?"—बाबू रूपकिशोर ने पूछा।

पत्नी केश सँवार चुकी थी। जूडा की लडी को वे आखिरी घुमाव दे रही थी।

बोलीं, "इधर तो कोई चिट्ठी नहीं आई।"

"गर्मियों में आने वाला है।"

"क्या माधुरी को उसने लिखा है?"

"नहीं, ज्योत्स्ना के पास उसकी चिट्ठी आई है। माधुरी कह रही थी कि उनका आपस में पत्र-व्यवहार चलता है।"

पत्नी के हाथ नीचे गिर पड़े। जूड़े की लड़ी बिखर पड़ी। बोल उठीं, "क्या कह रहे हो? कहीं माधुरी को धोखा तो नहीं हुआ?"

"नहीं जी, माधुरी गम्भीर लड़की है।"

"लेकिन महेश और ज्योत्स्ना तो मिलते-जुलते भी नहीं थे।"

"यही होता है जीवन की भूल-भुलैया में। कौन क्या है, क्या हो जाय, कोई जान ही नहीं सकता? सारा ज्योतिष झूठा पड़ जाता है।"

"इसका नतीजा क्या होगा? माधुरी का क्या बनेगा?"—जान्हवी शृंगार समाप्त करती हुई बोली।

फिर बोली, "अच्छा बाहर जाओ। मैं कपड़े पहन कर आयी।"

"न जाऊँ तब"—पत्नी को ठिठोली से अंकपाश में भरने की चेष्टा में बाबू रूपकिशोर ने कहा।

"हटो, दरवाजा खुला है। चलो, मैं तैयार होकर आती हूँ। आज डाक्टर दत्ता के यहाँ चलें। बच्चों को भी कह दो तैयार हो जायँ।"

बाबू रूपकिशोर के मन की बात जैसे जान्हवी ने कही हो।

: १६ :

डाक्टर और श्रीमती दत्ता गोल कमरे में बैठे बातें कर रहे थे, जब बाबू रूपकिशोर परिवार समेत उनके यहाँ पहुँचे। डाक्टर दत्ता के चेहरे पर बाबू रूपकिशोर को देख कर प्रसन्नता नाच गई। उठ कर स्वागत करते हुए बोले, "आइये, आइये, वकील साहब, बड़ी उमर है आपकी। आप ही की अभी चर्चा थी।"

"क्यो ख़ैरियत तो है ?"

"कुछ नही चर्चा चल पडी थी।"—श्रीमती दत्ता स्वागत मे खडी होती हुई बोली।

बाबू रूपकिशोर और जान्हवी आकर गोल कमरे मे बैठ गये। माधुरी, करुणा, केदार, ज्योत्स्ना के सग बाहर बँगले के चमन मे फूल-पौधे देखने लगे।

डाक्टर दत्ता ने ही बातचीत शुरू की, "आपकी गाडी बडी अच्छी है। आपने तो पुरानी ही ली थी।"

"बहुत पुरानी नही थी। नयी ही समझिये। पर मैने नयी नही ली थी, यह तो सच ही है।"

"ज्योत्स्ना और कुमार भी वैसी ही गाडी के पीछे पडे है। नयी गाडियो के मिलने मे आजकल बडा समय लगता है। एक आप की-सी ही पुरानी खरीदना चाहता हूँ। अपनी फोर्ड मैने बेच दी है।"

"कब बेचा आपने ?"—जान्हवी ने पूछा।

"कल ही गयी है। बरसो से साथ दे रही थी। अब काम नही चलता था उससे।"

"अब कैसे काम चलेगा ? आपको तो देहात मे भी बहुत आना-जाना पडता है। शहर मे भी गाडी चाहिए ही।"—बाबू रूपकिशोर ने कहा।

"इसीलिए गाडी तुरन्त खरीदना चाहता हूँ। मगर भाव इतने चढ गये है कि यह भी नही तय कर पा रहा हूँ कि पुरानी लूँ या नयी।"

"नयी गाडी मिलने मे भी विशेष कठिनाई नही होती। आप दिल्ली लिखे।"

"लिख दिया है।"—कह कर श्रीमती दत्ता से डाक्टर साहब ने कहा, "कुछ काफी वगैरह पिलाओगी ?"

जान्हवी बोली, "क्यो कष्ट करेगी ? अभी चाय पीकर आये है।"

लेकिन श्रीमती दत्ता उठ कर अन्दर काफी का आदेश देने चली गयी।

"कुमार नही दिखलायी पडता।"—बाबू रूपकिशोर ने पूछा।

"आता ही होगा। कही चला गया है।"—डाक्टर साहब ने कहा। फिर जान्हवी से पूछा, "आप तो कभी दिखायी ही नही पडती।"

"आप ही लोग कब दिखायी पड़ते हैं?"—जान्हवी ने विनोद भाव से कहा।

डाक्टर दत्ता हँस पड़े, "जानती ही तो हैं। डाक्टरी पेशा है। सुबह-शाम दवाखाने में और दिन भर दौड़-धूप। बाबू रूपकिशोर अच्छे हैं। घर से कचहरी और कचहरी से घर। फिर सारी छुट्टियाँ। यहाँ तो छुट्टियाँ भूल ही गये।"

"हर पेशे का अपना रोग है। दूसरे का पेशा ही हमेशा अच्छा लगता है।"—बाबू रूपकिशोर ने कहा।

"वकालत तो कुमार भी करना चाहता है। आपका उदाहरण दिया करता है। कहता है कि चाचा जी ने वकालत के पेशे में नैतिकता का एक नया नमूना पेश किया है।"

"किसी भी पेशे में सफलता की एक ही कुंजी है—लगन से मेहनत।"

"कुमार को तो मैं अपनी जगह लाना चाहता था। परन्तु उसे वकालत की सूझी और ज्योत्स्ना भी साहित्य लिए पड़ी है। जमी-जमायी मेरी डाक्टरी थी। कुमार जम जाता। वकालत में तो उसे एकदम श्रीगणेश करना पड़ेगा।"

"कोई बात नहीं। वह मेधावी और परिश्रमी है, जम ही जायेगा।"

जान्हवी और श्रीमती दत्ता झूँसी के स्वामी जी की बात कर रही थीं।

श्रीमती दत्ता कह रही थीं, "सुना, स्वामी जी ने बाबू रूपकिशोर को शिष्य बना लिया है?"

"नहीं, योग की कुछ पुस्तकें पढ़ने को बताया है। उन्हें ही ये कभी-कभी पढ़ा करते हैं।"

"क्या कुछ योगाभ्यास भी करते हैं?"

"पूजा के समय पद्मासन का कुछ अभ्यास जरूर किया है और साँस रोकने का पूरक, कुम्भक, रेचक भी नियमित करते हैं।"

"सुना स्वामी जी सिद्ध योगी हैं। समाधि में घण्टों रहते हैं?"

"मैंने तो यह नहीं सुना। वेद-शास्त्रों के जानकार जरूर हैं। वैसे साधु-संतों का जीवन साधना का होता है। शायद वे योगी भी अच्छे हों।"

"भगवान के भजन में ही तो गति है। चाहे वह जैसे भी क्यों न किया जाय?"

"हाँ बहन,"—जान्हवी ने उदास होकर कहा, "भगवान ही अंतिम गति है।

उसका भजन-भाव आदमी भूल जाता है तभी उसे दु ख उठाना पडता है ।"

नौकर काफी ले आया । डाक्टर साहब ने आवाज लगायी, "ज्योत्स्ना, माधुरी और बच्चो को ले आओ ?"

बच्चे प्रसन्नता से किलकारियाँ मारते आये । काफी के साथ सूखे फल, अखरोट, काजू, बादाम, किशमिश, चिरौंजी भी तश्तरी मे रखे थे । बच्चो ने अपनी-अपनी मुट्ठी मे भर लिया । माधुरी ने भी । ज्योत्स्ना ने प्यालो मे काफी बना कर सबको दिया ।

काफी पीते हुए डाक्टर दत्ता ने कहा, "महेश का तो आख़िरी साल होगा रुडकी मे ?"

'हाँ ।"—वकील साहब ने कहा ।

' सरकारी नौकरी करेगा या किसी व्यावसायिक फर्म मे घुसने का उसका विचार है ?"—डाक्टर दत्ता ने पूछा ।

"महेश का विचार जानना सरल नही । अभी तक उसने इस सम्बन्ध मे कुछ भी जाहिर नही किया ।"

"महेश बडा ही होनहार और गम्भीर युवक है ।"—श्रीमती दत्ता ने कहा ।

"शायद, क्यो ज्योत्स्ना, तुम्हारी क्या राय है ।"—बाबू रूपकिशोर ने अचानक ज्योत्स्ना से पूछ लिया ।

ज्योत्स्ना महेश के बारे मे बातचीत ध्यान से सुन रही थी । वकील साहब का सवाल सुन एकाएक वह लजा गयी ।

श्रीमती दत्ता ने पुत्री की सहायता करने के लिए बातचीत का सूत्र फिर अपने हाथ मे लिया और बोली, "ज्योत्स्ना और महेश की बहुत बनती है ।"

जान्हवी कहने जा रही थी, 'ओर माधुरी और कुमार की भी ।' लेकिन चुप ही रही ।

बाबू रूपकिशोर ज्योत्स्ना की ओर देख रहे थे । उनके प्रश्न से वह कुछ गम्भीर हो गयी थी । उन्हे लगा कि अचानक उससे महेश के स्वभाव के बारे मे पूछ कर उन्होंने अच्छा नही किया ।

डाक्टर दत्ता ने विषय बदला, "आज-कल कोई सनसनी खेज मुकदमा

आपके हाथ मे है ? पुलिस को तो आपसे बडी परेशानी होती होगी ?"

"अब पुलिस मेरी आदी हो गयी है।"—बाबू रूपकिशोर कुछ सोच रहे थे।

"उस दिन एक मजदूर के मामले मे मैं शहादत मे गया था। बिजली की बैट-रियाँ जहाँ चार्ज की जाती है, वहाँ उसकी नौकरी थी। रात भर वह काम से जागता रहा। उस दिन कुछ बिजली मे ऐसी दिक्कत रही कि रात भर उसे ठीक ही करने मे उसे बीता। गैस जरूरत से ज्यादा पेट मे चली गयी। बेहोश हो गया था तो सरकारी अस्पताल मे दाखिल कर लिया गया। फिर होश मे आते ही उसे निरोग बता कर अस्पताल छोडने को मजबूर कर दिया गया। अच्छा वह हुआ नही था, उसने मेरा इलाज शुरू किया। उसकी हालत नाजुक थी , यह मैने उससे कह दिया था। एक हफ्ता भी नही चल पाया, मर गया। उसकी स्त्री और तीन बच्चे है। श्रमिक कानून के अन्तर्गत उसकी स्त्री ने मुआवजे की दरख्वास्त दी। वह अस्वीकार कर दी गयी। फिर उसने अदालत मे दावा किया। सरकार की ओर से सिविल सर्जन ने बयान दिया कि मृतक गैस से उत्पन्न रोग से ठीक हो गया था। उसकी पत्नी ने अदालत मे मेरा बयान कराया। मुझे सच-सच बयान करना पडा। साफ कारण उसकी मौत का गैस की बीमारी थी। मगर उसके महकमे से उसके उचित हर्जाने मे भी, जो उसे कानूनन मिलना चाहिए, कठिनाइयाँ उपस्थित की जा रही है।"

"सरकार का दोष नही। अस्पताल के डाक्टरो और उसकी कम्पनी के अधिकारियो का दोष है ? हर्जाने को ध्यान मे रख कर ही उसे बिना रोगमुक्त हुए स्वस्थ घोषित कर दिया। अब डाक्टरो को अपनी जान बचाने की पडी होगी। अक्सर ऐसा होता है और होता ही रहेगा जब तक यहाँ अशिक्षा और गरीबी का बोलबाला रहेगा।"

"शिक्षित-अशिक्षित क्या ? सरकारी दफ्तरो मे तो हर नागरिक को भेड-बकरी से अधिक नही समझा जाता है।"—डाक्टर दत्ता ने कहा।

बाबू रूपकिशोर इस प्रसग मे विशेष दिलचस्पी नही ले पा रहे थे। वे किसी खास बात को लेकर परिवार समेत आये थे। लेकिन उसकी चर्चा अप्रास-गिक लगी। इसीलिए उन्होने बात नही चलाई। आज्ञा माँगी चलने की। उठ

खडे हुए। चलते-चलते बाबू रूपकिशोर ने पूछा, "कुमार अब तक नही आया?"

"पता नही कहाँ देर लगा दी।"—श्रीमती दत्ता ने कहा।

लेकिन बाहर आते ही उन्होने देखा कि कुमार और माधुरी लान पर आराम कुर्सियो मे बैठे विनोद-वार्ता कर रहे थे।

डाक्टर दत्ता ने पूछा, "कुमार, तुम अब कब आये ?"

कुमार ने आकर बाबू रूपकिशोर और जान्हवी को प्रणाम किया। पिता से उसने कहा, "मै तो कब का आ गया था।"

"किन बातो मे इतने मग्न थे कि हम लोगो का ध्यान ही नही रहा ?"—जान्हवी ने विनोद किया।

कुमार अप्रतिभ-सा खडा रहा।

रात को जान्हवी ने पति से कहा, "श्रीमती दत्ता तो निश्चित समझे बैठी है कि महेश और ज्योत्स्ना की जोडी विलग नही होगी। साफ-साफ तो नही, पर इशारे मे उन्होने कहा भी।"

"अच्छी मुसीबत आ पडी है। उधर माधुरी और कुमार का सवाल है।"

"क्या दोनो विवाह नही हो सकते ?"—जान्हवी ने पूछा।

"लोकाचार खिलाफ पडता है। मेरा मन भी गवाही नही देता। जिस समाज मे रहते है, उसकी मर्यादा निभानी ही पडती है। खासी जटिल समस्या है। मुझे तो सुदूर आकाश मे काले मेघो की छाया साफ दिखायी पडती है।"—बाबू रूपकिशोर गम्भीर हो उठे।

जान्हवी बोली, "लेकिन कुछ-न-कुछ तो अब सोचना ही पडेगा ?"

"हाँ, माधुरी को तो तुम जानती ही हो। अगर उसने कोई निश्चय कर लिया है तो उसमे फरक नही आ सकता। बचपन से ही ऐसी है। एक बार जब चार-पाँच बरस की थी, दद्दा कही जा रहे थे। जाने के लिए वह भी मचल पडी। दद्दा को जरूरी काम था। वे चले गये। चिल्ला-चिल्ला कर उसने सारा घर उठा लिया। भाभी ने गोद में लेकर बहुत दुलराया-फुसलाया। मै उसे लेकर खिलौने खरीद देने बाजार जाने को तैयार हुआ। मगर उसका रोना बन्द नहीं हुआ। जब

किसी तरह भी न मानी तब दद्दा जहाँ गये थे, वहाँ उसे ले जाना पड़ा। भयंकर जिद्दी स्वभाव की लड़की थी माधुरी।"

"मुझे तो हम लोगों का ही जमाना अच्छा लगता है। माँ-बाप ने जो कुछ कर दिया, वही ठीक था। पर आजकल के लड़के-लड़कियों के लिए वैसा सोचना भी उचित नहीं।"

बाबू रूपकिशोर हुक्के के कश लेते हुए सोच रहे थे, 'माधुरी को अपनी माँ का स्वभाव मिला है। वह भी कभी कुछ भी नहीं कहती थी। लेकिन होता वही था जो वह चाहती थी। न मालूम क्या खूबी थी उसके मृदुल स्वभाव में कि भाभी भी, जो किसी की नहीं सुनती थीं, उसकी बात को कभी मना नहीं करती थीं। स्वयं बाबू रूपकिशोर ने कभी उसकी किसी इच्छा को नहीं तोड़ा। एक बार महेश को उन्होंने डाँट दिया था किसी बात पर। महेश रोने लगा था। उसकी माँ आ गयी। महेश को गोद में उठा कर केवल इतना बोली——

"छोटे बच्चों को कभी डाँटते-डपटते नहीं।" उसके बाद, संयोग की बात——बाबू रूपकिशोर मन-ही-मन हँस पड़े——उन्होंने फिर बच्चों को कभी नहीं डाँटा। इतना प्रभाव था उनका। माधुरी के नाना कर्मकाण्डी विद्वान थे। आचार-विचार, नियम-निग्रह का कठोर अनुशासन था उनके घर में। पुत्री के साथ पिता के घर का संयम अनुशासन इस घर में भी आया और छा गया। माधुरी की माँ प्रतिदिन सवेरे नहाने के बाद तुलसी को और सूरज को जल चढ़ाया करती थी, पूजा करती थी। तब बाबू रूपकिशोर हँसा करते थे उन पर। आज यदि वे होतीं ...।'——बाबू रूपकिशोर फिर हँस पड़े।

जान्हवी ने पूछा, "बड़े प्रसन्न नज़र आ रहे हो?"

"सोच रहा था कि जगत् परिवर्तनशील है। सब कुछ बदल जाता है। देखो न, मैं क्या था, आज क्या हूँ, कल——आने वाला कल——अन्धकार के गर्त में है।"

जान्हवी ने पूछा, "आजकल तुम इतना सोचा क्यों करते हो?"

"सोचना बुरा नहीं होता जान्हवी! कल की चाहे वह भूत का हो या भविष्य का, चिन्ता बेकार है। आज ही महत्त्वपूर्ण है। पर कल से जो कुछ सीखा——समझा है, वही तो आज है और वही तो आगे वाले कल का आधार है। कभी-

कभी इसीलिए अतीत मे झाँक आता हूँ। पर जानती हो, उसमे मिलता क्या है ? एक धुँधली-सी परछाई और बाकी अँधेरा.... ।"

जान्हवी पति को समझ नही सकी । उसकी आँखे एक क्षण पति के चेहरे पर अडिग रही । फिर गम्भीर होकर उसने पूछा, "क्या मैने कभी तुम्हे जाने या अनजाने मे दु ख दिया है ? तुम्हारे किसी भी काम या भाव मे कभी अडचन बनी हूँ ?"

"यह सब क्या कह रही हो ? यह धारणा ही क्यो ?"

"यदि कारण नही तो तुम अपना ध्यान क्यो नही रखते । शरीर सूखता जा रहा है ? कभी-कभी तुम्हारे मुँह से ऐसा विपाद झलकता है जो राजरोग से ग्रसित रोगियो का होना चाहिए । यह क्यो ? मैने क्या अपराध किया है ?"

[illegible] से किसी दूसरी भावधारा में बह निकला । उन्हे उस भयकर स्वप्न की-सी पीडा का अनुभव हुआ । वह सशकित हो बोले, "राजरोग से कौन ग्रसित नही, जान्हवी ! जीवन ही राजरोग है और इससे एकमात्र त्राण जीवन से मुक्ति पाना हे । लेकिन मुक्ति क्या किसी के वश की बात है ?"

एकाएक मूसलाधार बारिश शुरू हो गयी । पवन तूफान के वेग से बहने लगा । घर के दरवाजे-खिडकियाँ धडधडाने लगे । जान्हवी ने उठकर कमरे की खिडकी वन्द कर सिटकनी लगा दी । नीचे के कमरो और आँगन को देखने गयी—कोई चीज-वस्तु न भीग रही हो । नीचे कमरो की खिड़कियाँ, दरवाजे बन्द थे । आँगन मे एक कुर्सी पडी थी । उसे बरामदे मे रख आई । ऊपर जब आयी तब बाबू रूपकिशोर ने कहा, "इतना भयकर तूफान और मूसलाधार बारिश ! वह भी इस ऋतु मे । विधाता का भी विचित्र हाल है । माधुरी सो गयी होगी ।"

"हाँ ।"—जान्हवी ने कहा और पति के वक्ष मे अपने को छिपा लिया । पर जो बाबू रूपकिशोर ऊपर लेटे-लेटे देख लिया था, जान्हवी ने नीचे जाकर भी नही देखा था । माधुरी सोयी नही थी । आँधी-तूफान के कारण बिजली बुझा, वह लेट गयी थी । माँ के आने की आहट पा कर उसने सो जाने का बहाना किया था ।

माधुरी माँ-बाप के लिए चिन्ता का कारण बन गई है—इसी खयाल में वह डूब-उतरा रही थी। कुमार एक मात्र युवक था जिसे वह मित्र रूप में जानती थी। कुमार के प्रति उसे अगाध श्रद्धा थी। उसे मालूम था कि श्रद्धा से ही प्रेम होता है। कुमार उसके जीवन में अचानक नहीं आया। पहली बार जब आँखें चार हों और प्रेम हो जाय—यह बात उनके बीच नहीं हुई। बचपन से दोनों का परिचय था। एक-दूसरे की निकटता थी। माधुरी के मन में कुमार के प्रति आकर्षण का बीजारोपण गहरा था। आग —प्रेम की—दोनों ओर लगती है। कुमार भी माधुरी की ओर खिंचा था, यह वह जानती थी। वर्षों तक—माधुरी ने सच ही सोचा—उनका आपस का व्यवहार भाई-बहन का-सा था। अभी ही, कुछ ही दिनों पहले—जब माधुरी एम०ए० में आयी ही थी कि एका-एक उनके दिल टकरा गये। माधुरी को वह दोहपरी याद थी—आज वह सोच रही थी कि काश, ऐसा न हुआ होता—जब वह कालेज से घर लौट रही थी। अकेली थी। रिक्शा के लिए कालेज के फाटक पर खड़ी थी। कुमार आ गया था कहीं से।

"एक प्याला चाय का तो समय है।"—कहा था उसने, जैसे उसे विश्वास था कि माधुरी उसकी बात टाल न सकेगी।

पास के रेस्टराँ में चली गई थी माधुरी कुमार के संग। बहुत देर तक तो दोनों बिलकुल चुपचाप चाय पीते रहे। फिर अचानक उस मौन को मेटते हुए कुमार ने कहा, "इस आँचल का सहारा मुझे यदि नहीं मिला, तो मेरा जीवन मौत के मानिंद होगा। सहारा तो मिलेगा ?"

माधुरी सकपका गयी थी। फिर अचानक उत्तर में उसने कहा था, "सहारे की बात तो मैं जानती नहीं। पर यह निश्चित है कि इन बलिष्ठ भुजाओं के अलावे", उसकी सुडौल भुजाओं की ओर उसने भाव गरिमा से देखा था—"और कहीं भी यह शरीर आश्रय नहीं स्वीकार करेगा।"

हाथ-में-हाथ ले लिया था कुमार ने माधुरी का उस रेस्टराँ के कक्ष में।

उसी दिन से दोनों का अज्ञात मौन प्रेम मुखर हुआ था। उस दिन से अब तक वे फिर एकान्त में कभी नहीं मिले। लेकिन चौबीसों घण्टों का एक-दूसरे

का हाल उन्हे मालूम रहता था । एक जो कुछ सोचता, दूसरा ठीक-ठीक उसे जान जाता था । एक दिन तो जादू वाली बात हो गयी । ज्योत्स्ना और माधुरी आ रही थी कि कुमार मिल गया ।

माधुरी ज्योत्स्ना से कह रही थी, "आज आलस लग रहा है ।"

"आज दहीबडे एक की जगह तीन जो खा गयी !" कुमार ने इस भाव से कहा मानो वह जानता हो कि माधुरी के घर उस दिन खाने को क्या पका था ।

माधुरी कुछ चौकी, कुछ उसकी ईर्षा जगी । उसने हैरानी से पूछा था, "अच्छा बताओ, आज मैने क्या-क्या खाया ।"

"नाश्ते का पूछ रही हो या दिन के खाने का ?"

माधुरी आश्चर्य-विभोर हो उठी थी । बोली थी, "अच्छा, खाने का बताओ !"

'आज तुमने चार फुलके, मसूर की दाल, आलू-गोभी रसेदार, परवल की भुँजिया ओर तिलकचदन का दो चम्मच भात खाया । दही बडे एक की जगह तीन खा गयी । फिर एक केला भी खाया ।"

माधुरी की हैरानी का ठिकाना नही रहा, क्योकि कुमार की बात अक्षरश सच थी । उसने पूछा, "क्या तुम ज्योतिषी हो जो इतनी सही-सही गणना कर लेते हो । और कोई सूरत तो इतनी ठीक-ठीक जानकारी की है नही ?"

"मै ज्योतिष मे, खासकर फलित मे, विश्वास नही रखता ।"

माधुरी के साथ-साथ ज्योत्स्ना भी हँस पडी थी । पर कुमार का माधुरी के प्रति कितना गहरा आकर्षण था—उस दिन ज्योत्स्ना को पहली बार पता चला ।

अद्भुत प्रतिभा से सम्पन्न था कुमार । माधुरी के मन पर उसका स्थायी और अमिट प्रभाव था । माधुरी आज सोच रही थी कि क्या उसे मालूम नही था कि महेश और ज्योत्स्ना के हृदय एक-दूसरे से बिंधे है । ज्योत्स्ना ने कभी भूल कर भी इसका आभास नही दिया था, न महेश ही की किसी बात से ऐसा सशय हुआ था । पर माधुरी के मन मे यह बात आ चुकी थी । ज्योत्स्ना और महेश के ध्यान से वह उदास हुई । माँ-बाप के दुख का कारण उसने समझा । वह जानती थी कि दोनो सम्बन्ध, [illegible] लोग थे, उसमे सम्भव

नही थे, एक ही हो सकता था चाहे यह या वह । मगर इसका अजाम !

माधुरी अपने मन की उदासी मे खोयी थी, भावलोक की निराशा मे बह रही थी जब माँ के पाँवो की आहट उसे मिली थी । अपने भावलोक को वह खोना नही चाहती थी—वह चुपचाप पडी रही । माँ देखभाल कर लौट गयी थी ।

दूसरे दिन जान्हवी ने माधुरी से कहा, "तुम लोग तो कुम्भकर्ण की तरह सो रहे थे । रात भयकर आँधी-पानी आया था । मैने उठकर तुम्हारे खिडकी-दरवाजो को बन्द किया ।"

माधुरी का मन रात मे उठे तूफान से अब भी बल खा रहा था । माँ की बात उसने चुपचाप सुन ली ।

नाश्ते पर माधुरी को कुछ खाते न देख बाबू रूपकिशोर ने पूछा, "आज व्रत है क्या ?"

माधुरी केवल काफी पी रही थी । पिता ने प्रेम से एक सेब तराशा और माधुरी को टुकडे दिये । पिता की आज्ञा पालने के लिए माधुरी ने एक-दो फाँके खा ली ।

उस दिन कालेज मे भी माधुरी अनमनी रही । ज्योत्स्ना ने पूछा भी, "आज इस कमल-से प्रफुल्ल मुख पर विषाद की रेखा क्यो ? किसी भौरे की छाया तो नही ?"

तुम हमेशा मजाक ही करती हो ।"—माधुरी ने उबल कर कहा ।

"भौरे का गुनगुन जैसे अब भी कानो मे गुजायमान है । बडा भाग्यशाली है वह भौरा जिसका ध्यान चौबीस घण्टे इस कुमुदिनी को रहता है ।"

ज्योत्स्ना से पार पाना मुश्किल समझ, बात को फेरा माधुरी ने, "कुमार कहाँ है ?"

"उनका क्लास तो दो बजे लगता है । आज वह भी लम्बा मुँह बनाये कुछ पढने की कोशिश कर रहे थे । नाश्ता भी नही किया । बडी कोशिश से सेब की एक दो फाँके मैं उन्हे खिला पाई । कल रात की आधी-पानी मे मै जब खिडकी बन्द करने उठी तो दद्दा को बरामदे की रेलिग पर खड़ा शून्य को निहारते पाया ।"

"क्या कर रहे थे उतनी रात मे बाहर खड़े होकर?"—माधुरी पूछ बैठी ।

"मैने भी पूछा था उनसे । जवाब मिला, निबिड अन्धकार देख रहा हूँ ।"

मैंने पूछा, "अन्धकार के पार कोई प्रकाश की किरण दिखायी पड रही है ?

उत्तर था, "नही ।" तभी बिजली चमकी थी, सुदूर पश्चिम अन्तरिक्ष के कोने से। रजत की उस क्षीण रेखा को दिखा कर मैंने कहा था, "वह देखो प्रकाश की किरण । मचल रही है, अँधेरे का विनाश करने के लिए ।"

"बिजली की क्षणिक द्युति होगी ज्योत्स्ना !"—माधुरी कह बैठी ।

"उसी द्युति से तो भ्रम का अन्धकार मिटता है। जीवन एक निबिड अन्धकार का प्रसार ही तो है । पर रात का अन्त जैसे अरुणिमा के प्रकाश से होता है, उसी तरह इस अन्धकार पर प्रकाश की विजय होती है । अन्धकार को स्थायी मान लेना झूठ है ।"

माधुरी खोयी-खोयी शून्य भाव से ज्योत्स्ना को देखती रही । उसने कुछ भी उत्तर में कहा नही । ज्योत्स्ना ने वातावरण की गम्भीरता को मिटाने के लिए बात को मोडा और कहा, "कल चाचा जी ने महेश के बारे मे मुझसे अचानक पूछा । मुझसे कोई उत्तर नही बन पडा । बाद मे मैने सोचा कि मुझे उत्तर देना चाहिए ।"

"क्या उत्तर देती ?"—माधुरी ने हँस कर पूछा, उसका लम्बा चेहरा सहज हो उठा । ज्योत्स्ना बोली, "जानती हो, महेश जितने ऊपर से गम्भीर बने रहते है, अन्दर से वह उतने ही चचल है ।"

"दादा का यह रूप तो मै भी नही जान पायी हूँ । तुम्हारे साथ शायद वह स्वच्छन्द हो ।"

"स्वच्छन्द तक तो गनीमत होती । उनका व्यवहार तो उच्छृखल हो जाता है । एक बार झूँसी गये थे, रेल से । रामबाग से दूसरे दर्जे मे बैठे । सयोग से डब्बे मे हम दोनो ही थे । पिकनिक के उत्साह मे हम दोनो मग्न थे । रेल जब छूटी तब हज़रत ने कहा, "रेल का सफर मुझे ऐसे अच्छा नही लगता है ।"

"कैसे अच्छा लगता है ?"—मैने पूछ कर गलती की ।

मुझे अपने सामने, जैसे गोद मे बच्चे को बिठाते है, बिठा कर दोनो हाथों से मुझे घेर कर कहा, "ऐसे ।"

माधुरी खिलखिला पडी और बोली, "सफर का अपना-अपना तरीका होता है ।"

"ट्रेन जब तक चलती रही तब तक तो मै दम साधे किसी तरह बैठी रही। लेकिन दारागज के स्टेशन पर जब गाडी रुकी और तब भी हजरत ने मुझे अलग नही होने दिया तब मै घबराई। मैंने कहा, "कोई देख ले, तब ?" जानती हो, क्या उत्तर था। हजरत ने कहा—"कोई पाप तो नही कर रहे है जो देखने से बुरा लगेगा।" और फिर हजरत मेरे शरीर की लम्बाई, चौडाई, आकार-प्रकार नापने लगे।"

"सच, यह तो अशोभन था।"—माधुरी ने कुछ गम्भीर हो कर कहा।

"नही, भाव उनके शुभ ही थे। लेकिन देखने वाले क्या समझते ?"

"तुम्हे दादा के बिना तो बडा अकेलापन अनुभव होता होगा ?"

"विशेप नही। तुम जो हो, हमेशा उनकी याद दिलाया करती हो। बस, रिक्शा मे तुम्हारे साथ बैठते समय उनकी याद भूलती नही।"

"यह क्यो"?—विस्मय भरी माधुरी ने पूछा।

"तुम्हारे दादा, गजब के शरारती इसान है। उनकी बॉहे रिकशा मे मुझे सहारा दिया करती थी। कहा करते थे कि कही गिर न जाऊँ। अब रिक्शा में बैठती हूँ तो पीठ पर किसी दस्तक की कमी महसूस होती है।"

"पीठ पर ही ?"—माधुरी ने परिहास किया।

"तुम्हारे दादा को मै बुरा आदमी नही मानती। पर ऊपर से जो पहले मैंने भी उनका स्वभाव समझा था, उससे वह बिलकुल अलग है। ऐसे, आदमी मुझे बेहद पसन्द है।"

"आदमीयत उनकी अभी से पहचान गयी ?"—व्यग किया माधुरी ने।

ज्योत्स्ना अप्रतिभ नही हुई। दोनो सखियाँ थी, बचपन से घनिष्ठ। उसन हँसकर ही कहा, "इजीनियर है न। हमेशा मेरे शरीर का नाप-जोख करते है। उस पर त्रिकोण बनाया करते है।"

माधुरी ने र मे योग दिया। पूछा, "तुम इतनी महान कवयित्री और वे एक शुष्क इजीनियर कैसे ?"

"हजरत को सीधा कर के रखूँगी, समानान्तर नही, बीच मे शून्य का भी दुराव नही होगा।"

माधुरी किसी अपने भाव मे बह गई। बात की कडी पूरा करने के लिए बोली, "उसे सुरक्षित तो रखोगी ? इतना आत्मसात् तो न कर लोगी कि 'वह' मिट ही जाय।"

"इसका विश्वास रखो। तुम्हारे दादा हजरत को हमेशा-हमेशा के लिए सुरक्षित रखूँगी।"

क्लास का घटा बज उठा। प्रसन्न मन दोनो कक्षा मे चली गयीं।

: १७ .

डेढ वर्ष की तीर्थयात्रा से बिल्वमाला लौट आयी। बाबू रूपकिशोर को आने की तिथि उन्होंने चिट्ठी मे लिख भेजी थी। चिट्ठी बहुत ही साधारण थी। उसमे बीरा की सन्तान के बारे मे कुछ नही लिखा था। लेकिन चिट्ठी मिलते ही बाबू रूपकिशोर की सोयी भावनाएँ फिर जाग उठी। बीरा की सन्तान को लेकर, अपने जीवन को लेकर, उनके मन का दारुण सशय फिर प्रकट हो आया। तपने-घुलने का क्रम फिर जारी हुआ। खोये-खोये अपनी असावधानी से चिट्ठी को कोट की जेब मे से उन्होने निकाला नही। दूसरे दिन जब कोट बदला गया तब चिट्ठी जान्हवी के हाथ लगी। चिट्ठी मे मरम-भेद कुछ नही था। लेकिन जान्हवी उसे पढ कर सहम गयी। पुराने कोट मे ही चिट्ठी को उसने रहने दिया, नया कोट तैयार नही किया, तह कर उसे शृगार-मेज पर लगा दिया। बाबू रूपकिशोर ने ही कचहरी जाने के लिए तैयार होते समय कोट बदला। चिट्ठी नये कोट मे उन्होने डाल ली। मगर उस पर, उसके महत्व पर, उनका ध्यान ही नही गया। जो दुबकी आग उनके सीने मे फिर सुलग रही थी, उससे कुछ भी सोचने-समझने की उन्हे फुरसत ही कहाँ थी ? उन्हे कोई शक-शुबहा भी नही हुआ।

बिल्वमाला को लौटे एक सप्ताह बीत गया था। लेकिन वकील स हब लूकरगज गये नही। उनके मन की आग अब सुलग कर धुआँ देने लगी थी। रात दिन, घर पर, कचहरी मे, काज-अकाज मे खोये रहते। सात दिन मे ही उनका चेहरा फिर उतर आया मानो राजरोग फिर से उभर आया हो।

जान्हवी ने देखा, कुछ-कुछ समझा, लेकिन कुछ भी कहा नही। वह अपने स्वभाव के प्रतिकूल गम्भीर हो गई थी। पत्नी के परिवर्तन को माधुरी ने लक्ष्य किया, पर पति की खोयी आँखे उस पर नही पडी।

बिल्वमाला परिणीत प्रेमी का असमजस जान कर भी इतने दिनो तक प्रेमी के न आने का दु ख सह नही पा रही थी। वह मन की ज्वाला मे जलने लगी। जव रहा नही गया, तब उसने सन्देश भेजे, वकील साहब को किसी मामले मे परामर्श के लिए घर आने का बुलावा भेजा।

बाबू रूपकिशोर ने भी जाने का ही निश्चय किया। कचहरी जाते समय उन्होंने पत्नी से कहा, "आज नेपाली रानी ने किसी मुकदमे मे परामर्श के लिए बुलाया है। शायद फिर कोई मुकदमा हो।"

"गोद लेने की वात सुनी है।"—जान्हवी न चाहते हुए भी कह गई।

पति चौक उठे और पूछा, "किससे सुना ?"

"कल पिताजी आये थे। कह रहे थे कि तीर्थयात्रा से रानी एक साल भर से कुछ ही छोटा सुन्दर बालक गोद लेकर आयी है। गोदनामे की शायद कानूनी लिखा-पढी की वात हो।". . जान्हवी ने बिना किसी विशेष भाव के बताया।

बाबू रूपकिशोर की शका प्रबल हो उठी। जानना चाहते थे कि जान्हवी या उसके पिता की जानकारी किस हद तक है। लेकिन पूछ नही सके। घर से चलने लगे तब फिर बोले, "वहाँ शायद कुछ देर हो जाय।"

जान्हवी भर आई। पर चुप रही। माधुरी ने माँ का भाव देखकर कहा,, "पिताजी, जल्दी आइयेगा, खाना यही खाइयेगा।"

पान की गिलौरियाँ मुँह मे दबा कर बाबू रूपकिशोर कचहरी के लिए प्रस्थान कर गये। जाते समय छिपी नजरो से उन्होने पत्नी के चेहरे का भाव विशेष रूप से देखा।

कचहरी के रास्ते भर वह यही सोचते रहे कि क्या जान्हवी पर बिल्वमाला का भेद प्रकट हो गया है और यदि हाँ तो कहाँ तक इस बारे मे उसकी जानकारी है। जान्हवी इन दिनो कुछ उखडी-उखडी है, बाबू रूपकिशोर को पहली बार यह सन्देह हुआ कि जान्हवी का उखडा स्वभाव उनको लेकर है। क्या होगा, उन्होने सोचा, अगर जान्हवी को उनके सच्चे रूप का ज्ञान हो गया ? जान्हवी, अपनी पत्नी को वे जानते थे। उसकी, उनका सच्चा रूप जानकर क्या दशा होगी, वह क्या कर बैठे —इसका अनुमान लगाना ही उनको पागल कर देने के लिए काफी था। फिर कितना वे सबकी नजरो मे गिर जायेंगे, कहाँ उनको जीवन की धारा खीच लाई—सोच-सोच कर बाबू रूपकिशोर के मन की जलन और बढी। साथ ही अपने ऊपर उन्हे घोर लज्जा का बोध हुआ। आज अपनी नजर में वे स्वय गिर रहे थे। रास्ते भर वे अपना मुँह छिपाते रहे कि कोई परिचित, मित्र उन्हें देख न ले।

अपनी निराशा की लहर मे पूरी तरह डूब चुके थे बाबू रूपकिशोर, जब वे कचहरी पहुँचे। पर कचहरी मे एक भाव उनके मन में आया जिसने उन्हें थोडा सँभाल लिया। अपनी आराम कुर्सी पर लेटे वे सोच रहे थे कि जान्हवी को कुछ भी जानने की सम्भावना ही नही। गोद लेने की बात शायद बाज़ार मे उसके पिता को मालूम हो गयी हो और उन्होने अकारण जान्हवी से कह दिया हो। रानी धनी-मानी थी, बाजार मे व्यवसायियो में उसका लेन-देन था, वह बाबू रूपकिशोर की मुवक्किल भी रह चुकी थी—इसलिए पिता का रानी की गोद लेने की बात पुत्री को बताना स्वाभाविक ही था।

मन के इस भाव पर उन्हे विश्वास हो आया। लेकिन उनके हृदय से शका पूरी तरह मिटी नही। मन की, बीरा की सन्तान को लेकर जो दावा थी, वह धधकने को आयी। फिर जलने लगे बाबू रूपकिशोर अपनी चिन्ता-ज्वाला मे। तब तक मुशी जी ने आकर बताया कि कोई मुकदमा पेश है।

"अरविन्द को देख लेने को कह दे।"—कह कर वे फिर डूबने—उतराने लगे।

राजा रमणीमोहन और ठाकुर बल्देव सिंह आ गये। "हल्लो, बाबू रूपकिशोर।" राजा साहब ने आदर के साथ प्रेम-भाव से पूछा, "कुशल मगल तो है ?"

"क्या कुशल, क्या मगल, बस साँसो का ताना-बाना है, राजा साहब !"

राजा रमणीमोहन बाबू रूपकिशोर का उखड़ा हुआ उत्तर सुन कर चकित हुए बिना नही रह सके। एक कुर्सी पर ठाकुर बलदेव सिह को बैठने का इशारा कर, स्वय बैठते हुए बोले, "स्वास्थ्य तो ठीक है, वकील साहब ! आज कुछ उखडे-उखडे लग रहे है।"

इस बार जो बाबू रूपकिशोर के मुँह से शब्द निकले, वे न औपचारिक व्यवहार के शब्द थे, न परिचय-प्रेम के। बाबू रूपकिशोर ने तरन्नुम से महाकवि गालिब का एक मिसरा गुनगुनाया——

"गमे-हस्ती का असद और क्या जुज-मर्गे इलाज।"

राजा रमणीमोहन की हैरानी का अन्त नही रहा। क्या हो गया है बाबू रूपकिशोर को——उन्होने समझना चाहा। इतने उल्लास या साँसत मे वकील साहब को उन्होने कभी देखा नही था। वकील साहब का मन अपनी ओर फेरने के लिए उन्होने फिर पूछा, "बाबू रूपकिशोर, आज बड़ी फुरसत से बैठे है। शायद आज कोई आपका मुकदमा नही ?"

लेकिन वकील साहब या तो गुनगुना रहे थे या सवाल के जवाब मे गुनगुना उठे, "जिमि दशनन महँ जीभ बिचारी।"

राजा रमणीमोहन ने आश्चर्य से आँखें फाड-फाड कर वकील साहब की ओर देखा। बाबू रूपकिशोर का दिमाग तो सही सलामत है, यह शका मन में उठी।

ठाकुर बलदेव सिंह भी बाबू रूपकिशोर के विचित्र व्यवहार पर हक्का-बक्का थे। वे घोर परेशानी मे राजा साहब की सहायता से बाबू रूपकिशोर को अपने मुकदमे मे वकील करने आये थे। उन्होने राजा साहब की आँखो मे कुछ इशारा किया। राजा साहब ने सहमे-सहमे ठाकुर साहब के प्रति अपनी मित्रता का कर्त्तव्य निभाने के लिए वकील साहब से कहना शुरू किया, "ये मेरे मित्र ठाकुर साहब घोर संकट में पड गये है..." बात काट कर वकील साहब बीच मे बोल उठे, "कौन सकट में नही है ?"

राजा रमणीमोहन के मन मे अब कोई शक नही रहा कि बावू रूपकिशोर का दिमाग आज ठिकाने नही। लेकिन अपनी बात पूरी करते हुए उन्होंने कहा, "ठाकुर साहब की ओर से मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप इनकी हर सम्भव सहायता जरूर करे ।"

साथ ही वे उठे, खडे हुए और चलने की आज्ञा माँगी ।

वाबू रूपकिशोर ने तब स्वस्थ स्वर मे कहा, "राजा साहब, पान तो खाते जायँ ।"

"अभी तक घास-पात खाने की मेरी प्रवृत्ति जगी नही । अब आज्ञा दे ।"—कहकर राजा साहब ने वकील साहब से हाथ मिलाया और आश्चर्य-विभोर चलते वने ।

ठाकुर बलदेव सिह गोला के कभी ताल्लुकेदार थे । वकील साहब से पुराना परिचय था । लेकिन उनको वकील करने का मतलब काफी फीस देने की क्षमता थी जो जमीदारी खतम होने के वाद उनकी बिसात नही थी । राजा रमणीमोहन की शिफारिश की इसीलिए उन्हे जरूरत पडी ।

ठाकुर साहब के एकमात्र सुपुत्र कुँवर साहब गिरफ्तार कर लिए गये थे । रियासत के कुँवर साहब भावी मालिक थे । उनका विवाह उडीसा के एक राज की राजकुमारी से हुआ था । ऊँचे शिक्षित थे और जमीदारी-समाप्ति के बाद से ही वे व्यवसाय कर रहे थे । व्यवसाय अब लाखो का हो चला था। उनके एक पुत्र भी था । घर मे एक किशोरी दासी थी । उससे उनका सम्बन्ध हो गया। दासी को गर्भ रह गया । उसका विवाह करने की उन्होंने कोशिश की । लेकिन उसकी शारीरिक हालत बढ गयी थी । भेद खुल गया और उसका विवाह हो नही सका । कुँवर साहब ने एक दिन दासी का विवाह न करा पाने की असफलता का वदला लेने के लिए उसे मौत के घाट उतार दिया । पुलिस से वचने के लिए रातोरात उसका शरीर दूर की एक नदी की रेती मे गाड आये । फिर दो महीने के वाद पुलिस ने उसके शरीर की हड्डियाँ नदी में से खोद निकाली। कुँवर साहब गिरफ्तार कर लिये गए । मैजिस्ट्रेट के यहाँ से जमानत अस्वीकृत हो गयी । सेशन से जमानत कराना था । बाबू रूपकिशोर से ठाकुर साहब ने हाथ जोड कर

निवेदन किया कि वे उनके कुल के दीपक को बचा ले। ठाकुर साहब ने बताया, "वशवृक्ष बडा पुराना है, पुरुषो तक की प्रतिष्ठा का सवाल है।"

बाबू रूपकिशोर तब तक आश्वस्त हो चुके थे। इधर-उधर की बात न कर उन्होने पूछा, "किसी ने लाश ले जाते या फेकते देखा था ?"

"जहाँ तक मेरा अनुमान है, किसी ने नही देखा। एक विश्वस्त नौकर साथ जरूर था। लेकिन उस पर हमारा सोलह आने भरोसा है।"

"यदि ऐसा है तो जमानत मे गुजाइश है।"—कह कर मैजिस्ट्रेट के जमानत अस्वीकार करने के फैसले को बाबू रूपकिशोर पढ गये। फैसला पढने के बाद उन्होने कहा, "वकालतनामा भर दीजिये। आवेदन-पत्र आज ही जज के यहाँ पेश हो जायगा। इसका फैसला भी अगर आज नही हुआ, तो कल हो ही जायगा।"

"वकील साहब, आज ही कराइये।"—ठाकुर के सीने का पिता कराह कर बोल पडा।

मुशी जी आ गये और ठाकुर साहब को अपने कमरे मे ले गये। मुशी जी ने बताया, "जमानत कराने की फीस हजार रुपये होगी। शुकराना आपकी अपनी मर्जी। मुकदमे की बात फिर होगी।"

"मेरी हालत अब पहले जैसी नही।"—ठाकुर साहब फीस की रकम सुन कर घोर दुश्चिन्ता मे पडे। राजा रमणीमोहन को वे इसीलिए साथ लाये थे। मुशी जी ने उनका भाव ताड कर कहा, "आप वकील साहब से मिले।"

ठाकुर साहब ने वकील साहब के यहाँ आकर फीस की रकम की प्रार्थना की।

बाबू रूपकिशोर फिर किसी चिन्ता मे लीन थे। ठाकुर साहब के दिल से उठे शब्द उनके मन से टकरा गये। उन्होने कहा, "ठाकुर साहब, फीस तो मै उससे कम नही लेता। लेकिन मै आपका काम बिना किसी फीस के ही करूँगा।"

"नही सरकार, यह मशा नही है।"—ठाकुर साहब का दर्प दान की याचना बर्दाश्त नही कर सका।

"फीस मे कमी नही होगी, ठाकुर साहब! आप एक बजे जज की अदालत में मिले। वकालतनामा भर कर मुशी जी को दे दे।"—कह कर, वकील साहब कागज-पत्र देखने लगे।

एक बजे जज की अदालत में बाबू रूपकिशोर ने जोरदार बहस की, कुँवर साहब की जमानत के लिए। वर्षों बाद उतने हार्दिक उत्साह से बाबू रूपकिशोर ने बहस की——सबका यही कहना था। जमानत स्वीकार हो गयी।

कचहरी के कमरे में अरविन्द ने मुंशी जी से कहा, "आज की बहस बेमिसाल थी। जैसे अपने पर बीती हो, उस आवेश में वकील साहब बोल रहे थे।"

मुंशी जी बोल पड़े, "प्रतिभा इसी को कहते हैं। संगीन मुकदमों में इसी भावना से सफलता मिलती है और शायद आपको मालूम नहीं कि वकील साहब ने एक पैसा भी फीस नहीं ली।"

"सच !"——अरविन्द की आँखों में एक नया उल्लास छा गया।

अपने कमरे में चाय पीते हुए बाबू रूपकिशोर सोच रहे थे कि क्या ठाकुर का लड़का अपनी दासी से प्रेम करता था ? शारीरिक सम्बन्ध से भी तो प्रेम उत्पन्न हो जाता है। मनुष्य अपने व्यवहार का संतुलन खो जाने पर दुःखी होता है। एक मानव शरीर को मार कर नदी की रेती में गाड़ दिया——जैसे उसका कोई मूल्य ही नहीं। कितना जघन्य कृत्य किया ठाकुर के लड़के ने। पत्नी से डर गया होगा, सोचा उन्होंने, या दासी की किसी बात से उत्तेजित हो गया होगा।

दासी की घटना से बीरा आ नाची उनके नयनों में। क्या वे बीरा और धीरा से प्रेम करते हैं ?——अपने से पूछ बैठे।

धीरा को वे पसन्द करते हैं, कभी-कभी की सेवा के लिए। लेकिन बीरा ने तो उनको मोह लिया है, उससे उन्हें प्रेम है।——उन्हें उत्तर मिला मन की गहराई से।

तो क्या वे बीरा को बिल्वमाला और जान्हवी से भी अधिक प्रेम करते हैं ?

इस सवाल का जवाब आसान नहीं था। उन्होंने सोचा, "जान्हवी का अपना स्थान है, बिल्वमाला का अपना आकर्षण है और बीरा तो ऐसी है जो जीवन में किसी समय, कहीं भी ग्राह्य है।' प्रेमियों के प्रेम-तीर्थ ताजमहल की मुमताज बेगम का ध्यान आया। छठी या सातवीं बेगम थी मुमताज सम्राट की। लेकिन उसके प्रति बादशाह के प्रेम का अलौकिक आश्चर्य-भाव विश्व की अनमोल विभूति ताज-महल, आज भी जमुना के किनारे उनके पवित्र प्रेम की याद दिला रहा है। क्या

वादशाह का दूसरी बेगमो से प्रेम नही था ? क्या वे केवल भोग्या थी ? क्या सम्राट का हृदय केवल मुमताज को मिला था ?' प्रश्नो की आँधी उनके मन मे उठ आई और वे सोचने लगे कि क्या एक ही साथ कई स्त्रियो से प्रेम सम्भव है ? और प्रेम है क्या चीज ? मात्र शरीर का आकर्षण या उससे भी ऊपर की कोई भावना, जो शरीर के साथ-साथ आत्मा को भी झकझोर दे।

बाबू रूपकिशोर के मन की आँधी का वेग जब कम हुआ तब उन्हे ऐसा लगा कि दिशाएँ मौन भाषा मे चीत्कार कर कह रही है कि उनका स्वय का जीवन अनैतिक है, पापाचार है। नही, नही, उनकी बुद्धि ने कहना चाहा। अगर उनका जीवन अनैतिक है तो अपने चारो आकर्षण बिन्दु पर वे बेतरह खिचते क्यो है ? प्रत्येक के आकर्षण मे इतनी सचाई क्यो है ? प्रश्न का उत्तर मन ने भी नही दिया। एक नितात अस्पष्ट भाव की छाया मन और दिमाग को वेध गयी।

जैसे चिता की जली हुई लकडी लहरो के थपेडो मे डूबती-उतराती बहती रहती है, उसी तरह बाबू रूपकिशोर अपने मन के धुँधलके के वेग मे बह चले।

लूकरगज जायँ या न जायँ, यह भी सवाल उठा। लेकिन घोर असमजस की पीडा मे वे लूकरगज पहुँच ही गये।

बिल्वमाला ने प्रेम के आँसुओ से चरण पखार लिया। बोली, "आ गये आप !"

पलँग के पास ही चाँदी के पालने मे शिशु झूल रहा था। बाबू रूपकिशोर की आँखे शिशु पर टिक गयी। सुन्दर, सुडौल, स्वस्थ शिशु की आकृति ठीक महेश के बचपन जैसी थी। एक मिनट तक बाबू रूपकिशोर की आँखे शिशु पर टिकी रही।

शिशु एक अजनबी को पास देख कर हाथ-पाँव चलाने लगा। बिल्वमाला बोल उठी, "तुम्हारी गोद मे आने के लिए ललक रहा है। उसे आशीर्वाद दे दो।" और शिशु को उठाकर बाबू रूपकिशोर की गोदी मे सावधानी से रख दिया। शिशु बाबू रूपकिशोर के मुँह की ओर टुकुर-टुकुर ताकने लगा, उसके हाथ-पाँवो की हरकत बन्द हो गयी।

"कितना सुखी है तुम्हारे पास।"—बिल्वमाला ने कहा,"जब पैदा हुआ था, एक विद्वान पडित जी आये थे। गणना कर उन्होने बताया कि किसी महान पुरुष का बेटा है और महान ही होगा अपने जीवन मे। परिवार का, दे- ा ा गौन्व बनेगा। उसी दिन मैने इसे गोद लेने का निश्चय कर लिया।

भगवान रामेश्वर नाथ के चरणो पर शिशु को रख कर मैने प्रतिज्ञा की, कि यह बिल्वमाला का बेटा है—उसकी सम्पत्ति का वारिस।"

बाबू रूपकिशोर चुपचाप सुनते रहे। शिशु उनके पाप का फल था या प्रेम का—इस उधेड-बुन मे वह मन-ही-मन पडे थे। बिल्वमाला ने बाबू रूपकिशोर के मुँह की ओर गौर से देखा मानो उनके मन का भाव समझ रही थी। प्रेमी के चेहरे पर विषाद की एक स्थायी रेखा उसे दिखायी पडी। शरीर भी कृश हो गया था। वृद्धावस्था शरीर मे साफ-साफ झलक रही थी। मन-ही-मन वह बाबू रूपकिशोर की हालत पर कॉप उठी। उनका मन ही नही, तन भी जर्जर हो रहा है, यह देख आश्वासन दिलाते हुए उसने कहा, "चिन्तित हो ? इसको लेकर। मैने सबको बता दिया है कि मेरी रिश्तेदारी का बालक है। इसे इसकी मॉ से मैने गोद लेने के लिए मॉग लिया है। मॉ मेरी मौसेरी बहन लगती है, राजपरिवार की है। उन्होने प्रसन्न मन, मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली।"

बाबू रूपकिशोर को प्रसन्न होना चाहिए था यह निराकरण सुन कर। पर चेहरे पर ऐसा कोई भाव नही आया। उन्होने अन्यमनस्क भाव से पूछा, "अच्छी तरह तो रही ?"

"तुम्हारा आशीर्वाद रहा। जब से शिशु आया, आने को जी तडप रहा था, पर अच्छा ही किया जो समय बिता कर आयी। लेकिन तुम्हे क्या हो गया है ? मैने कौन सा पाप किया है जिसका भगवान मुझे यह फल दे रहा है!"—बिल्वमाला की आँखो के वन्द ऑसू छलक पडे।

"नही, नही, आपको मन जीतना ही पडेगा। कोई चिन्ता नही, किसी प्रकार की नही। सब ठीक है, और ठीक ही होगा।"—बिल्वमाला रो पडी।

बिल्वमाला भर आयी थी। उसका उद्वेग दबाने के लिए बाबू रूपकिशोर ने प्रसंग बदलते हुए पूछा, "इसकी मॉ के क्या हाल-चाल है ?"

"इसकी माँ मैं हूँ, एक मात्र मैं, दान देने वाली माँ अलास्का चली गई। कभी लौट कर नही आयेगी। उसके कई बच्चे है। भगवान रामेश्वरनाथ की मैने पवित्र सौगन्ध ली थी कि इसकी एकमात्र माँ मै हूँ।"—बालक को वकील साहब की गोद से लेकर बिल्वमाला ने छाती से चिपका लिया।

बाबू रूपकिशोर हँस पडे और बोले, "बात तो सच ही कह रही हो, लेकिन . . .

बात काट कर बिल्वमाला चमक कर बोली, "मै ही हूँ इसकी माँ। तुम यह क्यो नही समझ पाते ? मैने ही इसकी पीडा-व्यथा को झेला। किन-किन कष्टो मे इसने मुझे नही डाला। वह तो साथ मे इसकी दासी थी, नही तो . . ."

दासी आ गई। बाबू रूपकिशोर के चरणो मे शीश नवा कर बालक को उसने बिल्वमाला की गोद से ले लिया।

बाबू रूपकिशोर बीरा की ओर देखते रहे। रूप-लता निखर गयी थी, मातृत्व की आभा कमनीय काति से फूट रही थी। प्रगल्भता का स्थान गम्भीर सुषमा ने ले लिया था। सब मिल कर व्यक्तित्व पहले से कही अधिक मनोहारी हो उठा था। उनकी इच्छा हुई कि उसे अपने मे समेट ले। रनिवास की मर्यादा से ऐसा वे कर न सके।

चाय पीते समय बिल्वमाला ने कहा, "बालक को तो भगवान को साक्षी देकर उन्ही के दरबार मे गोद मे ले चुकी हूँ। परन्तु उसका सस्कार भी विधिवत् पूरा हो जाना चाहिए जिससे आगे चल कर कोई कठिनाई न हो।"

"शुभ दिन, साइत, सस्कार तो पुरोहित का काम है।"

"कानूनी सम्मति भी तो जरूरी है। उसके लिए पारिश्रमिक भी मिलेगा।"—बिल्वमाला ने परिहास करना चाहा।

"पारिश्रमिक तो कभी का मिल गया है। वकील जब राय देता है तो सही राय देता है। अभी आगा-पीछा बहुत सोचना है। मान लो कल तुम्हारी कोख से ही सन्तान पैदा हो जाय तब ?"

"सब सोच लिया है। यह भी तो मेरा है। मेरे पति का है तो क्या मेरा नही हुआ ?"

बाबू रूपकिशोर की गम्भीरता बिलकुल लुप्त हो गयी। विनोद-भाव से हँसकर उन्होंने पूछा, "तुम्हारे कितने बच्चे हैं, इस तरह ?"

"भगवान पशुपतिनाथ की कृपा है। इसको लेकर कुल पाँच हैं। चार बहन जी के भाग के हैं, एक मेरे।

थोड़ी देर बाद फिर बोली, "अब इस सवाल को सोचने-समझने का कुछ भी बाकी नहीं। कानून के दाँव से सब समझ-बूझ लीजिये जिससे भविष्य के लिए कोई खटका न रहे।"

बीरा चाँदी के कटोरे में बालक के लिए दूध लेकर आयी। बिल्वमाला ने स्वयं दूध पिलाया। उसके मुख पर मातृत्व की भावना निर्बाध प्रकट हो रही थी।

चाय का बर्तन उठाने धीरा आई और खड़ी रही चुपचाप।

"क्या है, धीरा ?"—बिल्वमाला ने पूछा।

वह कुछ बोली नहीं। पूर्ववत खड़ी रही।

"बोल न !"—बिल्वमाला समझ नहीं सकी।

"राजकुमार भैया, पहले-पहल पिता के पास आये हैं।"

"ओ हाँ, समझी, मैं भूल ही गयी थी।"—बाबू रूपकिशोर से बिल्वमाला ने कहा, "इसे नेग चाहिए, जो चाहो दे दो।"

बीरा भी पीछे आकर खड़ी हो गई थी। बिल्वमाला ने कहा, "दोनों को।"

बाबू रूपकिशोर चुप बैठे रहे।

बिल्वमाला ने कहा, "क्यों चाभी नहीं लाये ? तिजोरी से जो चाहो, दे दो।"

बाबू रूपकिशोर को चाभियों का ध्यान आया। पास ही थीं। बिल्वमाला को निकाल कर उन्होंने गुच्छा दे देना चाहा। लेकिन बिल्वमाला ने कहा, "पहले बालक को छुआ कर इन्हें चिह्न दे दो।"

बाबू रूपकिशोर को तिजोरी खोलनी ही पड़ी। सामने जो डब्बा पड़ा था, वही उठा लिया। उसमें सोने के रत्न-जटित कंगन थे। एक-एक दोनों को उन्होंने दिया और चाभी बिल्वमाला के हवाले की।

दोनों चली गयीं। शिशु के साथ बीरा का ठीक दासी जैसा व्यवहार देखकर

बाबू रूपकिशोर रनिवास के अनुशासन और उत्तराधिकार की लालसा पर सोचते रहे ।

बिल्वमाला ने कहा, "स्नान कर लो । खाना क्या खाओगे ?"

"खाना तो आज नही खा सकूँगा ।"

"क्यो ?"

"जल्दी वापस पहुँचना है ।"

"बहन जी का हुक्म होगा ! गोद-सस्कार मे उन्हे भी तो आना पडेगा, मैं स्वय जाकर निमन्त्रित करूँगी ।"

"क्या कहती हो ?"—चौक गये बाबू रूपकिशोर ।

"क्यो, वे बडी है । उनकी चरणधूलि के यहाँ बिना पडे, समारोह पूरा कैसे होगा ? मुझे उनके चरण पखारने की कितनी लालसा है, तुम यह समझ नही सकते ।"

थोडी ही देर बाद फिर बोली, "अब उनके आने मे कोई भय की बात नही । तुम निरापद हो ।"

नयी विपत्ति की कल्पना से ही बाबू रूपकिशोर का मन कराह उठा । पीडा के वेग को दबा कर उन्होने कहा, "स्नान करूँगा ।"

"मै स्वय स्नान तैयार करूँगी । मैसूर मे हमारी रिश्तेदार एक महारानी ने एक पत्ता दिया । उससे जल गमक उठता है । सुना, उसमे कायाकल्प की भी शक्ति है ।"

बाबू रूपकिशोर अपनी पीडा मे भी हँस कर बोले, "इस बुड्ढे को अब बालक बना कर क्या करोगी ?"

"हाँ देखती हूँ कि डेढ ही साल मे तुम वृद्ध लगने लगे । कितने कमजोर हो गये हो । चेहरे पर झुर्रियाँ उभर चली है । क्या बडी चिन्ता मे पड गये थे । लेकिन अब तो चिन्ता का कारण नही रहा ।"

बिल्वमाला ने स्नान तैयार कराया । टब मे महारानी वाला पत्ता छोडा । सचमुच ही उसकी मोहक सुबास से बाहर वाला कमरा भी भर गया ।

बाबू रूपकिशोर स्नान करने टब मे घुसे । शीतल सुगन्धित जल ने मन को काफी हल्का कर दिया । जब बाहर निकले तो बाबू रूपकिशोर को नयी ताज़गी

का अनुभव हुआ। विल्वमाला को बाहो मे भर प्रेम-चिह्नो की भरमार कर दी उन्होने। विल्वमाला की साँस घुटने लगी। तब बोली, "क्या कर रहे हो ?"

"कायाकल्प जो तुमने कर दिया।"

शृगार-कक्ष मे बालो मे कघी करते समय उन्होने देखा कि दाहिने कान के ऊपर काफी बाल सफेद हो गये है। वृद्धावस्था आ चुकी, कायाकल्प की आवश्यकता थी। विल्वमाला को बुलाकर कानो के ऊपर के सफेद बालो को दिखाया।

विल्वमाला ने लेकिन कहा, "आजकल के तो दुधमुहे बच्चो के बाल सफेद हो जाते है। ऐसा मत सोचो। एक,दो, नही—चार का जीवन तुमसे लिपटा पडा है।"

"वास्तव मे तो केवल एक का—वह एक यह है।"—विल्वमाला को खीच कर बाबू रूपकिशोर ने पुन अपने अक मे भर लिया। परिणीत प्रेमी का प्रेम-पूर्ण अभिनदन पा मादकता सरस हो उठी और बिल्वमाला ने अपनी बाहो का हार प्रेमी के गले मे डाल अपने नयन मूँद लिये।

बीरा बच्चे को घुमा कर जब कमरे मे आयी तब उसकी आहट से उनकी तन्द्रा टूटी। विल्वमाला ने लाज-भरे शब्दो मे कहा, "तुम जादूगर हो। बेसुध कर देते हो।" और फिर बाहर चली गयी।

बाबू रूपकिशोर भी बाहर आ बैठे।

शिशु को गोद मे ले लिया बाबू रूपकिशोर ने। गौर से उसे देखते रहे। ठीक महेश के बचपन की सी उसकी शकल थी। हूबहू एक, कोई अन्तर नही। "मेरा बेटा, मेरा बेटा", कहने के लिए उनका हृदय मचलने लगा। लेकिन शब्द जीभ से निकले नही, —शिशु को उन्होने प्यार-पुलक से चूम लिया।

विल्वमाला बोल पडी, "खून बोल ही उठता है। अच्छा मैं भी स्नान कर आऊँ। तब तक जाना मत।"

"क्यो बिना खाये-पीये जायेगे, इतनी जल्दी क्यो ?"—बीरा के मुँह से निकल गया। विल्वमाला हँस कर बोली, "बहन जी का हुक्म है, जल्दी घर आने का। ले, तूने जी भर देख तो लिया। रामेश्वरम् मे कहा करती थी कि एक बार दिखायी भर पड जायँ।"

बीरा लाज मे डूब गई—बिल्वमाला स्नान करने गयी ।

बीरा बच्चे को पालने मे झुला रही थी । बाबू रूपकिशोर ने पूछा, "क्या कर रही हो ?"

"राजकुमार भैया को झुला रही हूँ ।"—अनियारे नयनो को ऊपर उठा बाबू रूपकिशोर को क्षण भर निर्निमेष देख कर उसने कहा ।

"कोई राजा साहब भी तो झूलना चाहते है । कितने अरमान पाल रहे है ।"

"पाला करे ।", फिर बीरा ने अनिमेष देखा ।

चितवन का अप्रकट बाण, बाबू रूपकिशोर सह न सके । बीरा के पास आकर उसे कलेजे से चिपटा कर बोले, "बीरा, मेरे बच्चे की माँ ।" बीरा लेकिन सकोच से भर दूर हट कर बोली, "क्या कर रहे है ?—राजकुमार भैया देख रहे है ।"

बाबू रूपकिशोर भी स्तभित हो अपने स्थान पर जा बैठे ।

बिल्वमाला जब स्नान कर बाहर आई तब बाबू रूपकिशोर ने चलना चाहा । बिल्वमाला के आदेश से भगवान रामेश्वरनाथ का प्रसाद गाडी मे रखा गया । एक ताम्रपत्र पर सिन्दूर रखा था । बिल्वमाला ने बताया कि वह महावीर जी के मदिर का सिन्दूर है । बहन जी की माँग मे स्वय उनसे लगाने के लिए उसने अनुरोध किया ।

बाबू रूपकिशोर जब लूकरगज से बाहर आये, तो शिशु का पालने मे खेलता हुआ रूप उनकी आँखो मे छाया हुआ था । घर पहुँच कर पहले गोल कमरे मे जाकर उन्होने चित्रो का अलबम देखा । महेश का बचपन का स्वरूप ठीक शिशु जैसा था । बहुत देर तक उन्होने महेश के चित्र को देखा । हूबहू एक, कही कोई फर्क नही ।"

जान्हवी को प्रसाद देते हुए उन्होने बताया, "रानी ने भगवान रामेश्वरनाथ का प्रसाद भेजा है ।"

जान्हवी ने हाथ जोडकर प्रसाद की टोकरी मे से एक पेड़ा उठा अपने सिर से लगा लिया और खाया ।

बाबू रूपकिशोर ने कहा, "टोकरी मे ताम्रपत्र मे रामेश्वरम् के महावीर जी का सिन्दूर है । अपने कमरे मे रख लेना ।"

"सुरक्षित रहेगा।"

"अच्छा।"

पति के चेहरे पर व्याप्त उल्लास की ताज़गी को जान्हवी ने गम्भीर नेत्रों से देखा। तब कुछ भी नहीं कहा। लेकिन रात को सोते समय बोली, "आज बरसों बाद आप इतने प्रसन्न हैं।"

"वह ताम्रपत्र कहाँ है?"—बाबू रूपकिशोर लेट गये थे। उठकर ताम्रपत्र उठा लाये। सिन्दूर अपने हाथ से उन्होंने जान्हवी की माँग में भर दिया।

जान्हवी कुछ कहना चाहती थी, कह न सकी। थोड़ी देर चुपचाप पड़ी रही। फिर जब चुप नहीं रहा जा सका तब बोली, "आज सुना, जमानत में तुमने अद्भुत बहस की।"

"किसने बताया?"

"मुंशी जी बच्चों से कह रहे थे कि इतनी ओजस्वी बहस वकील साहब ने पहले कभी नहीं की। ऐसा लगता था मानो उनकी आत्मा से तर्क निकल रहे हों।"

बाबू रूपकिशोर एक बार सिहर उठे। फिर बोले, "आज वकालत में परमार्थ किया। पहली बार बिना फीस लिये गोला के ठाकुर का काम किया।"

"राजा रमणीमोहन आकर हज़ार रुपया दे गये हैं। मैंने लौटा दिया था, पर वे माने नहीं। बहुत देर तक इन्तजार करते रहे।"

बाबू रूपकिशोर ने शायद सुना नहीं। उनका मन अचानक ठाकुर के कुँवर के कृत्य को सोचने लगा। जान्हवी पति के भाव को देख नहीं सकी। वे कहती गयीं, "कितना निर्मम है उस ठाकुर का लड़का। जिस दासी से प्रेम करता था, उसी को मुर्गी-बकरी की तरह मार डाला।"

बाबू रूपकिशोर ने पत्नी की उक्ति को सुना नहीं। उन्हें दारुण पीड़ा ने घर दबाया जिससे त्राण पाने के लिए उन्होंने जान्हवी को जोर से अपने में चिपटा लिया—जैसे बिना किसी सहारे के उनका दिल ही फूट पड़ेगा।

: १८ :

बिल्वमाला ने परिणीत प्रेमी के मन की शान्ति के लिए शिशु को गोद लेने का निश्चय किया था या उनके प्रेम के वशीभूत होकर, लेकिन इस निदान से बाबू रूपकिशोर को शाति नही मिली। बिल्वमाला के लौटने के बाद तो जैसे उनके हृदय की सुलगती आग मे घी की धार पड गयी। आग भभक उठी और बाबू रूप-किशोर जलने लगे। रह-रह कर वे सोचते कि कितना घोर पाप उन्होने अपने जीवन मे किया ? कभी-कभी तो वह सोचते कि उन्हे जीवित रहने का कोई अधि-कार नही। आशका से वे भर उठते यह सोच कर कि जिस किसी दिन भी उनका असली रूप प्रकट हो जायगा, वह कैसे किसी को मुँह दिखा सकेंगे। सत्य के प्रकट होने के असख्य रास्ते है यह वे एक अनुभवी वकील के नाते भली प्रकार जानते थे। एक दिन क्या होगा—इसकी आशका उनके अपराधी मन की जलन मे समिधा का काम देने लगी। साथ ही उन्हे जान्हवी का व्यवहार भी अब पहले जैसा स्वाभा-विक नही लग रहा था। जान्हवी पति का सब काम नियमित ही करती जा रही थी। पति को प्रसन्न रखने की ही हमेशा चेष्टा करती थी, लेकिन उसके मुखमण्डल की रेखाएँ उसकी असावधानी के क्षणो मे उसके अतर की पीडा को छिपा नही पाती थी। बाबू रूपकिशोर को अपने घर की फुलवारी, उसकी सुख-शाति, झुलसती-सूखती दिखायी पडने लगी। अकारण क्या से क्या उनकी दशा हो गयी—इसी दु ख से वह पिघलने लगे।

इन्ही दिनो झूँसी के स्वामीजी का नगर मे कीर्तन था। बाबू रूपकिशोर भी सपरिवार वहाँ निमत्रित हुए।

कीर्तन समाप्त होने पर स्वामी जी का राम-नाम की महिमा पर प्रवचन हुआ। स्वामी जी ने बताया कि कलियुग मे पापो से छुटकारा पाने के लिए नाम-सकीर्तन ही एकमात्र उपाय है। सब कुछ छोडकर राम-नाम की शरण मे जाना ही मोक्ष प्राप्त करने का साधन है। राम मे जो रमा, उसी को जीवन का सच्चा आनन्द—तत्त्वबोध—मिला।

"पर महाराज, जब राम ही सबका प्रेरक है तो जीवन मे दुःख का इतना जाल क्यों ?"—किसी ने सवाल किया ।

बाबू रूपकिशोर ने भी पूछा, "इस मकडी के जाले मे मक्खी की तरह हम फँसे है । चाह कर भी उससे निकल नही पाते । आपका तो कहना है कि माया भी उसी प्रेरक शक्ति की सृष्टि है । फिर मनुष्य तो विवश है । वह तो यत्र-चालित है । वह कर ही क्या सकता है ?"

स्वामी जी ने शका का समाधान किया, "यह सब उसी का खेल है । मनुष्य स्वय कुछ भी करने मे असमर्थ है । बालक को लीजिए । पिता समझता है कि उसके कारण वह बालक ससार मे आया, उसको प्रयत्न से पालता-पोसता है और आदमी बनाता है। लेकिन एक दिन जब बालक 'नही' हो जाय तो उसे क्या ससार मे फिर वह वापस लाया जा सकता है ? यदि नही तो उसी परमशक्ति की आराधना मे ही सुख का सृजन है जिसने उस बालक को 'हॉ' किया और 'नही' किया । माया मन का मोह है । मन वश मे करते ही मोह छूट जाता है । फिर ससार के रगमच पर जिस-जिस को जो-जो भूमिका अदा करनी है, वह कुशलता से, धर्म से, अदा कर सकेगा ।"

'यह मन ही तो हर दुराग्रह की जड है ।"—किसी ने कहा ।

"हॉ, इसीलिए मन से सोचो तो सुख है और मन से ही सोचो तो दुःख है । सोचने की बात है । यह ठीक जीवन की तरह है, जिसकी दूसरी करवट मौत है ।"

"स्वामी जी, सुपथ क्या है ?"—बाबू रूपकिशोर ने पूछा ।

"सुपथ वही है जिससे व्यक्ति स्वय सुखी हो और उसके कारण समूह भी सुखी हो—स्वार्थ और परमार्थ दोनो—जिससे सत्पथगामी बन सके, और ससार जिससे भगवान की ओर अभिमुख हो सके ।"

"बडा कठिन काम है स्वामी जी, ससारियो को इसको समझना ।"

"इसीलिए नाम-सकीर्तन की महिमा का मैने वर्णन किया। नाम-सकीर्तन से सतोष मिलता है, दुःख-सुख मे विवेक जाग्रत होता है, मनुष्य विषाद से मुक्त रह सकता है ।"

कीर्तन का प्रसाद बँटना प्रारम्भ हो गया था। स्वामी जी ने बाबू रूपकिशोर से कहा, "आश्रम के बारे में कुछ बातें करनी हैं आपसे।"

लोगों के चले जाने पर स्वामीजी ने बाबू रूपकिशोर से बालिका-आश्रम की योजना बतायी। यह भी कहा कि ज़मीन मुफ्त मिल जायेगी। लेकिन भवन, फर्नीचर, सामान आदि के लिए कम-से-कम पचास हज़ार तो प्रारम्भ में चाहिए ही। इसका आधा वे बम्बई से ला देंगे। आधा का प्रबन्ध यहाँ के नागरिक करें। बाबू रूपकिशोर को धन-संग्रह का भार दे उन्होंने उनसे समुचित सहायता माँगी।

बाबू रूपकिशोर ने स्वामी जी को आश्वासन दिया कि रुपये इकट्ठे कर लिए जायेंगे। जमीन का दान-पत्र आदि नियमानुकूल भरा लिया जाये।

ज़मीन का दान-पत्र स्वामी जी ने बाबू रूपकिशोर के पास तीसरे दिन ही भेज दिया। ज़मीन मुट्ठीगंज में ही मिल गयी। तीन एकड़ ज़मीन किसी महाजन की पड़ी थी। महाजन महात्मा जी का शिष्य था। उसने दान-पत्र की लिखा-पढ़ी कर दी।

बाबू रूपकिशोर के मन की स्थिति किसी नये काम में हाथ डालने की हो नहीं रही थी। लेकिन काम में मन लगा रहे और स्वामी जी के आदेश का पालन हो जाय इसीलिए उन्होंने मन-ही-मन ऐसे आदमियों की फेहरिश्त बनायी जिनसे पूरा रुपया चन्दा में पाया जा सके।

सबसे पहले वह सेठ घासीराम के यहाँ पहुँचे। वकील साहब को अपने घर पर देख कर सेठ जी का सारा परिवार खुशी से फूल उठा। लेकिन जब वकील साहब ने सेठ जी को अपने आने का उद्देश्य बताया, तब सेठ बगलें झाँकने लगा। उसने व्यापार की मन्दी, समय का खराब हो जाना आदि कई बहाने बताये। मगर सेठ की पत्नी उतनी काइयाँ नहीं निकली। उसे बाबू रूपकिशोर का उपकार याद था और उसने पाँच हज़ार की हामी भर ली।

राजा रमणीमोहन ने काले बाज़ार में इधर बहुत कमाया था। बाबू रूप-किशोर ने अपना दूसरा प्रयास वहाँ किया। राजा साहब बात साफ टाल गये। उन्होंने कहा, "तालुकेदारी कब की समाप्त हो गयी, व्यापार में अगर कुछ मिला भी तो वह अधिकारियों की सेवा-सुश्रूषा के लिए काफी नहीं पड़ता। अधिकारियों का पेट अब बहुत बड़ा हो गया है। लेकिन, कन्ट्रोल के इस जमाने

मे व्यवसाय उन्ही के बल पर है। फिर पार्टी है। आगामी चुनाव मे विधान परिषद् के लिए खडे होने के लिए पार्टी अभी से मजबूर कर रही है। मैं तो झझट मे पडना नही चाहता था। पर ऊपर से जोर है। कम-से-कम पचीस हजार तो चुनाव मे खर्च हो ही जायगा।"—आदि-आदि।

सिगार दिया पीने को राजा साहब ने बाबू रूपकिशोर को। बाबू रूपकिशोर राजा रमणीमोहन को जानते न हो, ऐसा नही। बिना कुछ और कहे चलने को उठ खडे हुए। तब राजा साहब ने अप्रकट अनिच्छा से कहा, "लेकिन आपका आना और ऐसे शुभ काम के लिए, खाली नही जाना चाहिए।" उन्होने पाँच सौ रुपये का एक चेक काट कर दे दिया और पूछा, "दैनिक पत्रो मे तो दान-दाताओ की सूची प्रकाशित होगी ही ?"

बाबू रूपकिशोर ने कहा, "जी हाँ, आपकी कृपा के लिए धन्यवाद !" खैर, शेष धन चार-पाँच आदमियो से इकट्ठा हो ही गया। पाँच हजार रानी बिल्वमाला ने भी दिया। बम्बई से भी चदे की रकम आ गयी।

आश्रम का ट्रस्ट बन गया। इजीनियर से नकशा पास हो गया। और चैत्र के नवरात्रो के पहले दिन स्वामीजी के कर-कमलो से आश्रम के भवन-निर्माण का शुभारम्भ हो गया।

बाबू रूपकिशोर की अपनी [illegible] मे भी काम करने की क्षमता अद्भुत थी। दिन भर कचहरी रहने पर कचहरी से लौटते समय भवन-निर्माण का बिना नागा निरीक्षण कर आते।

अरविन्द ने एक दिन उनसे कहा, "आपके प्रयत्न से नगर के ही नही, इस प्रदेश के एक भारी अभाव की पूर्ति हो गयी।"

"लेकिन अरविन्द, यह रोग का निदान नही। रोग का नाश तो तब होगा जब उसकी जड को उखाड फेका जाय।"

"जड क्या है ?"—अरविन्द ने पूछा।

"जड हमारे समाज मे व्याप्त अनैतिकता है। नैतिक शिक्षा की, आर्थिक समानता की जरूरत है। तब एक आदमी दूसरे का भार नही बनेगा। तब अनाचार नही होगा, तब समाज मे कुरीतियो को प्रश्रय नही मिलेगा।"

"लेकिन ये रोग तो आदि काल से समाज मे व्याप्त है ?"

"हाँ लेकिन इसका इतना वीभत्स रूप शायद पहले कभी नही था। जो हो, समाज और देश को मजबूत और सुखी बनाने की दिशा मे हमारा लघु प्रयत्न भी एक कडी है।"

अरविन्द का हृदय वकील साहब के प्रति आदर और श्रद्धा से भरा था।

आश्रम के भवन-निर्माण का काम तेजी से चल रहा था। व्यवस्थापिका, परिचारिकाएँ, महाराजिन, जमादारिन, चौकीदार आदि की नियुक्तियो के लिए विज्ञापन पत्रो मे प्रकाशित कराया गया। कार्यकारी रूप से समाज-कल्याण-कार्य मे अनुभवी एक महिला अध्यापिका को व्यवस्थापिका के पद पर रख भी लिया गया। योजना यह थी कि भवन का एक भाग तैयार होते ही वालिकाओ की भर्ती प्रारम्भ कर दी जाय।

वावू रूपकिशोर एक दिन सवेरे अपने दफ्तर मे काम कर रहे थे कि एक सज्जन मिलने आये। कलकत्ता से आये थे। साथ मे एक युवती थी। सज्जन, जिनकी अवस्था वत्तीस-पैंतीस से अधिक नही थी देखने मे सम्भ्रान्त जान पडते थे। उनके भरे-पूरे चेहरे, उनके हृष्ट-पुष्ट शरीर, भेष-भूषा आदि से यही अनुमान होता था कि वे समृद्ध और सुखी है। साथ की युवती सुन्दरी थी। यद्यपि उसके मुखमण्डल पर विषाद की एक गहरी रेखा स्थायी रूप से खिच आयी थी।

सज्जन ने वावू रूपकिशोर को बताया कि स्वामी जी की आज्ञा पर वह उनसे मिलने आये है।

"स्वामीजी ने," सज्जन ने वताया, "कहा है कि बात सच-सच आपको बता दी जाय। यह देवी मेरी सगी साली है। इनका विवाह हो चुका है। पति व्यवसाय की शिक्षा लेने तीन वर्ष के लिए अमेरिका गया हुआ है। अपने पिता के घर ये रह रही थी। इसी बीच क्षणिक भूल से एक प्राणी इनके शरीर मे आ गया। अपनी ओर से उन्होने उस पाप के बीज को उखाड फेकने की हर कोशिश की। कोई उपाय छूटा नही। लेकिन सब असफल रहा। तब माँ-बाप के घर से इन्हे अज्ञातवास कराया गया। समय पूरा होने के वाद वह प्राणी अब आ गया है। उसके लिए अच्छे घर की तलाश थी। आप हमारे समाज की मजबूरियो को तो जानते ही

है । आपके आश्रम के बारे मे सुना । स्वामी जी और आप ऐसे महापुरुष की छत्रछाया मे यह आश्रम, उस अबोध शिशु के लिए हर तरह उपयुक्त समझ हम यहाँ आये । यहाँ पता चला कि आश्रम का भवन अभी तैयार नही हो पाया है ।"

"जुलाई तक शायद भवन तैयार हो जाय, तब भर्ती हो सकेगी ।"—बाबू रूपकिशोर ने कहा ।

"लेकिन हमारी समस्या विकट है । हम शिशु को साथ लाये है । अपने पास उसको यह रख नही सकती और कही भी रखने की समुचित व्यवस्था नही। हम उसके पालन-पोषण का जो भी व्यय हो, मासिक देते रहेगे । हम चदे के रूप मे भी पर्याप्त देने को तैयार है ।"

"अगर आप अनुचित न माने तो अपने बारे मे कुछ विशेष परिचय दे, बात फूटेगी नही ।"

"हमे विश्वास है । लेकिन परिचय आप रहने ही देते ।"

"आप विश्वास रखे । हम इस आश्रम मे एक विशेष स्तर की सेवा की व्यवस्था कर रहे है। इसीलिए हर शिशु के अभिभावक के बारे मे कुछ जानकारी जरूरी है ओर मै पेशे से वकील हूँ। आप कत्ल कर के आये, हमारे सामने उसे स्वीकार कर ले और हम आपको दण्ड से बचा लेते है ।"

'मेरा फर्म है, 'ताराचद-दारूमल' । इनके पिता भी व्यवसायी हैं । हिन्दुस्तान खाण्डसारी-सघ का नाम आपने सुना ही होगा ।"

"अब किसी परिचय की आवश्यकता नही। दोनो देश प्रसिद्ध व्यावसायिक सस्थान है ।"

युवती की ओर निगाह पडी तो वह अपनी लाज मे अपने मन के दुख को समेटती गुम-सुम थी । करुणा से आर्द्र हो बाबू रूपकिशोर ने युवती को लक्ष्य कर कहा, "भूल-चूक सबसे हो जाती है, परिस्थितियाँ करा देती है, इसान बेबस होता है । ऐसे में चिन्ता की आग को मन से मिटाना ही विवेक है ।" फिर उस सज्जन से उन्होने कहा, "इन्ही सामाजिक परिस्थितियो के ज्ञान नें इस आश्रम की कल्पना को जन्म दिया। मगर अभी तो आश्रम तैयार नही । हम शिशु को कहाँ रख सकते है ?"

"स्वामीजी ने कहा है कि अगर वकील साहब स्वीकार करे तो तब तक शिशु को बालको के आश्रम मे रखा जाय।"—सम्भ्रान्त सज्जन ने कहा।

"स्वामी जी का आदेश है तो वह माना ही जायेगा। लेकिन वहाँ की व्यवस्था उतनी अच्छी नही, जितनी बालिका आश्रम के लिए सोचा गया है, न हो तो आप जाकर देख आये। फिर आप जैसा चाहे।"

"हमारी समस्या शिशु को शीघ्र ही कही अच्छी व्यवस्था मे रखने की है। वैसे बालक शिशुओ के लिए भी तो परिचारिकाएँ होती होगी।"

"शिशु की अवस्था क्या है?"—बाबू रूपकिशोर ने पूछा।

"दो महीने से कुछ ही दिन अधिक का है। स्वस्थ शिशु है। पाँच सेर वजन था पैदा होने के समय।"

"उसके लिए एक धाय आवश्यक होगी।"

"उसकी चिन्ता आप न करे। शिशु को स्वीकार कर ले। उसका सारा व्यय-भार हमारा। बाद मे उसे बालिकाओ के आश्रम मे कर दे।"

हजार-हजार की पाँच गडिड्याँ चंदे के रूप मे सज्जन ने वकील साहब को दी। दो गड्डी और साल भर का शिशु के व्यय का रख दिया।

बाबू रूपकिशोर ने रसीद-बही निकाली। "किस नाम से रसीद काटूँ?"—उन्होने पूछा।

"फर्म के नाम न काटकर मेरे नाम से काट दे। वैसे उसकी जरूरत नही थी। मेरा नाम है, मूलचन्द दारुका। ताराचद मेरे पिता का नाम है।"

दो रसीद काट कर दे दिया बाबू रूपकिशोर ने।

"शिशु कहाँ है?"

"स्वामी जी के पास है। शाम को आश्रम पहुँचा दूँगा।"

"यह पत्र व्यवस्थापक जी को दे दीजियेगा। धाय का प्रबन्ध कल से ही हो जायगा।"

"आपके हम कितने अनुगृहीत है!"—सज्जन ने कहा।

"माफ कीजियेगा, जिज्ञासा रोक नही पा रहा हूँ। क्या शिशु के पिता आप ही है?"

"जी, वकील साहव, मै हतभागा ही इस पाप का कारण हूँ। ये सर्वथा निर्दोष है।"

वकील साहव ने फिर कुछ न कहा, न पूछा। मूलचद और उनकी साली विदा माँग उठ खडे हुए। उस समय युवती सिसक पडी। अश्रु की अविरल धारा वह निकली। यद्यपि शिशु से वियोग शाम को होना था। बाबू रूपकिशोर स्वय अबोध शिशु के दुख की कल्पना से भर आये। मौन, मन की आँखो से वे अपने से आ टकराये।

"एक वात और,"—सज्जन ने तब तक लौट कर कहा, "यदि हम मे से कोई भी आये तो शिशु से मिलने का अधिकार रहे। हम इस बात की भी चेष्टा करेगे कि हमारे परिवार वर्ग मे से ही कोई शिशु को गोद ले ले। शिशु का नाम भी हमने तय कर दिया है। लिख कर हम आश्रम मे छोड जायेगे।"

"अच्छी बात है।"—कहकर बाबू रूपकिशोर ने हाथ जोड लिये। वे चले गये।

नाश्ते पर जान्हवी ने पूछा, "वह युवती जाते वक्त रो रही थी। क्या बात थी?"

"जीवन का दुख और क्या? सवको व्यापता है यह। कोई भी इससे वचित नही।"—खोये-खोये वकील साहव ने काफी का घूँट पीते हुए कहा।

"कोई भी नही?"—पता नही किस भाव से जान्हवी ने पूछा।

माधुरी ने भी अपना कान दिया।

"हा जान्हवी, कोई नही। तुम्हे ही देखो, तुम्हे कितना प्रसन्न रखने की कोशिश करता हूँ। पर क्या तुम प्रसन्न रहती हो?"

"क्या कह रहे हो? बच्चो के सामने भी हँसी-मजाक? मुझे किस बात का दुख है?"—जान्हवी के स्वर मे अप्रत्याशित बात सुनने की घबराहट थी।

माधुरी के चेहरे का भाव भी बातचीत के प्रसग मे गम्भीर हो उठा था। बाबू रूपकिशोर ने पुत्री का भाव समझ लिया था। उसी की भाव-गम्भीरता भग करने के लिए उन्होने उपर्युक्त परिहास किया था। अपने परिहास का असर देख वे चकित हुए। माधुरी खिलखिलाकर हँस पडी थी। करुणा और केदार ने बिना

कुछ समझे जीजी की हँसी मे योगदान दिया। बच्चो की हँसी से बाबू रूपकिशोर भी हँस पडे ।

पर बच्चे जब चले गये तब जान्हवी ने कहा, "बताओ, मुझे कौन-सा दु ख है ?"

बाबू रूपकिशोर ने पत्नी की भावगरिमा को भग करने के लिए पुन· परिहास किया, "रात को बताऊँगा ।"

लेकिन जान्हवी के मन का भाव मिटा नही। वह थोडी देर बाद बोली, "तुम परिहास मे भी मेरे बारे मे ऐसी धारणा बना सकते हो, यह मेरा घोर दुर्भाग्य है ।"

बाबू रूपकिशोर तिल का ताड बनते देख चिन्तित हुए। उन्होने आश्वासन के स्वर मे कहा, "अच्छे भले एक मजाक को, तुम न जाने क्या समझ बैठी ?"

"नही, नही, तुम सच पर पर्दा डाल रहे हो। तुमने जो बात कही वह तुम्हारे हृदय से निकली थी। मेरे अपराध को तुम्हे बताना ही होगा ।"

"पागल मत बनो। कोई अपराध की बात भी हो ।"

"फुसलाने की कोशिश बेकार है। तुम स्वय कहा करते हो कि मजाक मे कही गयी बात का भी कारण होता है। वह कारण तुम्हे बतलाना ही पडेगा ।"

बाबू रूपकिशोर ने यही समझा कि बच्चो के सामने ऐसी बात हो जाने से जान्हवी को दु ख हुआ । बच्चो के सामने वह बात नही होती तभी अच्छा था। अब जान्हवी को शान्त कराने का एक ही रास्ता था—बात को बदल देना।

पत्नी का हाथ अपने हाथ मे लेते हुए उन्होने कहा, "तुम नाहक ही चिढ गई हो। अगर कारण वाली उक्ति भी सही हो तो शाम तक कोई कारण ढूँढ-ढाँढ कर तुम्हारे सन्तोष के लिए बताऊँगा। इस समय कचहरी जाने दो ।"

जान्हवी दिन भर उधेड-बुन मे रही। पति को वह साक्षात परमात्मा मानती थी। दूसरी स्त्री होकर आयी थी पति की। पर न उसने, न पति ने ही कभी किसी भी बात से यह प्रकट होने दिया था कि वह दूसरी है। महेश और माधुरी को अपने बच्चो की तरह पाला-पोसा उसने। केदार और बाद मे करुणा भी जब आयी तब भी महेश और माधुरी के प्रति उसने अपना भाव नही घटने दिया। पति ने भी उसे सम्पूर्ण हृदय से प्यार किया। प्रशसा करते नही

थकते थे उसके पति उसकी। कहा करते थे, "जब से तुम आई हो, इस घर के नसीब मे चार चाँद लग गये। कितना धन और कितना यश कमाया मैंने तुम्हारे आने के बाद। तुम साक्षात् लक्ष्मी-सी इस घर मे आयी।" पति की प्रसन्नता के लिए उसने भी क्या-क्या नही किया ? जब जैसा चाहते थे, वैसा ही उसने किया। जब जिस भेष मे रखते थे, उसी मे वह रही। पति के अलावे उसके जीवन मे कोई पुरुष न पहले आया, न बाद मे। किसी को वह जानती तक नही थी--यही उसके माँ-बाप की शिक्षा थी। माँ ने विवाह के पहले अनुसूया की सीख रामायण से पढकर सुनायी थी। जीवन भर उसने उसी सीख को निभाया। पति मे अगर कभी कोई उसमे दुराव भी होता तो वह अनदेखा कर देती। पति की उसने कोई बुराई देखी ही नही थी। इधर, कान मे कुछ भनक पडी थी जिस पर उसने विश्वास नही किया। शक-सुबहे को भी उसने मन-ही-मन दबा कर रखा, उसके बारे मे वह सोचना भी नही चाहती थी। फिर भी पति ने मजाक मे ही सही, आज किस बात की ओर इशारा किया, जिसके कारण वह दु खी हो सकती है ? वह इस अविश्वास का पात्र बन कर पाप की भागी कैसे बनी ? उसे ध्यान आया--कभी-कभी शायद जेठानी के प्रति उसके भाव को पति ने स्वार्थपूर्ण समझा हो। पर पति ने भी तो कभी उस भाव का विरोध नही किया और उन बातो मे भी तो वह न्याय-पथ पर ही थी। बाद मे सुरेश की मदद भी की उसने। जेठानी तो कब की चली गयी, बात पुरानी पड गयी। फिर क्यो आज माधुरी के सामने--समझदार माधुरी के सामने--पति ने ऐसी बात कही ? माधुरी खिलखिला उठी थी। उसका दोष ही क्या ? बात ही ऐसी थी। जान्हवी भावो के आवेग मे डूबने लगी।

महरिन ने आवाज लगायी, "बहू जी।"

जान्हवी ने महरिन को ऊपर से ही कहा, "चौका बर्तन कर चली जा। खाना सब लेती जाना।"

महरिन प्रसन्न ही हुई। खाना दो जनो का रखा था। आज अपने पति को वह भरपेट खिला पायेगी।

बर्तन माँज, चौका साफ कर, महरिन खाना लेकर चली गई।

महरिन चली गई। पर जान्हवी के मन की वेदना नहीं गयी। उसे अपने शैशव का ध्यान आया। माँ कहा करती थी, "हमारी बेटी राजरानी होगी।" राजरानी तो वह हुई। माँ कहती थी, "जहाँ जायेगी राज करेगी।" राज भी उसने किया, पति पर और उसके संसार पर। कभी भी, जहा मतभेद भी था, पति ने उसकी इच्छा की अवहेलना नही की। उसे अपने स्कूल की सहपाठिनी विद्या का ध्यान आया। कितनी प्रगल्भ थी वह। कहा करती थी, "अपने पति को उल्लू बना कर रखूँगी।"

जान्हवी ने सोचा, 'क्या उसके पति उसके वश मे नही?' उसके मन के अन्तराल से किसी ने कहा, "पति उसका आदर करते थे, उससे प्रेम भी करते थे, पर पति के जीवन की सगिनी एकमात्र वही हो—यह बात झूठ है।" जान्हवी के मन मे भ्रम ने जो घर कर लिया था, अतर की आवाज उसमे विश्वास का बल भरना चाहती थी। उसका मन पीपल के पत्ते की तरह थर-थर काँप गया, भ्रम को विश्वास मे बदलते देख वह कराह उठी, उसका चेहरा उतर गया और शोक—अगाध शोक—की लहर उमड कर उसके शरीर और आत्मा को भीन गयी। मान की भावना, जो सुबह से ही पति की उक्ति से जग उठी थी, का स्थान विषाद ने ले लिया। जीवन का दृश्य-अदृश्य आशका से भरा धुँधलापन उसकी आँखो मे छा गया।

जान्हवी जीवन मे पहली बार आज विकल हुई। बिस्तर पर पडे वह देर तक खयालो मे डूबती-उतराती रही। फिर नीद आ गयी।

माधुरी ने आकर जगाया। माँ का भाव चेहरे से पढ कर उसने कहा, "छोटी-सी बात से नाराज हो। चार बज चुके है। बाबू जी आते ही होगे।"

"जा माधुरी, चाय का पानी चढा दे। मेरी तबियत कुछ अलसा गयी है। और करुणा से मठरी बनाने को कह दे। बाज़ार से रसगुल्ले मँगवा ले।"

माधुरी चली गई।

पिता जब आये तब चाय तैयार हो चुकी थी। पति की आवाज सुनकर जान्हवी नीचे आई।

माधुरी ने सोचा कि हँसी-विनोद से माँ की तबियत बहल जायगी। उसने पिता से कहा, "माँ आज दिन भर पड़ी रही।"

पुत्री के भाव का उत्तर दिया पिता ने, "मुझे कचहरी मे पता चल गया। मै भी आरामकुर्सी पर पडा-पडा सोचता रहा। एक छोटा-सा मजाक तुम्हे हँसाने के लिए कर दिया था, तुम्हारी माँ बिगड उठी। अब मुझे ही मनाना पडेगा।"

"हटो, व्यर्थ की बाते करते हो। यह नही समझते कि कब कैसी बात करनी चाहिए।"

पति ने देखा कि पत्नी के मन का भार परिहास से उतर रहा है। उन्होने मजाक किया, "माधुरी, तुम लोग ऊपर जाओ। मै तुम्हारी माँ को मना लूँ तब चाय पीयेगे।"

जान्हवी रोष के भाव से बोली, "सब पीओ, चाय ठण्डी हो रही है।"

पति के परिहास से जान्हवी कम-से-कम प्रकट रूप मे काफी हल्की हो गयी थी। चाय प्रसन्नता से पी गयी।

: १९ :

भ्रम मन को मार देता है। जान्हवी का भ्रम न मिटा, न मिटनेवाला ही था। उसके जीवन मे दुःख की एक नयी धारा उमड पडी; परम सन्तुष्ट, परम सुखी जान्हवी अब नही रही। पति के प्रत्येक कार्य को वह मनोयोग से ही पूर्ववत् करती थी। बच्चो की देख-भाल मे भी किसी प्रकार की कमी नही होने पाती थी। पर पहले जो जीवन और पति को लेकर उसका उत्साह था, वह अब नही रह सका। मन के सन्ताप मे खोया-खोया रहना उसका स्वभाव हो गया। इसका पहला फल तो यह हुआ कि रसोई के काम के लिए एक महाराज की जरूरत पडी। रसोई, इस घर का वह पवित्र स्थान था जहाँ गृहिणी और परिवार के अन्य सदस्यों के अतिरिक्त किसी का भी कभी प्रवेश जान्हवी ने होने नही दिया था। पर महाराज के लिए जब माधुरी ने अब प्रस्ताव किया तो जान्हवी

ने विरोध नही किया। एक कुशल महाराज मिल भी गया। कभी वह महाराजा कूचविहार का भण्डारी रह चुका था और उनको शुद्ध ब्राह्मण-भोजन खिलाने के लिए उनके साथ देश-विदेश भी घूम आया था। वह वैष्णव भोजन के अतिरिक्त पाश्चात्य ढग के भोजन बनाने मे भी कुशल था। खाने का कमरा घर मे कब का सज चुका था। घर से काम-काज से भी फुरसत पाकर जान्हवी जगल के उस ठूँठ की सूखी टहनी की तरह हो गयी, जो आग पकड गयी हो और जिससे बराबर धूँआ निकल रहा हो। उसका समय काटे नही कटता। वह पूजा-घर की ओर मुडी, देव-दर्शनो को आने-जाने लगी। एक दिन हनुमान का दर्शन करने बॉध गयी। माधुरी और करुणा साथ थी। दर्शन-पूजा कर टहलते-टहलते जमुना के घाट तक वे आयी। घाट के रास्ते से दूर, कुछ ऊँचाई पर एक मनोरम स्थान पर वे बैठ गई।

जमुना की श्याम लहरियो को पार करती एक नौका मथर गति से घाट की ओर चली आ रही थी। नौका घाट पर आ लगी। दो रमणियॉ नौका से उतरी। साथ मे एक सेवक था। उनकी भेष-भूषा और स्वरूप से वे उच्चवर्गीय लग रही थी। घाट से सीधे वे भी हनुमान के दर्शन को गयी। फिर वापस आते समय वे भी घाट के ऊपर के उसी स्थान की ओर मुडी जहॉ जान्हवी बैठी थी।

जान्हवी का मन उनकी तरफ नाव के घाट पर लगते समय ही अचानक खिच गया था। अपनी ओर उन्हे मुडते देख वह उनको ध्यान से देखने लगी।

रमणी की उमर कुछ अधिक थी। यद्यपि देखने मे वह बत्तीस-तैंतीस की ही लग रही थी। वह अत्यन्त रूपवती थी और शुभ्र वसनो मे किसी राजपरिवार की जान पडती थी। मुख पर स्निग्ध सौन्दर्य की कान्ति थी जो बरबस आँखो को अपनी ओर खीच लेती थी। नाक-नक्शा, कद——सब आकर्षक थे। रमणी के साथ की युवती भी कचन-सी सुन्दरी थी। वह बीस-इक्कीस से अधिक उम्र की नही थी। उसके शरीर का समूचा गठन इतना सुथरा और समतल था कि जान्हवी के साथ-साथ माधुरी——जो उसी उम्र की स्वय थी——भी उसको एकटक देखने लगी। जान्हवी ने सोचा कि वे दोनो शायद बहने हो।

रमणी जब जान्हवी के बिलकुल करीब आ गयी तब अचानक जान्हवी और

माधुरी को देख वह ठिठकी। माधुरी को गौर से निहारती रही। लौट जाने का निश्चय किया, लेकिन लौटना अलक्षित नही रहेगा, यह सोच पाँवो ने लोटने के विचार का साथ नही दिया। पाँव बढते ही गये। जान्हवी के बिलकुल पास आकर रुके।

रमणी के हाथ अचानक नमस्कार की मुद्रा मे उठ गये जिसका जान्हवी के हाथो ने प्रति नमस्कार कर उत्तर दिया।

रमणी के मन की शका माधुरी के मुख ने मिटा दी थी। वह सोच मे पडी थी कि परिचय की सीमा लाँघी जाय या नही। आज नही तो कल भेद तो प्रकट होना ही है, गोद-सस्कार के उत्सव मे जो सबको बुलाना था। बडी तेजी से वह अपने मन की गुत्थियाँ सुलझा रही थी। परिणीत प्रेमी की आज्ञा भी नही मिली थी। लेकिन क्या पता था कि त्रिवेणी की पुण्यस्थली पर अकस्मात उनकी भेट हो जायगी। अब जब भेट हो गयी, बात छिपायी कब तक जा सकती है।

जान्हवी का अनुमान भी ठीक किनारे जा लगा था। उसके विद्रूप और ईर्षा का स्थान अब क्रोध ने ले लिया था। और उसके चेहरे पर शेरो के गुर्राने वाला भाव आ छाया था जिसे वह दबाने की भरसक कोशिश कर रही थी। रमणी ने ही पूछा, "बहनजी, आप लोग वकील साहब के घर से तो नही है?"

सर हिला कर जब जान्हवी ने 'हाँ' जताया तब रमणी बैठ गई। बोली, "अहो भाग्य बहन जी, हम आपके दर्शन को आने ही वाले थे। मेरे बालक के सस्कार मे आपको घर पर चरण-धूलि देनी ही पडेगी। भगवान पशुपतिनाथ की असीम कृपा है कि आज इस पुण्यधाम मे आपके चरणो का दर्शन हुआ।"

माधुरी आश्चर्य-विभोर हो रही थी। तब तक जान्हवी ने पूछा, "आप लूकरगज की रानी साहिबा है?"

"हाँ, बहिन जी, मै ही वह अभागिन हूँ। आप लोगो की कृपा से ही जी रही हूँ।"

जान्हवी सहमी, क्षोभ का रोष चेहरे पर आते-आते बचा। उसने माधुरी और करुणा से कहा, "ये लूकरगज की रानी साहिबा है, जिन्होने बलुआघाट की कोठी दी। इन्हे प्रणाम करो।"

माँ का इशारा समझ माधुरी और करुणा ने प्रणाम किया। रानी ने दोनों को गले लगा आशीर्वाद दिया। माधुरी को वह प्रेम से भरा वक्ष बहुत ही शीतल लगा, बिलकुल अपरिचित वह वक्ष नही लगा, उसमें स्नेह की एक ऐसी भावना थी जो माधुरी की हैरानी का कारण बनी।

विल्वमाला बैठ गयी। नख-शिख उन्होंने छिपी आँखों से जान्हवी को देखा, ठीक उसी प्रकार जिस तरह जान्हवी तब वीरा को देख रही थी।

"आज त्रिवेणी की इस पुण्यस्थली पर भगवान ने आपके दर्शन करा दिये। मेरा कितना सौभाग्य है। मुझे भूलियेगा मत बहन जी!"—विल्वमाला ने नम्रता के हार्दिक स्वर मे कहा।

"आपको भूलूँगी ?"—जान्हवी के मुँह से सहसा व्यंग्यात्मक उक्ति निकल गयी, पर उसने सँभाल कर कहा, "आपके कारण तो हम लोगों को कितना लाभ हुआ। माधुरी के पिताजी तो आपकी प्रशसा करते नही थकते। अभी उस दिन आपके यहाँ से चाय पीकर आये थे। ढेर-का-ढेर आपने प्रसाद भेजवा दिया।"

"हाँ, बहन जी, जीवन मे और रखा ही क्या है ? भवान रामेश्वरनाथ के दर्शनो को गयी थी। वहाँ मेरी एक मेरी बहन भी तीर्थ मे आयी थी। उनका एक बच्चा माँग लिया। दया कर उन्होंने दे भी दिया। गोद ले लिया है मैंने उसे। कानूनी लिखा-पढी और सस्कार आदि के लिए वकील साहब को उस दिन कष्ट दिया था। सस्कार मे आपको भी निमन्त्रित करने आऊँगी।"

"क्यो तकलीफ करेगी ? कहलाने से ही मै आ जाऊँगी। आपके यहाँ नही आऊँगी ?"—जान्हवी के अन्तर के रोष-ईर्षा के भाव ने फिर उभार लिया।

बिल्वमाला लेकिन शात थी। पहले से ही वह जान्हवी को बडी बहन माने बैठी थी। रनिवास की परम्परा मे कई बहनो का होना किसी अचरज की बात नही थी।

जान्हवी के अन्तरतम की ईर्षा की लहर लेकिन जोर पकड़ रही थी। जिसके बारे मे इधर कानो मे भनक आई थी, जिसके कारण पति पर—अपने जीवन पर, उसे भ्रम और क्षोभ उत्पन्न हो गया था और जिसकी स्पर्धा उसकी सामाजिक

नजरो मे एक कुपथगामिनी से अधिक नही थी, पर जिसको देखने को मन-ही-मन वह उत्कठित थी आज अचानक ही उससे भेट हो गयी। आज बहुत दु खी मन को लेकर वह त्रिवेणी की ओर आयी थी। अब दु ख की जगह एक दूसरी भावना ने ले ली जिसे न ईर्षा, न होड, न प्रतिस्पर्धा, न घृणा, न प्रेम की ही भावना कह सकते है। जान्हवी का मन इतना उद्वेलित था कि वह डर रही थी कि उसके हृदय के अन्तराल का कोई भाव चेहरे पर न आ जाय। उसने पूछा, "कब है सस्कार ?"

अभी कुछ देर है। पण्डितो की राय अभी निश्चित नही हुई है। उसी से देर हो रही है।"

'आपने बालिका आश्रम के लिए भी धन-दान किया। उसकी भी वकील साहब बडी प्रशसा कर रहे थे।'

"उन्ही के कारण तो बहन जी, यह धन-सम्पत्ति है, उन्ही की कृपा कहिए। आप लोगो से कभी हम उऋण हो सकते है ? यह उनकी दया है कि हमे वे किसी योग्य समझते है।"—बिल्वमाला ने शान्त चित्त से कहा। पर भाव के पीछे की करुणा कहने के ढग से साफ प्रकट थी। जान्हवी की जिज्ञासा ने प्रसग मोडा। उसने पूछा, "तीर्थ मे आप बहुत दिनो रही ?"

हा, एक बार निकली तो डेढ वर्ष बिता कर आयी। नारी जाति, हम लोग निकल ही कहाँ पाती है ? आप भी शायद आज दर्शन को आयी थी ?"—शालीनता से बिल्वमाला ने तीर्थयात्रा का प्रसग बदलने के लिए कहा।

दर्शन के लिए ही घर से निकली थी, यहाँ एकान्त देखकर आ बैठी, अच्छा ही हुआ, आपके बारे मे सुना बहुत था, आज दर्शन हो गये।" बिल्वमाला के मन मे उठा कि जाने क्या सुना था। उत्कठा को दबाकर उसने कहा, "बहन जी, भाग्य तो हमारा है जो आपको आज यहाँ खीच लाया।"

जान्हवी के मन मे उठा, 'यह नारी, रियासत की रानी, अपने पति के मरने के बाद भी भरी-पूरी है। इतनी उम्र मे, ऐसा युवतियो की तरह का आकर्षण, मन के एकान्त का तो प्रतिरूप हो ही नही सकता। भरा-पूरा जीवन, उल्लास जैसे रग-रग से फूट रहा है और यह शालीनता और गम्भीरता केवल बनावट है। मन का

उसका भ्रम पुष्ट हो रहा था, उसे प्रमाण मिल रहा था। लेकिन वास्तविक प्रमाण तो उसके पास था नहीं। सुनी-सुनायी बात थी। परन्तु क्या कभी बिना आधार के कोई बात उठती है?—उसने सोचा। उसके नेत्रों मे पास बैठी नारी—बिल्वमाला के प्रति एक घृणा की भावना आयी। पर मन के भाव को, पुष्ट प्रमाण के अभाव मे दबाना ही उचित था, संस्कृति थी। उसने भाव दबाया। रानी से युवती की ओर देखते हुए उसने पूछा, "आपकी बहन है?"

"बहन ही समझिए। इसकी माँ हमारी माँ के पास थी। मैने जब माँ-बाप का घर छोडा तब यह भी साथ आई। हमारे यहाँ की प्रथा है।"

जान्हवी का मन कह रहा था—ठीक दासी तो यह जान नही पडती। अगर दासी है भी तो रानी की चहेती है। सुन्दरता, रूप-लावण्य और काति उसकी भी मनोहारी थी। रानी से कही अधिक उसके शरीर से विवाहित जीवन की आभा प्रकट हो रही थी।

जान्हवी पूछ बैठी, "इसके पति क्या करते है?"

बिल्वमाला क्षण भर के लिए तो घोर असमंजस मे पडी। संभल कर बोली, "इसका विवाह नही हुआ है। ये विवाह नही करती।"

विस्मय से जान्हवी चकित हो गयी। युवती दासी साफ-साफ विवाहित लग रही थी। कम-से-कम लक्षण स्पष्ट थे, लेकिन उसने सोचा, 'राजाओ की महफिल मे क्या विवाह, क्या अविवाह?' दासी और रानी इसकी साक्षात प्रमाण थीं। मन मे फिर घृणा भर आयी जिसे प्रयत्नपूर्वक उसे दबाना पडा।

बिल्वमाला ने जान्हवी के भाव-परिवर्तन को देखा। उसे न कोई विस्मय हुआ न उसने अपना मौन ही भंग किया।

जान्हवी ने एक बार फिर हैरानी से युवती दासी को गौर से देखा। उसके मन मे सहसा एक अज्ञात भाव उठा। मन-ही-मन हैरान हुई थी बाद मे इससे वह—उसने दासी की अपने से नख-शिख तुलना कर डाली।

कुछ देर के बाद बिल्वमाला ने कहा, "अब आज्ञा दे।"

जान्हवी उठ खडी हुई। "कैसे आई है?"—बिल्वमाला से पूछा।

"मुट्ठीगंज से नाव से ही आये है। नाव से ही वापस लौट जायेगे।"

"आपकी गाडी बाँध पर खडी है। न हो तो उसीसे चली चलें।"

"मेरी गाडी कैसे ? वकील साहब ने उसकी कीमत चुकाकर खरीदा था। उनको न बेचने का सवाल ही कहाँ होता ? और हमें तो बहिनजी, कहीं आना-जाना नही पडता। गाडी की जरूरत भी नही थी।"

"खरीदा था, यह तो उन्होंने कहा था। क्या कीमत चुकानी पडी, यह नही बताया था।"—जान्हवी का भाव ऐसा था मानो उसे कार से सम्बद्ध सारी घटना मालूम हो।

विल्वमाला ने बात के मर्म को समझा। विना किसी भाव को प्रकट किये हुए ही उसने कहा, "हम पुराने मुवक्किल ठहरे। उपकृत भी है। शायद सस्ता ही सौदा पट गया हो। इसीलिए कीमत बताना भूल गये हो वे।"

"वे!"—तीव्र चोट से कराह उठा जान्हवी का मन। गौर किया उसने कि रानी ने सारी बातचीत मे कभी वकील साहब का नाम नही लिया। बोली, "हॉ, कीमत तो नही बतायी। पर उनका भी इशारा था और मेरा भी अनुमान है कि सौदा इतना सस्ता नही पडा, जितना लगता है।"

बात मुह से निकल गई तब जान्हवी ने सोचा कि बात का ढग गलत हो गया। रानी जिस तरह विरक्ति से बात कर रही थी, वैसा ही उसका भाव होना चाहिए था। व्यवहार-कुशलता यही होती। स्वभाव का लघुपन प्रकट करती है ईर्षा और रोष की बात। लेकिन बात निकल चुकी थी, वापस ली नहीं जा सकती थी।

विल्वमाला ने उठी-उठती कर कहा, 'बहन जी, अनुगृहीत हूँ आपके दर्शन कर और आपसे बात करके। सस्कार मे आइयेगा जरूर। मै निमत्रण देने आऊँगी।"

माधुरी से बिल्वमाला ने कहा, "तुम भी आना बेटे! और बच्चो को भी लाना।"

"बेटे!"—सम्बोधन माधुरी को हार्दिकता का लगा, पसन्द आया।

नमस्कार कर जब बिल्वमाला चलने लगी तो माधुरी ने शीश नवाकर प्रणाम किया। करुणा ने भी उसका अनुकरण किया।

माधुरी को अपने अक मे भर लिया बिल्वमाला ने और कहा, "सुखी रहो

बेटे ।" माधुरी जैसे अक के लिए उत्सुक थी, उसका हृदय प्रसन्न ही हुआ ।

घर जब जान्हवी पहुँची तब बाबू रूपकिशोर प्रतीक्षा कर रहे थे । "बडी देर हो गयी ?"––उन्होने कहा ।

जान्हवी ने पति के सवाल पर ध्यान नही दिया । बिना रुके, ऊपर जाते-जाते उसने कहा, "तुम्हारी रानी से अचानक भेट हो गयी थी ।"

"कौन रानी ?"––आश्चर्य-विभोर हो बाबू रूपकिशोर ने पूछा । उनके हृदय की नाडी की गति आशका से तेज हो गयी ।

"वही लूकरगज की तुम्हारी मुवक्किल रानी बिल्वमाला, जिन्होने बलुआघाट की कोठी और गाडी दी है ।"––कहते-कहते जान्हवी ऊपर चली गयी ।

माधुरी ने पिता की इच्छा जानकर भेट की बातो को सिलसिलेवार बताया । उसने यह भी बताया कि उनके साथ एक दासी थी जिसे हम लोगो ने उनकी छोटी बहन समझ लिया था ।

थोडी देर चुप रह कर माधुरी ने फिर कहा, "रानी साहिबा किसी बच्चे को गोद ले रही है । हम लोगो को सस्कार-समारोह मे [illegible] के लिए, उन्होने बहुत-बहुत कहा है । वे स्वय निमत्रण देने आयेगी ।"

लेकिन बाबू रूपकिशोर का मन कही और था । अपनी उत्कठा को छिपाते हुए उन्होने पूछा, "और कोई नही था साथ मे ?"

"एक नौकर भी था । वह हम लोगो से दूर ही रहा ।"

"क्या उस बालक को भी देखा जिसे वे गोद ले रही है ?"

"नही । बालक वहाँ नही था ।"

तब जान-मे-जान आयी बाबू रूपकिशोर के । बालक से भेद इस तरह खुलता कि आज जान्हवी न जाने क्या कर बैठती । उनका आशकित 'मन बालक वहाँ नही था' सुनकर कुछ सँभला ।

बाबू रूपकिशोर विचलित हो उठे । जो न होना था––जिसे वे कभी होने नही देना चाहते थे––वह आज हो गया । जान्हवी को पहले से ही रानी के सम्बन्ध मे शक हो गया था––यह वह जान चुके थे । जान्हवी की खिन्नता और उद्विग्नता का कारण भी यही था––यह उन्हे मालूम था । उनका अनुमान था कि जान्हवी

को अभी केवल भ्रम ही है। मगर कहीं विश्वास न बन जाय——इसे वह बचाना चाहते थे। माधुरी ने जो बातें उनको बतायी वे साधारण रूप से विशेष महत्व की नहीं थी। लेकिन जान्हवी का तेवर चढा हुआ था——इसका क्या अर्थ था ?

बाबू रूपकिशोर की शका ने जोर पकडा। वह बेचैन हो उठे। दफ्तर के काम मे मन लगाने की उन्होने कोशिश की।

जान्हवी गुस्से से भरी पति की अवज्ञा कर ऊपर तो चली गयी। पर ऊपर जाकर उसने सोचा कि उसका व्यवहार अच्छा नही हुआ। उसे ऐसा भाव कभी प्रदर्शित नही करना चाहिए था, कम-से-कम बच्चो के सामने। उसका मन ईर्षा-रोष-सताप से जल रहा था। उसने सोचा कि उसकी इस उद्विग्नता का कारण निराधार ही न साबित हो, कम-से-कम उसका कोई प्रमाण तो था नही। फिर व्यर्थ ही पति के प्रति बच्चो के सामने अशोभन व्यवहार क्या उसके लिए समीचीन था ? उसने प्रयत्न पूर्वक अपने मन को सुस्थिर किया और वह नीचे आई। रसोई मे महाराज की सहायता करने लगी।

रात को चाह कर भी वह खाने पर पति से कुछ बोल नही सकी और सोते समय भी, पलँग पर पडते ही उसने सोने का बहाना किया। पलँग पर लेटने के बाद ही वह दिन भर की उत्तेजित, सो गयी।

बाबू रूपकिशोर को कोशिश करने पर भी नीद नहीं आई। आँखे मूँदे वह पडे रहे। जब घण्टो पडे रहने पर भी नीद न आने का नाम नही लिया तब उन्होने पलँग से लगा धीमा लैम्प का प्रकाश जला दिया। योग की पुस्तक उठा ली। पढने की चेष्टा करने लगे। लेकिन पुस्तक के अक्षर काटने को दौड रहे थे। बाद मे किसी प्रकरण मे उनका शून्य मन कुछ लगा भी। तब तक रोशनी के कारण जान्हवी उठ गयी। उसे बोलना ही पडा, 'आधी रात को अगर पढने का मन हो आया है तो नीचे दफ्तर का कमरा खुला पडा है। नीद नहीं आती है तो जहाँ नीद चली गयी है, वही चले जाओ, दूसरो को तो सोने दो !'

बाबू रूपकिशोर स्वर की तीक्ष्णता से सहम गये। कुछ भी बोल नही सके। उन्होने लैम्प बुझा दिया और साँप-छछूँदर वाली व्यथा से भर वे आँखे मूँद सोने की कोशिश करने लगे।

अभी आँखो को झपकी भी नही लगने पायी थी कि पडोस की किसी दीवाल-घडी की टन-टन आवाज पर वह जग गये। घडी ने चार बजाया था। बाबू रूपकिशोर उठ कर पैदल ही त्रिवेणी के लिए चल पडे। विद्यार्थी जब थे तब कभी-कभी पैदल जाया करते थे, वह भी इतना सवेरे नही।

जब नगर से बाहर पहुँचे तो पूर्वाकाश के कोने मे अरुणिमा फट रही थी। पक्षियों का समूह कल कूजन करता हुआ इधर से उधर आ-जा रहा था। मलय पवन बह रहा था। ब्राह्म-मुहूर्त्त की अतिम बेला, सूर्योदय का प्रारम्भ—वर्षों बाद बाबू रूपकिशोर ने सूर्योदय देखा।

त्रिवेणी पर स्नानार्थियो की भीड आ गयी थी। रात भर के जगे, जीवन से थके-माँदे, मन हारे, बाबू रूपकिशोर को त्रिवेणी तट पर भी अभीष्ट एकात नही मिला। अपने असमजस के कारण उन्होने स्नान किया और घर के लिए लौट पडे। पाँव घर की ओर उठना ही नही चाहते थे। घर—प्रेम सुरुचि और आराम की वह पारस जगह, जहाँ आते ही मनुष्य ससार की सभी झझटो को भूलकर सहज ही आह्लाद और सुख की उत्फुल्लता का अनुभव करे—अब घर नही रहा। घर अब उनके अतीत की बात थी—उन्होने सोचा। कौन इसका जिम्मेदार है—मन ने प्रश्न किया? उत्तर था—वे स्वय, उनका प्रारब्ध।

मन हारे, पीडा मे क्लान्त, वे घर पहुँचे तो सवेरे के नौ बज रहे थे। एक-दो मुकदमो के मुलाकाती आ गये थे, मुशीजी आ गये थे। बच्चे कालेज जाने की तैयारी कर रहे थे।

माधुरी ने आकर कहा, "चलिए चाय पी लीजिए।" मुश्किल से वह इतना भी कह पायी। पिता का चेहरा देख उसे बोलने का साहस ही नही हुआ।

नाश्ते के लिए मेज पर बाबू रूपकिशोर आये। उन्होने किसी प्रकार कुछ नाश्ता किया। बच्चो ने भी नाश्ता किया। मेज का वातावरण गम्भीर और मौन रहा। जान्हवी रसोई मे ही लगी रही। आज अपने समूचे विवाहित जीवन मे पहली बार वह मेज पर नाश्ते के समय अनुपस्थित थी।

चाय पीकर बाबू रूपकिशोर नित्य की भाँति दफ्तर के कमरे मे आ बैठे।

माधुरी लेकिन पिता के मन की पीडा का अनुमान कर भाव-विह्वल हो उठी। वह रसोई-घर मे माँ के पास पहुँची।

महाराज से भाव बनाये रखने के लिए उसने माँ से कहा 'माँ, चलो चाय पी लो। मैं रसोई मे महाराज की मदद किये देती हूँ।" पर जान्हवी तो अकारण वहाँ बैठी थी। नाश्ता बनाना कब का समाप्त हो चुका था। महाराज को दिन के और शाम के खाने के बारे मे आदेश दे रही थी। उसने माधुरी को कुछ उत्तर नहीं दिया।

माधुरी ने माँ के माथे पर हाथ रख कर पूछा, "कुछ तबियत खराब है क्या ?"

"नही, अभी आती हूँ।"—माधुरी का भाव समझकर जान्हवी ने कहा।

महाराज को अंतिम आदेश दे वह खाने के कमरे मे फौरन ही आ गई। एक प्याला चाय बनाकर धीरे-धीरे पीने लगी।

माधुरी ने, विलक्षण बुद्धि माधुरी ने, माँ से परिहास के लिए कहा, 'तुम तो कहती थी कि बाबूजी की किसी बात से तुम दु खी नही होती हो ?"

"हाँ माधुरी, लेकिन इन्सान चाह कर भी कुछ बाते सह नही पाता। दोष मेरा ही है, तेरे बाबूजी का नही।"—शून्य भाव से जान्हवी बोल गई।

माधुरी प्रसग अत्यन्त हल्का रखना चाहती थी। माँ की गम्भीरता को देख उसने समवेदना के स्वर मे पूछा, क्या बात हो गयी ? आज बाबू जी भी बेतरह परेशान है। सुबह ही उठ कर पैदल त्रिवेणी चले गये थे।"

"कोई बात नही, माधुरी ! दोष मेरा ही है। वे पुरुष है, मै नारी हूँ। दबना, सहना मुझे ही है। फिर क्यो विवाद बढाना ? जा, तुम्हे कालेज को देर हो रही है।"

"तुम जब तक कुछ खा नही लोगी मैं जाऊँगी नही।"

"अच्छा भाई, तू मानने वाली लडकी तो है नही। मै खाये लेती हूँ।"

जान्हवी ने नाश्ता किया। न - र्न ---ने का उसने नाम ही किया था। नाश्ता बुरा नही लगा।

माधुरी बोली, "मै तो जा रही हूँ। फिर झगडा मत कर लेना।"

' उनसे झगडा कर मै जी सकूँगी ? शरण कहाँ मिलेगी मुझे ? स्त्री की तो पति

ही गति है। उन्ही के चरणो को आज तक पखारा है, उन्ही चरणो की छाया मे अतिम साँस तक रहना है।"

माधुरी अब तक सखी-भाव से माँ से बात कर रही थी। पर माँ की अतिम उक्ति पर उसने कहा, "ऐसी मजबूरी नही माँ, जैसा तुम कह रही हो। हम नारी है तो क्या ?—पर जाती हूँ। फिर कभी इसे सोचेगे।"

माधुरी कालेज चली गई। लेकिन माँ-बाप के रोष के कारण का सही अनुमान उसे लगा नही। उसने सोचा, 'कई दिनो से माँ खिन्न है। कल वह रानी मिली थी। कितनी अच्छी थी वे। कही उनके कारण तो मतभेद तीव्र नही हो गया ?"

अपने भाव पर माधुरी को घोर पश्चात्ताप हुआ। वैसी वात्सल्य और शील की देवी के लिए कुछ अशोभन सोचना, सर्वथा अनुचित लगा। पर माँ-बाप के मतभेद के कारण मे किसी-न-किसी प्रकार रानी का भी सम्बन्ध है, ऐसा ही उसको लगा। एकाएक उसके मन मे यह भाव उठा कि कही वह स्वय ही तो उनके मतभेद का कारण नही ? कौन जाने, सोच कर माधुरी का मन कालेज पहुँचने तक उसी प्रकार खिन्न हो उठा जैसे माँ-बाप का मन घर पर था।

: २० :

जीवन तो नही, पर इसका क्रम चलता ही रहता है। बाबू रूपकिशोर का भी जीवन चल रहा था। पति-पत्नी मे जो मनमुटाव और दूरी की खाई खुद गयी थी, वह चौडी ही होती जा रही थी। लेकिन घर-ससार का काम जैसे जान्हवी पहले करती थी, अब भी वैसे ही कर रही थी। बाबू रूपकिशोर जैसे पहले कचहरी जाते थे, अब भी वैसे ही जाते थे। पति-पत्नी दोनो प्रयत्न पूर्वक अपने को अधिकाधिक काम मे लगाये रखना चाहते थे। अवकाश, विश्राम जैसे उन्हे खाये डालता हो। सोने का कमरा पति-पत्नी का पूर्ववत् एक ही था। पर वहाँ भी, पास पड कर भी, जैसे एक-दूसरे से वे योजनो दूर हो, ऐसा उनका विधान हो गया था।

बाबू रूपकिशोर के मन मे जो कैंसर का रोग जड कर गया था वह बढता जा

रहा था। मन उन्हे काटे खाये जा रहा था। मन कही अगर थोडा-बहुत रमता था तो लूकरगज मे पर वहाँ भी मन अब उन्हे चैन नही लेने देता था। उनका दिन खोया खोया बीतता, रात की नींद हराम हो गयी थी। और जान्हवी ? वह यह न जानते हुए भी कि क्यो यह सब कुछ हो रहा है, अपने मन के अंधेरे से घिरती ही जा रही थी।

बिल्वमाला ने बाबू रूपकिशोर से यमुना-तट पर बहन जी से भेंट की चर्चा की थी। बिल्वमाला ने बहन जी की मुक्त कठ से प्रशसा ही की थी। पर यह बताना वह नही भूली थी कि बहिन जी की बातो से ऐसा लगा जैसे वे सब कुछ जानती हो। बाबू रूपकिशोर के लिए यह सूचना दारुण दुखदायी बनी। अभी तक वह केवल यह नही जान सके थे कि जान्हवी की जानकारी की सीमा क्या है? बिल्वमाला से उन्होने कहा था, "सत्य के प्रकट होने के अद्भुत तरीके है। कोई बात कभी भी छिपती नही। दीवालो के भी कान होते है।"

बाबू रूपकिशोर इसका भी अनुमान नही लगा पाते थे कि जान्हवी को या उसके पिता को यह सब बाते मालूम कैसे हुई ? परन्तु जो न होना चाहिए था, वह हो चुका था। उसको अनहोनी करने का अब कोई उपाय नही था। वे, उनका जीवन, बहुत आगे बढ चुके थे।

शरीर का फोडा जैसे स्थायी दाग बना जाता है उसी प्रकार मन मे पीडित बाबू रूपकिशोर का घर-ससार चलता ही रहा। माधुरी की एम० ए० की परीक्षा समाप्त हो गयी थी। गर्मी की छुट्टियाँ प्रारम्भ होने वाली थी। महेश भी अपने अतिम वर्ष की परीक्षा देकर घर आ गया था। महेश—हमेशा का गुरु-गम्भीर महेश—सदा शात रहता था। जब वह घर मे नही था तब उसका अभाव किसी को नही अखरा था और जब वह छुट्टियो मे घर आया तब जैसे वह घर मे नही हो।

घर आकर महेश को यह समझते देर नही लगी कि घर अब पुराना घर नही। माँ प्रसन्न नही, पिता प्रसन्न नही और माधुरी पर भी विषाद की छाया आ पडी है। घर के आपसी तनाव से केदार और करुणा के भाव-स्वभाव भी सर्वथा वचित नही थे। दुख की छाया मानो उनके ऊपर से भी गुजरी हो। अपने स्वभाव

के अनुकूल महेश ने कारण जानने की उत्कंठा नहीं प्रकट की। पिता को एक वर्ष के बाद पहले-पहल देख कर उसे लगा था कि उनका स्वास्थ्य बहुत ही गिर गया है। वृद्धावस्था के लक्षण स्पष्ट रूप से प्रकट थे। पिता के खिन्न मुखमण्डल से उसका मन भर उठा था। उसने माँ से पूछा था, "क्या बाबू जी बीमार थे?"

मा क्या उत्तर देतीं? उन्होंने कहा था, "हाँ, इधर काम कुछ अधिक था। तबियत कभी-कभी खराब रहा करती थी।"

महेश ने अखबारों में बालिका आश्रम के सम्बन्ध में किये गये पिता के प्रयत्नों के बारे में पढ़ा था। माँ से उसने कहा था, "हाँ, बालिका आश्रम का भी तो काम होगा। सारे देश में उतनी अच्छी दूसरी कोई वैसी संस्था नहीं।"—बात कहीं बढ़ न जाय, इसीलिए जान्हवी वहाँ से चली गयी थी।

माधुरी से पूछा था महेश ने, "तुम्हें क्या हो गया है? ऐसा लम्बा चेहरा तो तुम्हारा था नहीं?" स्वयं ही उसने अपने प्रश्न का उत्तर दिया था जिससे उसकी एकमात्र छोटी बहन अप्रतिभ न हो, "एम० ए० की पढ़ाई थी। बहुत मेहनत करनी पड़ी, क्यों?"

पिता से तो महेश कुछ भी नहीं कह पाया था। खाने की मेज पर वह प्राय उनका चेहरा निहारा करता था। एक हफ्ते के अन्दर ही उसे लगा कि पिता के चेहरे की कालिमा घनी पड़ती जा रही है। लेकिन बहुत सोच कर भी, वह उस कारण का अनुमान नहीं लगा सका जिससे घर का हर प्राणी घुल रहा था।

घर के वातावरण से महेश भी अछूता नहीं बचा। अपनी उमर के अनुसार जीवन-चक्र का कुछ-न-कुछ अदाज महेश को था ही। उसने सोचा कि कालक्रम से सब ठीक हो जायगा, यद्यपि ऐसा होता दिखाई नहीं पड रहा था।

रुड़की में महेश ने गाड़ी चलाना सीख लिया था। गाड़ी चलाने के अभ्यास में उसने अभिरुचि दिखायी। पहले एकाध दिन तो ड्राइवर के साथ निकला। फिर अकेले ही गाड़ी में वह माधुरी, केदार, करुणा को घुमा लाता। कभी-कभी जान्हवी भी बच्चों के साथ जाती।

महेश के आने के दूसरे सप्ताह के प्रारम्भ में ही डाक्टर और श्रीमती दत्ता ज्योत्स्ना और कुमार के साथ मिलने आये। बाबू रूपकिशोर ने हार्दिक प्रसन्नता

से उनका स्वागत किया। जान्हवी का भी उत्साह फूट आया। चाय न पिला कर उन्हे खाने के लिए रोका गया।

जान्हवी और माधुरी रसोईघर मे थी। महेश और ज्योत्स्ना बाहर उद्यान मे बाते कर रहे थे। केदार-करुणा अपने खेल मे व्यस्त थे। कुमार गोल कमरे मे माँ-बाप के सग वकील साहब की बाते सुन रहा था। महेश ने ज्योत्स्ना से पूछा, इस बार घर भर को उदास पाता हूँ। क्या कारण है? कुछ तुम्हे मालूम है?"

"लक्ष्य मैने भी किया है। पर कारण कोशिश कर के भी जान नही पायी। माधुरी से बातो-बातो मे जानने की कोशिश भी की। पर कुछ जान न सकी। तुम्हारी चहेती बहन जो ठहरी।"—महेश ने कृत्रिम क्रोध मे कहा, 'मेरी कौन-सी बात तुम्हे नही मालूम ?

"अजी छोडो, मै माधुरी नही जो मुझे बेवकूफ बना लोगे। पुरुष की बात कभी कोई नारी जान सकी है ?"—ज्योत्स्ना ने परिहास किया।

महेश ने उसी भाव से कहा, "तभी तो माधुरी से मेरी तारीफ की गयी ?"

ज्योत्स्ना चौकी। महेश का इशारा वह समझ गयी। उसने सोचा कि माधुरी ने विनोद-भाव मे जो उससे महेश के स्वभाव के बारे मे बाते हुई थी उसका कुछ जिक्र कर दिया होगा। वह हँस कर बोली, "तो झूठ क्या कहा ? मुझे तो यह हैरानी है कि इतनी देर से तुम सयत भाव से बैठे कैसे हो ? तुम्हारे बैठने का तो निराला ढग है।"

"क्या तुम्हे वह ढग पसन्द नही ? रामबाग मे झूँसी तक तो बेसुध बैठी रही।"—कटाक्ष किया महेश ने।

"अपना दोष मेरे सिर क्यो मढते हो ? तुमने मजबूर कर दिया था और मै डर गयी थी कि इनकार से कही तुम भागती रेल से कूद न पडो।"

"बात बनाने की कोशिश व्यर्थ है। चलो छत पर उसी तरह बैठे।"

"क्या बकवास कर रहे हो ? पिता जी, माँ, चाचा जी, दद्दा सब है। छत पर जाने से क्या सोचेंगे ?"

"तुमने तो लिखा था कि बात सबको मालूम हो गयी है ?"

"केवल यही नही मालूम हुई है कि मै तुम्हारे कान उमेठनी हूँ। वह भी मालूम हो जायगी, चलो पूना।"—हँसते हुए ज्योत्स्ना ने कहा।

"बाबा रे, तब तो मुझे फिर से सोचना पडेगा। अपना दिया हुआ वचन सोचने तक वापस लेता हूँ। जिन्दगी भर कान उमेठवाने का रोग नही पालूँगा।"

"बडे वचन वापस लेने वाले आये है। रुडकी मे कही आंख तो नहीं लड़ गयी?"

"सुजान एक ही वार आँखो के वश मे होता है, ज्योत्स्ना। फिर किसी दूसरी आँख की ज्योति नही चढती।"

"इजीनियर साहब कवि भी है—यह नही मालूम था।"

"साथ का असर हो ही जाता है।"

करुणा आ गयी। ज्योत्स्ना से बोली, "जीजी, एक तितली पकड दो। मुझसे पकडी नही जा रही है।"

"तेरे दद्दा तितली पकडने मे सिद्ध है। इनसे कह!"

करुणा ने दादा से कहा, "दादा, एक पकड दो। जीजी से फिर बाते कर लेना।"

"करुणा, मैने एक ही तितली आज तक पकडी है। फिर कोई तितली देखो भी नही। यह तितली भी उडकर भागना चाहती है।"

"कहाँ है वह?"—करुणा ने दद्दा के चारो ओर देखते हुए उत्कठा से पूछा।

"वह दिखाई नही पडती।"

ज्योत्स्ना ने कहा, "जाओ न, पकड दो। छोटी बहन को क्यो दुखी करते हो?"

महेश उठकर फूलो की क्यारी मे तितली पकडने की कोशिश करने लगा। ज्योत्स्ना भी आकर पास ही खडी हो गयी। अन्दर से माधुरी आ गयी।

"क्या हो रहा है?"—उसने पूछा।

"तुम्हारे दद्दा, करुणा के लिए तितली पकड रहे हैं। सुना बडे सिद्धहस्त है इस फन मे।"—ज्योत्स्ना ने विनोद से कहा।

"सिद्धहस्त न होते तो इतनी आसानी से इस इन्द्रधनुष-सी तितली को पकड पाते?"—माधुरी ने ज्योत्स्ना की ओर देखते हुए मुस्करा कर कहा।

महेश ने क्यारी से ही कहा, "यह उडने वाली ही है, माधुरी !"

"घबराओ नही। पर काट दिये है तुमने। चाह कर भी अब नही उड सकती।" —माधुरी ने भाई से परिहास किया।

कुमार आ गया। महेश ने उससे कहा, "बडी मुसीबत मे पड गया हूँ। आओ तुम्ही एक तितली पकड दो। मुझसे तो पकडाई नही देती।"

"मै तो तितली पकडता नही, महेश ! लेकिन तितली पकडना कौन-सी बात है ?"

फूलो की क्यारियो मे आते ही चुपके से उसने एक तितली पकड ली, करुणा को दे दी। प्रसन्न मन वह चली गयी। केदार ने भी एक पकड ली, दोनो खेलने लगे।

ज्योत्स्ना ने माधुरी से कहा, "देखो दद्दा ने कितनी आसानी से पकड ली।"

माधुरी ने परिहास मे योग नही दिया। उसका चेहरा एकाएक गम्भीर हो उठा।

चारो आकर उद्यान मे आराम-कुर्सियो पर बैठ गये।

अन्दर गोल कमरे मे डाक्टर दत्ता कह रहे थे, "महेश अब क्या करेगा ? सुना पूना मे किसी बाँध की योजना है। उसमे स्थान मिल गया है। परीक्षा-फल निकलते ही नियुक्ति-पत्र वहाँ से आ जायगा।"

"वह तो अस्थायी नौकरी होगी ?"—श्रीमती दत्ता ने पूछा।

"हाँ, पाँच वर्ष का काम है। उसने स्वीकार कर लिया है। बाद मे कुछ और करने को सोच रहा होगा।"—बाबू रूपकिशोर ने बताया।

"सरकारी विभाग मे क्यो नही जाना चाहता ?"—डाक्टर दत्ता ने पूछा।

"कहता था वेतन कम है और सरकारी विभाग का जीवन उसे पसन्द नही।"

"मुझे भी पसन्द नही। सरकारी आदमी बडा रूढिगत हो जाता है। उसमे पेंशन का लाभ जरूर है, और तो बेकार है।"—बाबू रूपकिशोर ने कहा।

डाक्टर दत्ता ने समझ कर कहा, "ठीक ही है। देश मे योजनाओ का क्रम अभी बरसो तक चलता रहेगा। इजीनियरो की सरकारी या व्यक्तिगत क्षेत्रो मे

हमेशा जरूरत रहेगी। दूसरे [illegible] बडा महत्व है। हमारे देश मे भी वह दिन आ गया है।"

श्रीमती दत्ता ने बात काटते हुए पूछा, "माधुरी क्या करना चाहती है?"

"माधुरी ने अभी तक कुछ निश्चित नही किया है। शायद परीक्षाफल निकलने के बाद वह कुछ तय करे।"—बाबू रूपकिशोर ने गम्भीर स्वर मे कहा।

"ज्योत्स्ना तो कहती है कि वह अब पढेगी नही।"—श्रीमती दत्ता ने पुन कहा और बोली, "माधुरी और ज्योत्स्ना अभिन्न है।"

कहना तो नही चाहते थे पर कह गये बाबू रूपकिशोर, "हाँ दोनो ने भूल-भुलैया प्रस्तुत कर दिया है।"

"किस तरह?"—पूछने जा रही थी श्रीमती दत्ता कि जान्हवी आकर बोली, "खाना मेज पर लग गया है।"

सब लोग खाने के कमरे मे आये। बच्चे भी बाहर से आ गये।

खाना मेज पर बडे रुचिकर ढग से सजाया गया था। सबने बैठकर अपनी-अपनी तश्तरी मे स्वय विविध खाद्य पदार्थ परोसे। मूली और गोभी के पराठे थे।

"क्या पराठो का स्वाद है!"—श्रीमती दत्ता ने चखकर कहा। उन्होने माधुरी से पूछा, "क्या तुमने बनाया है?"

"नही, महराज ने बनाया है। माँ ने सारी विधि बता दी।"—माधुरी ने कहा।

जान्हवी ने उत्साह से बताया, "माधुरी ने मटर-पनीर बनाया है। कितना अच्छा बना है। शोरबे का जायका खूब है।"—फिर आगे कहा, "हमारा महराज पश्चिमी और भारतीय भोजन बडी ही कुशलता से पकाता है। महराज कूचबिहार के साथ लदन, पेरिस, आमस्टर्डम आदि विश्व की कई राजधानियो मे हो आया है। पाक-कला मे पारगत है।"

"खाना बहुत ही बढिया बना है और माधुरी की मटर-पनीर तो जीभ से छूटती ही नही। खूब खाऊँगा।"—डाक्टर दत्ता ने सप्रेम कहा।

"खा तो रहे नही है चाचा जी? अच्छी बनी होती तो खाते नही?"—माधुरी ने एक पराठा उनकी थाली मे डालते हुए कहा। "इस सलाद पर किसी

का ध्यान नही गया।"—मटर-आलू और कई प्रकार की सब्जियों के सलाद के डोंगा को बढाते हुए बाबू रूपकिशोर ने कहा।

"सलाद तो खूब है। नयी चीज है। सब्जी और चटनी का भी स्वाद दे रहा है। क्या है यह ?"—श्रीमती दत्ता ने पूछा।

जान्हवी ने उत्तर मे सलाद को मेज पर अपने आगे बढाते हुए कहा, "महराज इसे रशियन सलाद कहता है। बडा स्वादिष्ट होता है। लेकिन बनाने मे बडा वितडा करना पडता है और इसमे मिलाने के मसाले और 'सास' तो महाराज ही बना पाता है।"

श्रीमती दत्ता ने माधुरी की ओर देखते हुए कहा, "तुमने पश्चिमी ढग का भोजन बनाना तो सीख ही लिया होगा ?" फिर उन्होने सच्चे भाव से कहा "इतनी चीजे, इतनी जल्दी, बहन जी, आपने भी कमाल कर दिया।"

"अब तो महाराज भी है। नही तो रसोई मे मै किसी को घुसने देने के पक्ष मे नही।"—जान्हवी ने कहा।

डाक्टर दत्ता बोले, "उत्तम बात तो यही है। भोजन ही तो जीवन का आधार है। वह शुद्ध और सात्विक तभी हो सकता है जब प्रेम से अपने हाथ से बनाया गया हो। भारतीय जीवन की यह एक विशेष कला भी है। यह कला हर घर से प्राय लुप्त होने वाली थी। अस्सी-सौ का आदमी भी रसोईया रखना चाहता था। ईश्वर भला करे महँगाई का, कि हमारे घरो की यह पवित्र कला बच गयी।'

ज्योत्स्ना बोल पडी, "पर पिता जी, आपने तो कभी खाना बनाया नही। हमी लोगो के सिर इस कला का पुनरुद्धार क्यो मढ दिया गया है ?"

डाक्टर दत्ता ने पुत्री की बात को समझकर कहा,"मैने तो खाना बनाया है। जब तुम नही थी और मुन्ना नन्हा था, तब हमारे पास नौकर नही था। तुम्हारी माँ की तबियत जब कभी खराब होती थी तो मै ही खाना बनाया करता था। मैने भोजन बनाने मे महत्वपूर्ण प्रयोग किये। तुम लोगो की तरह इतना समय नही बरबाद करता था। डाक्टर आदमी, समय की कीमत जानता था। एक ही बर्तन मे चावल, दाल, नमक, मसाला, आलू, परवल, गोभी छोड देता था। वह लजीज तहरी बनती थी कि तुम्हारी माँ भी हमेशा तारीफ किया करती थी। क्यो जी,

सच है न यह बात!"—पत्नी की ओर विनोद से देखते हुए उनका समर्थन प्राप्त करने की डाक्टर दत्ता ने कोशिश की।

सभी हँस पडे। महाराज सुन रहा था। उसने कहा, "हॉ साहब, 'हाच-पाच' ऐसे ही बनता है। किसी दिन मै खिलाऊँगा 'हाच-पाच', पिकनिक पर।"

प्रसन्नता की किलकारी फिर फूट निकली। भोजन रुचिकर था, आग्रह से खिलाया गया और सबने बडे प्रेम से खाया। खाने के अन्त मे क्रीम कस्टर्ड की अन्नानास की पुडिग असीम आनन्द दे गयी। श्रीमती दत्ता ने कह ही डाला, "आपका महराज तो खाद्य-पदार्थों मे जादू का-सा स्वाद भर देता है।"

मीठा इतना सबने खाया कि जान्हवी को शक हुआ कि कही शेष न हो जाय और फिर कोई माँग बैठे। पर वैसी दुर्घटना नही हुई।

गोल कमरे मे आकर काफी का दौर चला। जब काफी पीना खतम हो गया और चलने का समय आया तब डाक्टर दत्ता ने बाबू रूपकिशोर से कहा, "आपसे कुछ विशेष बाते है। कब मिले?"

"मुझे भी एक विशेष निवेदन आप से करना है। मिल ही लेगे।"

प्रसन्न मन सब बिदा हुए। उनके जाने के बाद पति-पत्नी जब गोल कमरे मे आये तब बाबू रूपकिशोर ने पूछा, "कुछ पुडिग बची है?"—पत्नी रसोई मे एक तश्तरी भर लायी। खाते हुए बाबू रूपकिशोर ने कहा, "गजब का खाना आज बनाया तुमने। पुडिग तो लाजवाब है।"

जान्हवी ने मगर प्रसग मे कोई उत्साह नही दिखलाया। बाबू रूपकिशोर ने जान्हवी को [illegible] मे बहुत उत्साहित देखा था। शायद आज से पति-पत्नी का तनाव मिट जाय, इसीलिए उन्होने पत्नी की बनायी हुई पुडिग दोबारा माँगी थी। पर जान्हवी का व्यवहार और उदास चेहरा देखकर वह बहुत ही दु खी हुए और चिता मे डूब गये। बाबू रूपकिशोर अब सोचने से प्रयत्न पूर्वक बचा करते थे। यह नही कि उनकी सोचने की शक्ति शेष नही थी, सोचने से उनकी चिन्ता का जाल सुलझने के बजाय और अधिक उलझता ही जाता था। इसीलिए अब वे सोचने से बचते थे और जब सोचने को उनका मन विवश ही हो उठता था तब वह योग-

वाशिष्ठ पढने लग जाते थे। उसमे अगर मन लग जाता था तो वे कुछ हल्के हो जाते थे।

रात को सोते समय भी बाबू रूपकिशोर ने पत्नी से कहा, "ज्योत्स्ना और महेश किस तरह आपस मे घुल-मिल कर हँस-बोल रहे थे!"

पत्नी ने केवल सूक्ष्म जवाब दिया, "हाँ।"

"तुम्हारा क्या ख़याल है?"—बाबू रूपकिशोर ने जान-बूझ कर पूछा। पत्नी ने कोई उत्तर नही दिया।

बाबू रूपकिशोर तब योग-वाशिष्ठ के पन्ने उलटने लगे। उस दिन वे जान्हवी से गोद-सस्कार मे जाने के लिए कहना चाहते थे। पुण्य तिथि निश्चित हो गयी थी। बिल्वमाला की जिद थी कि बहन जी आये। उसने कहा था, "अगर बहन जी नही आयी तो लोग क्या कहेगे? सबको मालूम है कि आप हमारे वकील से भी बढ कर शुभेच्छु है और वकील साहब की पत्नी के न आने की बात अलक्षित नही रह सकेगी। फिर व्यर्थ की चर्चा होगी। और वे बडी है, उनके आशीर्वाद के बिना सस्कार पूरा कैसे होगा?"

तर्क समीचीन ही था। लेकिन बाबू रूपकिशोर अदृष्ट भविष्य से सशकित थे। उन्होने उत्तर मे बिल्वमाला से कुछ कहा नही था।

बिल्वमाला ने तब कहा था, 'मै जाकर स्वय बहन जी से प्रार्थना करूँगी। वे जरूर आयेगी।'

तब भी बाबू रूपकिशोर ने कोई उत्तर नही दिया था।

दूसरे दिन दोपहर के बाद बिल्वमाला निमत्रण देने स्वय आ भी पहुँची। वीरा भी जिद कर साथ आयी।

महेश सामने ही मिल गया। महेश को देखकर बिल्वमाला और वीरा ठगी-सी खडी रही। ठीक शिशु की तरह महेश की शकल थी। बडा होकर शिशु भी ऐसा ही होगा—बिल्वमाला और वीरा दोनो सोचती रही।

महेश ने दो सम्भ्रान्त महिलाओ को देखकर बिना कुछ पूछे उन्हे गोल कमरे मे लाकर बिठा दिया। माँ से ऊपर जा कर कहा, 'दो जनी मिलने आयी है। गोल कमरे मे बैठा दिया है।"

"कौन है ?"

"यह तो पूछा नही ।"

जान्हवी के हृदय ने उत्तर दे दिया था। पर वह सुनना चाहती थी महेश के मुँह से कि शायद उनका अनुमान गलत हो ।

जान्हवी ने कहा, "तुम उनके पास बैठो । मै अभी आयी ।"

महेश नीचे आ गया। जान्हवी ने नयी धुली वायल की धोती बदली। शीशे के सामने जा खडी हुई—अपनी बिन्दी सँवारी, केश-राशि पर दो हाथ कघे के फेरे, चेहरे पर निहायत ही हल्का, पफ से पाउडर लगाया, शीशे मे अपने को फिर सर्वांग निहारा । वह सुन्दर थी, अभी अधेड नही कही जा सकती थी—उसने मन-ही-मन सोचा । फिर आईने से गर्व का भाव ले वह नीचे आई । गोल कमरे मे प्रवेश करते ही बोली, "ओहो, आप है । महेश पहचान नही सका ।"

महेश से बोली, "तुमने प्रणाम नही किया । आप बलुआघाट वाली कोठी की रानी जी हैं ।"

महेश ने खडे हो, कुछ झुक के हाथ जोड कर प्रणाम किया । बीरा उसी समय जान्हवी के पैरो मे अपना सिर झुकाकर चरण-स्पर्श कर रही थी ।

"महेश, महाराज से काफी भेजो ।"—जान्हवी ने कहा ।

"कष्ट न करे । काफी हम नही पीते ।"—बिल्वमाला ने आग्रह से कहा ।

"आप पहली बार पधारी है। बिना कुछ खाये-पीये कैसे होगा !" फिर जान्हवी ने महेश से कहा, "नीबू का शरबत और फल भिजवाओ ।"

महेश मानो वहाँ से भागने के लिए उत्सुक था, तत्क्षण चला गया । थोड़ी देर मे महाराज शर्बत और फल की तश्तरियाँ रख गया ।

बिल्वमाला ने शरबत का गिलास उठा लिया, "आपकी आज्ञा है । पर आप भी ले । बीरा तो यहाँ पीयेगी नही । अन्दर कही चली जायेगी ।"

जान्हवी ने महेश को बुलाकर बीरा को भीतर ले जा नाश्ता कराने का आदेश दिया । फिर एक सतरा छील उसकी फाँके एक तश्तरी मे रखकर बिल्व-माला की ओर बढाया ।

आग्रह को अग्राहय न कर बिल्वमाला ने सतरे की दो-एक फाँकें उठा ली ।

बीरा को महेश खाने की मेज़ पर ले गया। महेश बीरा की उपस्थिति में कुछ सशंकित सा-था। बीरा रह-रह कर उसकी ओर ध्यान से देखती थी। यह उसे सर्वथा अशोभन लगा। ऐसा व्यवहार एक सम्भ्रान्त युवती से वह अक्षम्य समझता था। लेकिन माँ का आदेश-पालन कर उसे नाश्ता कराना ही पडा।

नाश्ता के लिए जान्हवी ने जो प्रेम-भरा आग्रह किया था उससे बिल्वमाला ने भी सोचा कि बहन जी आज रुष्ट नही, कम-से-कम जैसी वह पहली भेंट मे थी, वैसी कदापि नही। वह छिप-छिप कर अनायास ही जान्हवी को देखती रही। केश-विन्यास, मुख-श्री, शरीर का गठन और उभार, हाथ की लम्बी-सुन्दर उँगलियाँ, त्वचा का श्वेत-धवल वर्ण, पाँवो की पुष्ट पिण्डलियाँ, सबसे जान्हवी की सुन्दरता झलकती थी। स्वभाव भी आज सौहार्द-शील का ही था। अतिशय विनय के स्वर मे बिल्वमाला बोली, "बहन जी निमत्रण देने आयी हूँ। अगली चतुर्दशी को गोद-सस्कार है। बच्चे को आप आशीर्वाद देने जरूर आइयेगा।"

जान्हवी भी ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार बिल्वमाला ने उसको देखा था, बिल्वमाला के शरीर की सुडौलता और रूप की मन-ही-मन प्रशसा कर रही थी। बिल्वमाला के आग्रह पर बोली, "आपने ऐसी बात कही है कि आने के लिए मना किया ही नही जा सकता। लेकिन वकील साहब से तो आपने पूछा लिया है ?"

"मै क्यो पूछती ?"—बिल्वमाला ने जान्हवी का परोक्ष भाव निवारण करने के लिए प्रेम से ही कहा।

"मुझे तो उनकी आज्ञा जरूरी है। शायद आप भी उन्ही की राय से काम करती है।" फिर यह सोच कर कि बात ठीक नही निकली, उसने उसी साँस मे जोडा "कम-से-कम मुकदमो मे।"

बिल्वमाला उक्ति से घबरा उठी थी। आखिरी अश सुन कर आश्वस्त हो बोली, "मुकदमो की बात और है।"

"लेकिन यहाँ तो सारा जीवन ही मुकदमा है। आप तो समझती ही है।" जान्हवी कह गई। बिल्वमाला सुनकर पल भर को अप्रतिभ हुई। जान्हवी को भी लगा कि उक्ति के शब्द फिर अनुचित रहे। उसने बात काट कर कहा, "अच्छा,

रानी साहिबा, अगर विपरीत आदेश नही मिला तो आऊँगी ।"

"वकील साहब आपकी बात न माने, यह क्या सम्भव है ?"—बिल्वमाला ने धीरज और शालीनता से ही कहा ।

"वकील साहब की मै पत्नी हूँ, आप मुवक्किल है। शायद मै उन्हे कुछ अधिक जानती हूँ ।"

बिल्वमाला बात को बढाना नही चाहती थी। अपने भाव को सँभाल कर उसने कहा, "बहन जी, वैसे तो आपको आज्ञा लेने की जरूरत ही नही और जब आप कहेगी तो वे नही कैसे कह सकेगे ? मै तो आठ बजे सवेरे तक ही प्रतीक्षा करूँगी। अगर तब तक आप नही पहुँची तो मुझे स्वय फिर आना पडेगा।" —बिल्वमाला का स्वर सच्चे अनुनय का था ।

"अच्छा, जैसी आपकी आज्ञा ।"

"हाँ बच्चो को साथ लाना न भूलियेगा। महेश को भी लाइयेगा। कब आया यह ?"

"दस-बारह दिन हो गये ।"

माधुरी ज्योत्स्ना के घर गयी थी, तब तक आ गई। न मालूम किस भावना मे डूबती आ रही थी। गोल कमरा खुला पाकर अन्दर आ गयी। देखा तो रानी साहिबा थी। माधुरी ने बिना कहे ही प्रणाम किया। बिल्वमाला ने उठकर माधुरी के सिर पर हाथ फेर आशीष दिया और पूछा, "कहाँ गयी थी ?"

"एक सहेली के यहाँ चली गई थी, आप कब आई ?"

"निमत्रण देने आयी हूँ। आना जरूर बहन जी के साथ और केदार-करुणा को भी लाना न भूलना। दादा को भी लाना।" फिर जान्हवी से उन्होने पूछा, "सुना महेश बडा चुप्पू लडका है।"

बीरा तब तक आ गई। बीरा को देख कर रानी ने कहा,"अब आज्ञा दे। एकाध जगह और जाना है।"

बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये वह उठ खडी हुई। करुणा केदार को न देख कर बोली, "वे अभी आये नही ?"

"स्कूल गये है। आते ही होंगे।"—माधुरी ने कहा और आग्रह किया, "बैठिए न थोडी देर।"

"नही बेटा, अब चलने दो। फिर जब भी याद करोगी मै आ जाऊँगी। तुम लोग आना न भूलना।"—बिल्वमाला का आग्रह स्वर मे बिल्कुल साफ था।

मकान के बाहरी फाटक तक जान्हवी छोडने आयी। छोडते समय बिल्वमाला के प्रति उसके हृदय मे भी सौहार्द का भाव ही था।

रिक्शा खडा था। रानी जब बैठने लगीं तो जान्हवी ने कहा, "कार देकर स्वय रिक्शे मे चलती है। कितनी दयालु है आप!"

बिल्वमाला विनोद मे किंचित मुस्करायी, पर बोली कुछ भी नही। रास्ते मे बीरा ने कहा, "घर मे खाने का कमरा, बच्चो का अलग कमरा, दफ्तर अलग, मेहमान-कमरा अलग है। सभी कमरे सादगी, पर सुरुचि से सजे है। मकान का वातावरण अरामदेह और प्रसन्नता का है।"

"साहब है, अँगरेजी ढग से रहते है। क्या तूने सारे कमरे देखे?"

"ऊपर नही गयी। नीचे के ही कमरे देख पायी।"

"महेश ने दिखाया होगा। क्या कुछ कह रहा था?"

"बोली तो जैसे उसके है ही नही। कही राजा भइया भी तो ऐसा गूँगा नही होगा?"

"गूँगा नही है, पगली! बोलता कम है। इजीनियर है, बडा ऊँचा अधिकारी। पूना जाने वाला है। तुम्हे उसके सँग भेज दूँगी। छोटे को मैने ले लिया है, बडे को तू सँभालना।"

पूरा वाक्य न सुनती तो बीरा रानी जीजी के परिहास से काँप जाती। हँसकर बोली, "उन्होने भी मुझे छोटी बहन समझा।"

"मेरी छोटी बहन तो तू है ही। पहले नही भी थी तो राजा भइया के आने के बाद से तो हो ही गयी है।"

"माधुरी आपको देख कर स्नेह से भर जाती है।"—बीरा ने कहा।

"माधुरी उच्च विचारो की लडकी है। राजरानी-सी लगती है। मैने उसे अपनी बेटी मान लिया है। उसका शादी व्याह मै ही करूँगी।"

बिल्वमाला का रिक्शा जब लूकरगज पहुँचा तब फिर बोली, "बहन जी भी हजारो मे एक है । शायद मै उनसे भी कही अधिक कटु होती, अगर उनकी जगह होती ।"

"तुम नही हो सकती हो, रानी जीजी ! हो ही नही सकती हो!"—विश्वास के स्वर मे बीरा बोली ।

घर के फाटक पर धीरा बालक को गोद मे लिए प्रतीक्षा करते मिल गयी। रानी ने शिशु को प्यार-पुलक से गोद मे लेकर छाती से चिपका लिया ।

: २१ :

गोद के सारे कागजात तैयार कर लिये गये । बालक के असली पिता का नाम जेनरल प्रशान्त शमशेर जग बतलाया गया । इस नाम के रानी के रिश्ते के एक भाई दशको पहले अलास्का मे जाकर बस गये थे । फिर वे कभी लौटे नही । अलास्का वे अकेले गये थे । नेपाल की कोई महिला उनके सग गयी नही थी । उन्होने किससे विवाह किया, विवाह किया भी या नही, उनके सन्तान थी या नही, वह जीवित भी थे या नही—यह सब अज्ञात था और जानने की कोई सुविधा नहीं थी । पर कानूनी ढग से इसमे कोई अडचन नही थी । अत कागजात मे नाम देने की कठिनाई नही उत्पन्न हुई । असली माँ का नाम भी कागजात मे देना जरूरी था । बिल्वमाला के सुझाव पर असली माँ का नाम रानी प्रबीरा लिखा गया । सबसे बडी समस्या थी पिता या माँ मे से किसी का गोद-सस्कार मे उपस्थित होकर गोद-दान करने की ।

रानी के पारिवारिक पुरोहित काशी मे रहते थे । उन आचार्य जी का यह मत था कि यदि माँ-बाप स्वय न आ सके तो उन्हे अपने किसी निकट सम्बन्धी को, जो लडके का मामा इत्यादि हो, भेजना चाहिए। बिल्वमाला ने आचार्य जी से कहा, "पर पडित जी, भगवान रामेश्वरनाथ मे रानी प्रबीरा ने मुझे बालक को विधिवत् दान मे दिया ।"

"भगवान रामेश्वरनाथ मे गोद-सस्कार तो नही हुआ। वहाँ समाज के परि-जन-पुरजन, बन्धु-बाधव तो नही उपस्थित थे ?"

"वे तो कह गये है कि वे किसी भी प्रकार आ नही सकते। कोई उपाय बताइए।"——चिन्तित होकर बिल्वमाला ने अनुनय किया।

"शास्त्रो मे उपाय कुछ-न-कुछ होगा ही। मै आज पुस्तक देखकर निर्धारित करूँगा।"

शाम को आचार्य जी ने बताया कि शास्त्र मे एक जगह आया है कि ऐसी परिस्थिति मे माता-पिता की सोने की मूर्ति बनाकर मण्डप मे उनके स्थान पर [illegible] ब्राह्मण को दान मे दे दी जाय तब सस्कार शास्त्र-सम्मत हो सकता है और इस सस्कार मे तो भगवान रामेश्वरनाथ स्वय साक्षी है। उनकी स्वर्ण-मूर्ति भी बनाकर उन्हे मन्त्रो द्वारा सस्कार-समारोह में आह्वान किया जायगा।

मूर्तियो के निर्माण का आदेश जौहरी को बिल्वमाला ने प्रसन्नतापूर्वक दे दिया।

बालक का अभी तक नाम नही रखा गया था। बिल्वमाला की राय थी कि बालक का नाम जेनरल सोमेश्वरनाथ रखा जाय। बाबू रूपकिशोर को कोई अडचन नहीं दिखलायी पडी। उनकी स्वीकृति पाकर बिल्वमाला ने विनोद से कहा, "कितना उपयुक्त नाम है। महेश, केदार और सोमेश्वर सब भगवान शकर के पर्याय हैं।"

बाबू रूपकिशोर का ध्यान नाम की इस विशेषता पर गया नही था। लेकिन नाम का उन्होने विरोध नही किया।

बिल्वमाला ने बाबू रूपकिशोर से आयोजन के विविध मदों के खर्च का ब्यौरा भी बताया। कितना ब्राह्मणो को दान होगा, कितना भिखारियो को, कितने ब्राह्मण खायेंगे, कितने भिखारी, इष्ट-मित्र, बन्धु-बान्धव, सब अन्दाजन कितने होगे, क्या पकेगा, कौन किस प्रबन्ध मे होगा——यह सब निश्चित हो गया था।

बिल्वमाला ने यह भी बताया, "शहनाई के लिए बयाना काशी भेज दिया है। पर नर्तकी अभी नही तय हो पायी है।"

"नर्तकी क्यो ?"—बाबू रूपकिशोर ने जो आयोजन की विराटता से पहले ही चकित थे, पूछा ।

"हमारे यहाँ जब तक बालक के सस्कार मे कस्बिन न नाचे तब तक लोकाचार उस सस्कार को पूरा नही मानता ।"

"पर नगर के प्रमुख लोग होगे। वे क्या कहेगे ? अब वह जमाना नही रहा।"

"तुम नही चाहते तो नही होगा । लेकिन यह आवश्यक सस्कार है । इसी अभाव पर कही आगे चलकर गोद का विरोध न खडा हो जाय ।"—बिल्वमाला ने उदास होकर कहा ।

उसके स्वर का प्रभाव था कि बाबू रूपकिशोर ने कहा, "जब तुम्हारी इच्छा है तो बुला ही लो ।"

बिल्लमावा ने परिहास किया, "यह काम तुम्हारे ऊपर छोड रखा है ।"

"मै इस पचडे मे नही पडता । वकालत मे भी कभी मैने इस समाज का काम नही किया । न मै ऐसे किसी को जानता हूँ जो उनका परिचित हो ।"

"काश आज जेनरल होते !"—नाटकीय ढग से मुस्कराते हुए उसॉस लेकर बिल्वमाला बोली ।

"क्या ?"—अचकचा कर पूछा बाबू रूपकिशोर ने ।

"जेनरल ने तो इसी मे अपने को बरबाद कर लिया । उनका जीवन-तत्व विवाह के पहले ही लुट गया था । शायद इसी ताप से वह अत्यधिक नशा करते थे, जिससे वह अकाल ही काल-कवलित हुए ।"—बिल्वमाला को उससे जो उसका स्वामी था, अपने अन्तर प्रदेश का गूढतम भेद प्रकट करने मे कोई भी हिचकिचाहट नही हुई ।

धीरा की बात की सचाई का प्रमाण बाबू रूपकिशोर को आज मिला । भावावेश मे रानी का हाथ अपने हाथ मे प्रेम से लेकर उन्होने कहा, "जीवन मे तुम्हे भी कितना दुख झेलना पडा ।"

"दुख की बात न करो इस पुण्य अवसर पर, बहुत दिनो से यह बात बताना चाहती थी। आज प्रसगवश अपने मन के एक भारी बोझ से निवृत्त हुई। तुमसे अब मेरे मन की कोई भी बात गोपनीय नही, जो मेरा परमधर्म था ।"

फिर फौरन ही प्रसग बदल कर पूछा, "हॉ, तो नर्तकी का कैसे प्रवन्ध हो ?"

"आचार्य जी काशी के है। वहॉ वहुत मस्कारो मे उन्होने नर्नकियो की प्रवीणता को देखा होगा। काफी भारी-भरकम, कला मे पारगत को, उन्ही के द्वारा बयाना भिजवा दो।"

"भारी-भरकम क्यो ?"

वाबू रूपकिशोर हॅस कर बोले, "शरीर की स्थूल नही, प्रतिष्ठा मे वडी।"

"एक बात और अभी से कहे देती हूँ। उस रात जा नही पाओगे। शिशु, शिशु की मॉ, रात भर एक ही बिस्तरे पर सोते है। इसका इन्तजाम कर लेना।"

बाबू रूपकिशोर का मन न मालूम कहॉ विरम रहा था। उन्होने कुछ भी कहना उचित नही समझा। विल्वमाला ने मौन को स्वीकृति समझा।

गोद की प्रक्रिया का हिन्दू शास्त्रो मे एक ही विधान है। पर देश-काल, जाति, वर्ण के सस्कार-लोकाचार कुछ-कुछ अलग-अलग होते है। विल्वमाला ने अपनी परम्परा के अनुसार सस्कार का पूरा आयोजन किया।

आयोजन रानी के जीवन का, जब से वह विवाहित हो कर इस घर मे आई थी, पहला था। उसकी सफलता की वे जी-जान से कोशिश कर रही थी। मकान की सफाई हो रही थी, मकान नये सिरे से रँगाया जा रहा था, गमले ठीक कराकर रँगाये जा रहे थे, चमन मे माली कॉट-छॉट कर उसकी मनोहारिता बढा रहे थे, मकान के भीतर कमरे सजाये जा रहे थे, कमरो की चीज-वस्तुओ को साफ कर, पालिश कर, यथास्थान रखा जा रहा था।

वीरा ने बिल्वमाला के शयन-कक्ष मे वाबू रूपकिशोर का जेनरल के समानान्तर टॅगा तैल-चित्र दिखा कर एक दिन पूछा, "यह चित्र यही रहेगा ?"

बिल्वमाला ने बीरा की सूझ की दाद दी। निकट के सम्बन्धी आयेगे। बहन जी का इसी कमरे मे आयोजन किया जा रहा है। उनका सशकित मन चित्र से अन्य किसी प्रमाण की अपेक्षा नही करेगा। परिवार के वकील का चित्र विवाहित पति के समानान्तर प्रतिष्ठापूर्वक लगाया जाय—यह असाधारण रीति थी।

बिल्वमाला ने लेकिन सब कुछ सोचकर कहा, "यह चित्र मेरे जीवन भर और उसके वाद भी कभी यहॉ से हटाया नही जायगा। बहन जी का आयोजन किसी

और कमरे मे करना पडेगा। यह कमरा सस्कार के दिनो मे बन्द रहेगा।"

दूसरा कोई कमरा मकान मे इतना सुन्दर था नही। एक था जिसे जेनरल की मृत्यु के बाद से ही बन्द कर दिया गया था। जेनरल का वह निजी कक्ष था। बाहरी बरामदे के कोने मे वह कमरा खुलता था। पर उसकी सजावट-सफाई का अब समय नहीं था।

रानी ने निश्चित स्वर से कहा, "बीरा, उस कमरे को खुलवाकर, उसकी हर चीज-वस्तु जला दी जाय—आज ही। उसमे से कोई कुछ भी न ले। और उसकी रँगाई और सजावट का नये सिरे से आज ही कारीगर को ठेका दे दिया जाय। एक नया स्प्रिगदार पलँग भी मँगा लिया जाय। उसका गुसलखाना भी चमका कर एकदम नया कर दिया जाय।"

वही हुआ। जब उस कमरे मे एक दिन बाबू रूपकिशोर को बिल्वमाला ले गयी तब सजावट देखकर बाबू रूपकिशोर बोल पडे, "जैसे यह नया निर्मित हुआ हो। फर्नीचर, शीशे, आलमारियाँ सब नयी है। इसे मेरा कर दो।"

"ऐसा न कहो। जेनरल का यह निजी कमरा था। इसका गुसलखाना देखो।"

गुसलखाना देखकर बाबू रूपकिशोर को आश्चर्य हुआ। स्फटिक-सगमरमर का टब, पानी गरम और ठण्डा करने का शीत-ताप-नियन्त्रक यन्त्र, टब इतना बडा कि एक छोटा-मोटा तालाब हो, जिसमे तैरा जा सके, कमरे की फर्श और दीवारो मे अजीब सुन्दर पत्थर की नक्काशी—स्नानगृह एक आलीशान हम्माम सा। दीवालो पर नक्काशी के साथ-साथ रोम की मूर्तियो की सी नारी रूपो की विविध चित्रकारिता जो सजीवता को भी मात करे।

विस्मय-विमुग्ध वे बोले, "कही इस नमूने का गुसलखाना मैने देखा है। याद नही पडता कि कहाँ ?"

"दिल्ली मे तो नही देखा ?"—बिल्वमाला ने याद दिलाने की कोशिश की।

बाबू रूपकिशोर ने बडी देर तक सोचा, पर ठीक-ठीक ध्यान नही आया। बिल्वमाला ने ही तब याद दिलायी, "यह दिल्ली के लाल किले वाले शाहजहाँ के हम्माम के नमूने पर बनवाया गया था। इसे बनाने के लिए पर्सिया से मिस्त्री आया था और जयपुर से कारीगर। इसका सगमरमर वही सगमरमर है जो

ताजमहल मे लगाया गया है। यह कमरा मैने बन्द कर दिया था। अब बहन जी के लिए तैयार कराया है। वे चतुर्दशी को इसी मे आराम करेगी।"

"दीवारो की ये कला-कृतियाँ नयी मालूम पडती है ?"

"लखनऊ के कला-स्कूल के एक प्राध्यापक ने परसो ही इन्हे समाप्त किया है। पहले जो तसवीरे थी, वह बीभत्स थी।"

बाबू रूपकिशोर ने बिल्वमाला को श्रद्धा, प्रेम और उत्कठा-मिश्रित नयनो से देखा—बहुत देर तक।

परम पुण्य तिथि आ गई। सुबह से ही मेहमानो का आना प्रारम्भ हो गया। बिल्वमाला के रिश्तेदार, उसके पक्ष के और जेनरल के पक्ष के परिवार समेत सुबह से ही आना शुरू हो गये। शामियानो, डेरो मे सबका प्रबन्ध था। सबके लिए नौकर-परिचारिकाएँ रखी गयी थी। नाश्ता, खाना, पीने के लिए एक आधुनिक होटल को ठेका दे दिया गया था। सारा घर साढे सात बजे तक ही बाहर के मेहमानो से भर चला।

उद्यान, भवन, शामियाने, सारा मकान का प्रागण, बेल-पत्रो, आम्र-पल्लवो, फूलो और कागज की रग-बिरगी झण्डियो से इस तरह लहलहा रहा था जैसे किस बडे राज्य के महाराज कुमार का विवाह हो। जीवन का पहला उत्सव, रानी ने वैभव, गरिमा और शान-शौकत से भरपूर कर दिया था।

तोरण द्वार बना था, जिस पर रानी के परिवार का [illegible] रहा था। ऊपर द्वार पर रग-बिरगा सुसज्जित मच बना था जिस पर काशी की सुप्रसिद्ध शहनाई प्रभाती के स्वर से वातावरण को गुजायमान कर रही थी। चारो ओर खुशी का कलरवपूर्ण कोलाहल था—एक हगामा था।

ठीक आठ बजे [illegible] आ पहुँची, पति की आज्ञा मे कोई कठिनाई नही हुई। काम-काज मे अति व्यस्त बिल्वमाला ने फाटक पर बहन जी और बच्चो का हार्दिक स्वागत किया। आयोजन का उत्साह और राग-रग देख कर जान्हवी चकित हुई।

उनके लिए प्रस्तुत कमरे मे बिल्वमाला उन्हे ले गयी और बोली, "बहन जी, बडी कृपा की आपने । आज मेहमान-नातेदार भी बहुत आये है । उनमे व्यस्त हूँ । मै ही सेवा मे हाजिर रहती । पर आप क्षमा करेगी । जिस चीज की जरूरत हो, उसके लिए कहला दीजियेगा ।" धीरा को सुपुर्द किया बिल्वमाला ने बहन जी की सेवा के लिए । धीरा तब तक पाँव धोने के लिए चाँदी की परात मे पानी लायी थी । जान्हवी के पाँवो के पास रखकर उसने पाँव धोना शुरू किया ।

जान्हवी ने कहा, "आयोजन तो बडा ही शानदार है ?"

बिल्वमाला ने उत्तर मे कहा, "यही एक अवसर जीवन मे आया है । फिर रहे, न रहे ।"

"भगवान आपको अभी बहुत दिनो तक रखेगा । पोते को बडा कर लेने के बाद ही ऐसा सोचियेगा ।"—फिर जान्हवी ने उपहार का एक सुसज्जित पैकेट देते हुए कहा, "यह बच्चे की माँ के लिए स्वीकार करे । बच्चे के लिए तो पूजा मे ही देने की प्रथा है ।"

बिल्वमाला ने उपहार के पैकेट को माथे से लगाया और चली गयी । अपने कमरे मे आते ही उन्होने उस पैकेट को खोला । तीन बनारसी साडियाँ जरी के काम की, बहुत ही कीमती, हजारो रुपये की, उसमे से निकली । वैसी बहुमूल्य साडी बिल्वमाला को जेनरल की माँ ने विवाह के शुभ अवसर पर दी थी । बिल्वमाला ने मन-ही-मन सोचा 'तीन क्यो ?' पर आश्वस्त हुई वह यह सोच कर कि इतनी बहुमूल्य साडियाँ बिना प्रेम के कभी कोई भेंट कर ही नही सकता ।

बीरा को दिखाकर बोली, "तीन साडियाँ है, हर एक का हिसाब रखा है ।"

बीरा ने कहना चाहा 'हम बहने तो राजा भइया की दासी है ।' पर बिल्वमाला के मुख की गम्भीरता देख कर वह मौन रही ।

उधर धीरा ने पाव पखार कर, बच्चो का पाँव पखारा । महेश-माधुरी ने मना भी किया । धीरा ने उनकी बात नही मानी । केदार-करुणा को यह नया अनुभव था । उन्होने मना नही किया ।

धीरा थोडी देर मे ही नाश्ता और गिलासो मे दूध लायी । सब बर्तन शुद्ध

चाँदी के देखकर जान्हवी ने मन-ही-मन सोचा, यह रनिवास का वैभव है। वे सब नाश्ता करके घर से चले थे। पर शुभ दिन को धीरा ने उन्हे बिना खिलाये छोडा नही।

बच्चे कमरे से लगा गुसलखाना देख आये, जान्हवी ने भी देखा। माधुरी बोली, "रहने के स्तर और सौन्दर्य प्रिय मनोभाव की दाद देनी पडती है। यह टब क्या है, पूरा तालाब है। और ये दीवारो की कलाकृतियाँ रोम की प्रस्तर मूर्तियो के ढग पर आँकी गयी है। रानी साहिबा कला की पारखी जान पडती है।"

"पारखी, जौहरी तो है ही।"—एक उसाँस लेकर जान्हवी ने कहा। माँ का मनोभाव माधुरी से छिपा नही रहा।

कमरे मे रेडियो था। करुणा ने खोल दिया और कमरे मे पडे सोफे पर लेटे-लेटे केदार के साथ वह सुगम सगीत सुनने लगी।

कमरे मे जान्हवी सुस्थिर बैठ गई तब धीरा ने कहा, "लेट जाइए, मै पाँव दबा दूँ।"

माधुरी हँस पडी। जान्हवी ने कहा, "तुम्हे कष्ट नही होगा ?"

"मेरा सौभाग्य है कि आपके चरणो का स्पर्श मुझे मिला है।"—कह कर वह पाँव दबाने लगी।

महेश मौन बैठा स्नानगृह के हम्माम के बारे मे सोच रहा था। धीरा पाँव तो दबा रही थी जान्हवी का, पर बार बार गौर से महेश को देख लेती थी। महेश को यह बहुत बुरा लगा। इस घर की हर दासी का ऐसा अशोभन व्यवहार वह समझ नही सका।

दस बजे से सस्कार की शुभ घडी प्रारम्भ होती थी। तब तक नगर के निमत्रित अतिथियो से विशेष निर्मित पण्डाल भर गया। सम्भ्रात नागरिक, महिलाएँ, बच्चे ब्राह्मणो का दल-का-दल, भिखारियो का दल-का-दल—सैकडो लोग एकत्र थे। दरबारी शामियानो का विशेष पडाल बनाया गया था जिसमे यज्ञ की वेदी और हवन-कुण्ड बने थे। ब्राह्मणो के बैठने के लिए एक ओर दरी-कालीन बिछे थे। भिखारियो का दल पडाल से बाहर, ठीक ब्राह्मणो के पीछे था। यथास्थान सब बैठ गये।

बाबू रूपकिशोर ठीक पौने दस बजे अरविन्द के साथ मण्डप मे पहुँचे। सोफो

की प्रथम पक्ति मे जेनरल और सम्मानित अतिथियो के बीच उनके परिवार वर्ग का स्थान पहले से ही सुरक्षित था। धीरा जान्हवी और बच्चो को मण्डप मे ले आयी। बाबू रूपकिशोर के साथ ही सब बैठे।

माधुरी ने चुपके से माँ से कहा, "ये सारे फौजी जेनरल क्या नेपाल से आये है ?"

पिता ने सुन लिया। उत्तर मे कहा, "ये अधिकतर के राज-परिवारो के निष्कासित सदस्य है। ये पैदा होते ही जेनरल कहलाते है। आज के शिशु को भी तो पदवी जेनरल की है।"

'आज के शिशु की पदवी भी जेनरल की है।'--पति के बगल मे बैठी जान्हवी ने गौर से सुना।

ठीक दस बजे काशी के पुरोहित जी के आचार्यत्व मे वेदमत्रो की स्वस्ति-ध्वनि प्रारम्भ हुई। दर्जनो पण्डितो के समवेत स्वर से साक्षात वेद भगवान का समा वँध गया। आधे घण्टे बाद भगवान रामेश्वरनाथ की सोने की मूर्ति की पूजा प्रारम्भ हुई। फिर असली माता-पिता की वेदी पर सोने की उनकी मूर्तियाँ रखी गयी। आचार्य जी ने उपस्थित अभ्यागतो को बताया कि भगवान रामेश्वरनाथ के दरबार मे गोद-दान देने के बाद माँ-बाप ने अलास्का से दान-मत्र भेजा है, वे स्वय नही आ सके। उनके स्थान की पूर्ति ये स्वर्ण-प्रतिमाएँ कर रही है।

रानी बिल्वमाला शुभ्र रेशम के परिधान मे अन्य रानियो के साथ मण्डप मे आ रही थी। पीछे बीरा, धीरा अन्य दासियो, रमणियो का समूह और बालक-बालिकाएँ शिशु को चाँदी के पालने मे बैठा कर लिए थी। शिशु राजकीय परिधानो मे सजा अत्यन्त ही भव्य दिखायी पड रहा था। सारी सभा की आँखें शिशु की पालने पर आ टिकी।

वेद-ध्वनि और पूजा का कर्मकाड घण्टे भर तक चलता रहा। फिर आचार्य ने रानियो और परिचारिकाओ की सहायता से असली माँ-बाप की स्वर्ण-प्रतिमा से शिशु को छुआ कर रानी बिल्वमाला की गोद मे रख दिया। पडित-ब्राह्मणो का स्वस्ति-गान आकाश को गुजायमान कर चला, नगारे बज उठे, बन्दूको की तड-तड़ाहट छूट पड़ी, ब्राह्मण, भिखारी, जय-जयकार कर उठे।

पूजा का कर्मकाड जब समाप्त हुआ तब काशी की नर्तकी ने भगवान रामेश्वरनाथ की प्रतिमा के सामने पहले से नियत स्थान मे नृत्य कर शिशु को स्वर्ण पुष्पो की माला पहिनायी। चारो ओर से गुलाब-पत्रो के दल-के-दल की वर्षा हो पडी। गुलाब की सुवास से पडाल भर गया।

सस्कार की अतिम क्रिया आचार्य की घोषणा थी, "आज से यह राजपुत्र जिसका नाम जेनरल सोमेश्वरनाथ है, रानी बिल्वमाला धर्मपत्नी स्वर्गीय जेनरल रणधीरेश्वरनाथ, गगन-मडल शिरोमणि, का सुपुत्र नगर के सम्भ्रान्त नागरिको, बान्धवो, परिजन-पुरजनो आदि के इस विशाल एकत्र जनसमूह के समक्ष वेदमत्रो का आह्वान कर शास्त्रीय रीति से घोषित किया गया।" चारो ओर हर्षध्वनि-सूचक तालियाँ गडगडा उठी और पण्डित-समुदाय ने मगल प्रशस्ति गायी।

दासी बीरा ने अन्य दासियो की सहायता से जेनरल सोमेश्वरनाथ को पुन पालने मे बैठाया और सम्भ्रान्त अतिथियो के सामने घुमाना शुरू किया। उपहारो की वर्षा हो चली, जो भृत्यगण पीछे सुन्दर रग-बिरगी टोकरियो मे सँभालकर रखने लगे। जेनरल लोग और उनकी रानियाँ शिशु को चूम भी लेते थे।

जान्हवी के सामने जब शिशु आया तो क्षण मात्र को उसकी मुखाकृति देख कर वह सहसा सन्न हो गयी। फिर अपने को सँभाल कर उसने नौरत्न मणियो का एक हार उसे पहना दिया। हार की द्युति से पालना और उसके आस-पास एक जगमग ज्योति बिखर गयी। आस-पास बैठे अतिथि हार देखने को लालायित हो उठे और हार प्रदान करने वाली को देखने लगे।

साढे बारह बजे नगारे पुन बज उठे, शहनाई गा उठी, नर्तकी थिरक उठी, बन्दूके कडकडाहट का तुमुल-घोप कर उठी। यह उत्सव की मङ्गलपूर्वक समाप्ति की सूचना थी।

एक शामियाने मे सम्भ्रान्त अतिथियो के भोजन का प्रबन्ध था। अतिथि खाने बैठे। दूर ब्राह्मणो का दल पक्ति-बद्ध बैठा, उसके बाहर खुले मे भिखारियो का दल बैठा। सम्भ्रान्त मेहमानो का भोजन दो बजे तक समाप्त हो गया। सब जेनरल सोमेश्वरनाथ की मगल-कामना का आशीर्वाद दे-दे जाने लगे। तोरणद्वार पर सबको ठोगो मे यज्ञ का प्रसाद लड्डू दिया जा रहा था।

जान्हवी बच्चो के साथ कमरे मे आ गयी थी । बाबू रूपकिशोर भी आ गये थे ।

और बच्चे तो उत्साह [illegible] लेकिन बाबू रूपकिशोर, जान्हवी और माधुरी भी, अपने-अपने भावो मे खोये मौन थे । केदार तब तक बोला, "गर्मी है । पिता जी नहा लूँ ?"

करुणा ने कहा, "मै भी नहाऊँगी ।"

बाबू रूपकिशोर ने कहा, "नहा लो ।"

रानी आ पहुँची और बोली, "आप लोगो का भोजन अभी आया जाता है।"

बच्चे स्नान करेगे—यह उन्होने सुन लिया था । धीरा को वहाँ न देखकर बोली, "कहाँ चली गई निगोडी । स्नान तैयार करती ।"

धीरा के आने की प्रतीक्षा न कर स्वय ही उन्होने ठण्डा पानी का नल टब मे खोल दिया और बच्चो से कहा, "जाओ तुम लोग, नहा लो । गरम पानी से नहाने का मन हो तो दूसरा नल खोल लेना ।"

जान्हवी से फिर बोली, "बहन जी, गर्मी है । आप भी स्नान कर ले । धीरा को भेजती हूँ ।"

बच्चो को टब मे उछल-कूद कर बडा आनन्द मिला ।

बच्चो के बाद धीरा ने जान्हवी से कहा, "आपका स्नान तैयार कर रही हूँ ।"

जान्हवी ने धीरा की ओर ध्यान से निहारते हुए कहा, "मैने सवेरे ही स्नान कर लिया है ।"

धीरा स्नानागार मे जा चुकी थी । स्नान तैयार कर जब धीरा ने पुन. सूचित किया तब जान्हवी ने कहा, "मै स्नान नही करूँगी ।" उन्होने महेश से कहा, "तू चाहे तो टब मे घुस जा ।"

महेश कुछ कर नही रहा था । समारोह के आयोजन मे कुछ देर तो उसका मन लगा रहा, फिर वह उखड गया था । माँ के आदेश से वह स्नानागार मे घुस गया ।

महेश जब तक स्नान कर आया, भोजन थालो मे आ गया था । नीचे फर्श पर ही सब भोजन करन बैठे । स्नान के बाद महेश की ताजगी देखते ही बनती थी ।

बिल्वमाला परोस रही थी । बडे आग्रह और प्रेम से उन्होने भोजन कराया ।

भोजन की थालियां जैसे गयी वैसे ही मान-मनुहारी सोने की तश्तरी में आया। साथ ही बीरा बालक को—जैनेन्द्र सोनिश्वरनाथ को—गोद में लिये आयी। जान्हवी द्वारा प्रदत्त नवरत्न मणियों का हार उसके गले में था। बीरा ने बालक को जान्हवी के पास पलंग पर बैठा दिया। जान्हवी ने उसे गोद में ले लिया। मण्डप में शिशु को देखकर जो क्षणिक भाव उसके मन में आया था उससे कहीं अधिक दर्द उसे इस बार उसे हुआ, लगा कि जैसे बिच्छू ने डंक मारा हो। उसका अन्तर पीडा से कराह उठा। बच्चे का चेहरा गौर से देखकर उसने महेश की ओर देखा। हूबहू वही नाक-नक्शा, अलबम में सुरक्षित महेश के बचपन की तसवीर जैसे बच्चे से उतारी गयी हो। जान्हवी का मन भाव विशेष से कांप उठा। वह प्रयत्न करके भी अपने भाव को छिपा नहीं सकी।

पति सामने बैठे थे। जान्हवी ने एक बार आंख उठा कर उनको भी देखा। वह पत्थर की मूर्ति-से प्रतीत हो रहे थे। मन के भाव—असह्य दारुण पीडा को दबाकर शालीनता वश जान्हवी ने शिशु को आशीर्वाद दिया "युग-युग जियो, जैनेन्द्र साहब। माँ-बाप का नाम रोशन करो।"

उसके स्वर और कहने के ढंग ने बाबू रूपकिशोर के साथ बिल्वमाला को भी चौंका दिया।

बीरा चली गयी थी। वह लौटकर आयी। जान्हवी मन-ही-मन सोच कर बीरा को ध्यान से पल मात्र देखती रही। बीरा के स्वर तब तक निकले, "पुरोहित लोगों में यज्ञ-भाग पर विवाद खड़ा हो गया है। वे झगड़ रहे हैं।"

"फैसला करना आपका काम है, वकील साहब! कृपा कर उनका निपटारा करा दें।"—बिल्वमाला ने भरसक निर्लिप्त भाव से कहने की चेष्टा की। बीरा के लौटते समय वह सोच रही थी कि शिशु को बहन जी के पास यहाँ लाना उचित नहीं हुआ।

बाबू रूपकिशोर शून्य भाव से बैठे थे। उन्हें बहाना मिला, वे उठ कर चले गये।

पति के जाते ही जान्हवी कुछ प्रकृतिस्थ होकर बोली, "आपका आयोजन बड़ा ही सफल रहा। इतना विराट् आयोजन इस कुशलता से सम्पन्न हुआ, यह आप ही के परिश्रम का फल है।"

विल्वमाला ने हार्दिक आभार से उत्तर में कहा, "परोजन का दिन है। ब्राह्मण भोजन अभी भी चल रहा है। अतिथि भी अभी पूरे भोजन नही कर पाये। रात हो जायगी।"—फिर कहा, "आपकी सेवा मे हाजिर न रही, इसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।"

"कितना काम-काज है, हाजिरी की क्या बात ?"—जान्हवी ने प्रेम से ही कहा।

बालक पालने मे पडा किलोल कर रहा था, बच्चो को देखकर अतिशय प्रसन्न था। हाथ-पाँव पटक रहा था। बैठने की भी चेष्टा कर रहा था जो पालने मे सम्भव नही था।

विल्वमाला बालक का प्रसग उठाना नही चाहती थी। पर उसकी प्रसन्न भावना लक्ष्य कर बोली, "बच्चो मे कितना खुश है।"

"अपना-पराया सब पहचानते है।"—जान्हवी ने कहा।

बिल्वमाला ने प्रसग बदलकर कहा, "बहन जी, आपके देखने के लिए सब उपहार यही आ रहे है। पर आपका आशीर्वाद, इस नवरत्नो के हार ने तो सबको चकाचौध कर दिया। मेरे ममिया-ससुर जेनरल साहब और उनकी रानी मेरी ममिया सास, कह रहे थे कि ऐसा हार आज कल अप्राप्य है। पूछ रहे थे कि आपने कहाँ से मँगाया ?"

"बबई से मँगाया था। आपका लडका, क्या मेरा लडका नही है ? उसके लिए यह क्या चीज है ?"

"आपका आशीर्वाद है, बहन जी।"—गुरु गम्भीर ढग से बिल्वमाला ने कहा।

शिशु जेनरल बार-बार करुणा की ओर देख रहा था।

जान्हवी ने एकाएक कहा, "अब आज्ञा दे। हम लोग चले।"

"यह कैसे सम्भव है ? आयोजन के समाप्त होने तक तो आपको रहना ही पडेगा।"—बिल्वमाला ने उत्कठा से विनयपूर्वक कहा।

"आयोजन तो शायद रात भर चले। घर पर भी काम है। आपने बुलाया, आ गयी और आकर परम प्रसन्न हुई। आप भी व्यस्त है। अब चलने दो दे।"

"आपका घर है। आपकी चरण-धूलि की अपेक्षा थी। घर पवित्र हो गया। मगर शाम के पहले तो किसी प्रकार जाना नही हो सकता।"

"जेनरल माँ, राजा भइया को बुलवा रही है।"—आकर धीरा ने कहा

"मेरी चचिया-सास है। मुझे ही जाना पडेगा। मै आऊँगी, तभी जाने की बात होगी।"—कहकर शिशु को गोद मे ले बिल्वमाला चली गयी।

बच्चे पाँव फैलाकर सोफे पर लेट रहे थे। महेश एक ओर बैठा विचार-मग्न था। माधुरी गुम-सुम थी। और जान्हवी सोच रही थी, 'अब सोचने-समझने को क्या बाकी रहा ?'

महेश बोल पडा, "बडे ठाठ से रहती है रानी साहिबा।'

जान्हवी ने, किसी ने भी, कोई उत्तर नही दिया। महेश चुप हो गया।

साढे चार बजे बिल्वमाला लौटी। साथ ही चाय आई। दासियाँ उपहार का सामान भी जान्हवी को दिखाने के लिए लायी। बाहर अभी ब्राह्मणो का, भिखारियो का, भोजन चल ही रहा था। उसका शोर सुनायी पड रहा था।

उपहार एक-से-एक कीमती और सुन्दर थे। वह देखने के बाद चला गया।

बिल्वमाला ने धीरा से कहा, "माधुरी के पिता जी को भी चाय के लिए बुला लाओ।"

धीरा गई और लौट आई। उसने बताया, "वे जेनरल दादा के साथ चाय पी रहे है। पण्डितो का झगडा भी वही पेश है।"

जान्हवी को चाय पीनी ही पडी, इतना दारुण-आग्रह था बिल्वमाला का। बच्चो को रानी ने आग्रह से नाश्ता भी कराया।

चाय समाप्त होते ही जान्हवी उठ खडी हुई, "अब तो आज्ञा दे ?"

बिल्वमाला ने रोका नही। वे उठकर बोली, "फिर चरण-धूलि देने की कृपा कीजियेगा। कोई भूल-चूक अपराध हो गया हो तो क्षमा कर दीजियेगा।"

चलने को उद्यत हुई जान्हवी से बिल्वमाला ने कहा, "एक क्षण और ?'

दासियाँ उपहार का पैकेट लिए आई। पीछे धीरा शिशु को लायी। बिल्वमाला ने जान्हवी का चरण अपने आँचल से स्पर्श कर इस बार उन्हे प्रणाम किया। जान्हवी ना-ना करते हुए भी बिल्वमाला को ऐसा करने से रोक नही सकी। फिर बिल्वमाला

ने बालक का शीश जान्हवी के चरणो पर रखकर कहा, "आप ही लोग हमारे सब कुछ है। इस पर आशीर्वाद बनाये रखियेगा।"

करुणा का आर्त्तस्वर जान्हवी—रोष और पीडा से कुठित जान्हवी—के मन को भी छू आया। बालक को उठाकर प्रेम-पुलक से उसने उसका सिर चूम लिया।

उपहार का एक-एक पैकेट सब बच्चो को और एक जान्हवी को भेट हुआ। जान्हवी जब तक कुछ कहे, बिल्वमाला कातर स्वर मे बोल उठी, "आज के मेरे शुभ दिन पर अस्वीकार का भाव भी मन मे न आने दे। आप ही लोगो का दिया यह सब कुछ है। यह हमारी सच्ची श्रद्धा है और कुछ नही।"

[illegible]। दासियाँ सामान गाडी पर रख आयी। गाडी तक बिल्वमाला छोडने आयी। गाडी चलने के पहले एक भृत्य ने आकर जान्हवी से कहा, "वकील साहब कह रहे थे—आने मे शायद देर हो।"

गाडी चल दी। बिल्वमाला खडी रही जब तक गाडी दृष्टि से ओझल नही हो गयी। तोरण द्वार की शहनाई की गूँज दूर तक गाडी मे सुनायी पडती रही।

घर आकर बच्चो ने पैकेट खोले। सबके लिए कपडे का सूट—कीमती और रुचिकर कपडे, माधुरी और करुणा के लिए साडियो का जोडा, माधुरी के लिए सोने के रत्न-जटित कगन, करुणा के लिए मोतियो के कर्णफूल थे। जान्हवी का पैकेट माधुरी ने खोला। बहुमूल्य साडियो का जोडा, ब्लाउज के सूट का कपडा और असली चमकते हीरो का आकर्षक कीमती हार। माधुरी ने हार माँ के गले मे डाल दिया। हार की आभा कमरे मे प्रकाशित हो उठी।

जान्हवी शून्य भाव मे जग कर अनिच्छा प्रकट करने ही जा रही थी कि माधुरी ने कहा, "माँ, आज माफ कर दो। जो हुआ, कम-से-कम, आज के लिए भूल जाओ।" हँसकर उसने आगे कहा, "जेनरल सोमेश्वरनाथ के लिए। उसका तो कोई कसूर नही।"

जान्हवी ने माधुरी का भाव समझ हार गले से उतार कर फेका नही। पर चेहरा उसका कोयले सा काला ही नही, राख सा सूखा पड गया।

पति आधी रात के बाद तक नही लौटे। लेकिन जान्हवी को अब उनकी प्रतीक्षा नही थी। जिसकी प्रतीक्षा थी वह अचानक आ गयी और वह सो गयी।

सवेरे जब नींद खुली तो आठ बज चुके थे। पति उसी समय ऊपर के कमरे मे पहुँचे और बोले, "जेनरलो ने आने नही दिया। आयोजन ही तीन बजे समाप्त हो पाया। फिर जेनरल-दादा, वृद्ध पुरुष, उन्होने रोक लिया। तुम्हारे नवरत्न-मणिमाला की सब प्रशसा कर रहे थे।"

पत्नी से अधिक पति का भाव यह कहते समय निर्लिप्त था। जान्हवी उठना नही चाहती थी, पर पति से परोक्ष प्राप्त करने के लिए उठकर स्नानागार की ओर चली गयी।

: २२ :

महेश ने प्रथम श्रेणी मे इजीनियरिग की परीक्षा पास की। पूना के निर्माण-सस्थान से उसका नियुक्ति-पत्र भी आ गया था, एक ही महीने मे वह जाने वाला था।

डाक्टर दत्ता बाबू रूपकिशोर से मिले। कुशल-क्षेम के बाद डाक्टर साहब ने असली बात छेड़ी, "महेश अब जीवन मे प्रवेश कर रहा है। मै ज्योत्स्ना के सम्बन्ध मे आपसे निवेदन करने आया हूँ।"

"जानता हूँ डाक्टर साहब! जब महेश और ज्योत्स्ना ने अपना रास्ता चुन ही लिया है तो हमे क्या मतभेद हो सकता है? लेकिन तसवीर का एक दूसरा रुख भी है। उस सम्बन्ध मे आप क्या सोचते है?"

डाक्टर दत्ता ने कुछ देर सोच कर कहा, "आपका इशारा मै समझता हूँ। यह अनहोनी सी बात हो ही गयी है। हम लोगो मे होती नही ऐसी बात। कुछ वर्णो मे यह बिलकुल मान्य है। इस पर विचार करना पडेगा, थोडा समय चाहिए।"

"हाँ, एक गुत्थी बच्चो ने खडी कर दी है। इसे सुलझाने का तरीका भी एक ही है। समाज की मान्यताओ, मर्यादाओ को सोच-समझ कर ही करना ही पडेगा।"
—बाबू रूपकिशोर ने कहा।

"जब हम-आप एकमत है और बच्चे यही चाहते है तो हमे-आपको दोनो

सम्बन्ध स्वीकार करने ही पडेगे । पर अभी कुमार को जीवन मे प्रवेश करना है। महेश ने अपना मार्ग बना लिया है। महेश का सम्बन्ध अब निश्चित हो ही जाना चाहिए। मै ज्योत्स्ना की ओर मे नही कह रहा हूँ। महेश को अपना लडका जान कर, और लडका है ही, कह रहा हूँ।"

"जैसी आपकी इच्छा।"—बाबू रूपकिशोर ने सुदूर भविष्य मे मन की आँखो मे झाँकते हुए कहा।

जान्हवी से उस रात कहा बाबू रूपकिशोर ने, "डाक्टर दत्ता महेश और ज्योत्स्ना के सम्बन्ध के लिए आये थे। उनकी राय है कि विवाह हो ही जाय। माधुरी कुमार के सम्बन्ध मे भी उन्हे व्यक्तिगत रूप से कोई आपत्ति नही है।"

उन्होने पत्नी की ओर देखा। कोई उत्तर न पाकर आगे कहा, "माधुरी कुमार के सम्बन्ध मे सामाजिक मान्यता की ही बात है। हमारे वर्ण के प्रतिष्ठित परिवारो मे ऐसा होता नही। पर ऐसा हो नही सकता, यह कदापि सच नही। मैंने भी स्वीकृति दे दी है। महेश बडा भी है। अब दूर-दराज जा रहा है। फिर हमारी स्वीकृति तो औपचारिक है। [illegible] अपना जीवन-साथी स्वीकार क[illegible] बढ रहा है तो उसके विश्वस्त साथी के लिए उसके सम्बन्ध मे हमे प्रसन्नता ही होगी।"

जान्हवी ने पति की बात पूरी सुन ली, न सुनना सम्भव नही था। कान मे रूई तो वह डाल नही सकती थी। लेकिन उसने उत्तर मे राम-रहीम कुछ भी नही कहा।

थोडी देर जान्हवी के उत्तर की प्रतीक्षा कर बाबू रूपकिशोर ने पूछा, "तुम्हारी क्या राय है?"

जान्हवी ने पति के प्रश्न पर कोई ध्यान ही नही दिया। [illegible] भडक गई थी, उसे दबाकर रखने मे [illegible] लगी थी। पति से बात-चीत करने का अर्थ, उसके हृदय का विस्फोट होना था। फिर उसके अन्तर की आग बाहर आकर क्या रूप धारण करे, किधर और कहाँ फैले, कौन-कौन उसमे झुलस जायँ—यही सब उसकी चिन्ता का कारण था। दुःख और व्यथा का जो वीभत्स र[illegible]। अपने ही जीवन मे अपने ही पति द्वारा देखा था, उसकी छाया बच्चो

पर न पडे—इतना विवेक वह अपने पास बचा रखना चाहती थी। महेश-ज्योत्स्ना, कुमार-माधुरी, के सम्बन्धो को वह कब से स्वीकार किये बैठी थी। उसको स्वीकार न किये बिना कोई चारा ही नही था, अस्वीकार करना अविवेक था। पर फिर को उसके मतामत की क्या आवश्यकता पड गयी ? उसने सोचा, 'यह प्रदर्शन मात्र है। जब पति का वह मन ही खो चुकी, तो उनकी नजरो मे उसका मूल्य ही क्या होगा ? समाज के बन्धनो के कारण कुछ मूल्य उसका शेष भी हो तो आखिर जीवन के सभी काम पति उससे पूछ कर तो करते नही।"

पत्नी को मौन देखकर बाबू रूपकिशोर ने साहस कर कहा, 'क्या बच्चो के बारे मे भी मुझसे न बोलने की कसम खा रखी है ?"

"मेरे मतामत की जरूरत आज क्यो पड गयी ?"—जान्हवी भरी थी, यह स्वर से साफ प्रकट था।

उत्तर एकदम सगत हो—ऐसा नही। बाबू रूपकिशोर ने फिर बिना किसी भाव को प्रकट किये कहा, "महेश अभी तो जाने वाला है। जाडो मे ही विवाह सम्पन्न हो सकेगा।"

जान्हवी ने करवट बदल कर सोने का बहाना किया। पत्नी के भाव से आर्द्र बाबू रूपकिशोर स्वय अपने जीवन की विभीषिका की धुँधली छायाओ मे खोने लगे। और जान्हवी, अनसूया का उपदेश कठस्थ किये हुए जान्हवी, आज पति से विमुख हो रही थी। वह सोच रही थी, 'क्या पत्नी के लिए ही पति परमेश्वर है ? पत्नी पति के लिए केवल अपदार्थ मात्र है। यदि पत्नी के प्रति भी शास्त्रकारो ने कोई कर्त्तव्य निश्चित किया है, जिसे वह जानती नही थी क्योकि मा-बाप ने उसे नारी-धर्म की ही शिक्षा दी थी, तो क्या—उसी कमरे मे दूसरे पलंग पर लेटा हुआ पुरुष अब उसका पति कहलाने का अधिकारी [illegible] है ?" अपनी इस विचार-धारा से जान्हवी [illegible] हो [illegible]। प्रयत्नपूर्वक इस भाव-शृखला को उसने दबाना चाहा। मगर वह असफल रही। उसने फिर सोचा कि वह पिता के घर कुछ दिनो के लिए क्यो न चली जाय। लेकिन जाडो मे विवाह है, वह कैसे जा सकेगी ? फिर अगर जाडो के बाद गर्मी मे [illegible] और फिर उसके बाद केदार का और फिर करुणा का, तब वह इस घर की चहारदीवारी मे, जहाँ उसका एक-एक

क्षण अब काल-सा दूभर लग रहा था, कैसे बाहर निकल पायेगी ? वह भविष्य की आशका से सहम गयी। अब उससे पति के पास नही रहा जा सकेगा—कम-से-कम कुछ दिनो तक—यही उसका निश्चय था। मन का शक विश्वास बन चुका था। कान मे पडी बात को उसने स्वय अपनी आँखो से देख लिया था। अब किसी भ्रम की गुजाइश ही नही थी। सारी उसकी आस्था, सारा विश्वास—रहा-सहा भी—जेनरल सोमेश्वरनाथ के गोद-सस्कार ने जड से उखाड फेका था। उसकी पति-भक्ति, पतिव्रत धर्म, की नींव मे दरार पड गयी थी। इतना बडा धोखा उसे स्वय अपने घर मे, अपने पति से, अपने परमेश्वर से मिला। अनसूया की सीख के पन्नो को वह रामायण से फाड फेकना चाहती थी। पर नही-नही, युग-युग का सस्कार उसकी आँखो से अश्रु की धार बनकर निकल पडा। वह उठी और चुपचाप स्नानागार मे जाकर किवाड भीतर से बन्द कर कुछ देर के लिए फर्श पर बैठ गयी—अपनी पति-भक्ति के भावो की जड मजबूत करने के लिए जो भाव उसके आज तक के जीवन की सचित निधि थे। मन-ही-मन पति के चरणो पर अपना शीश धर वह उनके विरुद्ध उठी मन की हिलोरो के लिए क्षमा-प्रार्थना करने लगी।

जान्हवी पीडित है, यह बाबू रूप किशोर जानते थे। उसकी पीडा की सीमा कहाँ है —उसको वह नहीं जान पाये थे। कुछ-कुछ जान पाया जिस व्यक्ति ने वह माधुरी थी। गोद-सस्कार के बहुत पहले जमुना के तट पर माँ ने रानी बिल्वमाला को प्रणाम करने का इशारा किया था तभी, एक निमिष पल को उसके मन मे अजीब भाव भर आया था। फिर माँ की बेचैनी ने उसे बल दिया और गोद सस्कार मे बालक सोमेश्वर को पहली बार देखते ही उसे सब कुछ ज्ञात हो गया। जीवन के यथार्थ का माधुरी को अनुभव नही था। पर जीवन की गति-अगति क्या होती है, इससे वह परिचित थी, उसने साहित्य पढा था, उसने प्रेम के बारे मे पढा था, विवाह और परिणय की कहानियाँ पढ चुकी थी, जानती थी।

माँ की बातो से, घर मे व्याप्त पीडा और कलह के वातावरण से, माँ के दुःख का उसे सहज अनुमान था। गोद-सस्कार के बाद तो नारी—सवेदनशील

माधुरी ने नारी माँ, के दुख के मर्म को जान लिया था। पर दुख का जो कारण था, उस सम्बन्ध मे एक शब्द भी कहना, एक इशारा भी व्यक्त करना, उसके लिए सम्भव ही नही सर्वथा अनुचित था। ऐसे तो इसके बारे मे सोचना भी उसे अशोभनीय ही लगता था। पर मन के सोचने के स्रोत पर तो आज तक कोई प्रतिबन्ध लगा नही सका। अत वह न सोचना चाह कर भी सोचा करती थी। सोचती क्या थी, सोचना पडता था। माँ की पीडा के अनुमान से माधुरी जीवन मे पहली बार माँ के अत्यधिक निकट आ खडी हुई। एक और बात हुई। स्वय माधुरी अपने बारे मे आशकित हो उठी।

जान्हवी ने एक दिन कहा, "माधुरी, तुमने और ज्योत्स्ना ने साथ-साथ ही परीक्षा पास की। ज्योत्स्ना लेकिन जीवन की परीक्षा मे तुमसे आगे भाग रही है। अगले जाडो मे विवाह निश्चित हो गया है।"

माधुरी ने प्रसन्नता—सच्ची प्रसन्नता—प्रकट करते हुए कहा, "यह तो बडा शुभ समाचार है। ज्योत्स्ना से दावत लेनी चाहिए। दादा से भी।"

"हाँ, दादा से दावत ले लो, उसके पूना जाने के पहले ही। चौथे ही दिन तो जाने वाला है।"

"दादा गये कहाँ है ?"

"कह कर तो गया है कि स्टेशन रेल का समय इत्यादि पता लगाने गया है। पर कही तुम्हारी सहेली के लिए तितली न पकड रहा हो।"—जान्हवी ने प्रेम-विनोद से कहा।

ज्योत्स्ना और महेश उस समय द्रोपदी घाट के पास गगा के एक निर्जन तट पर बैठे थे। ज्योत्स्ना—प्रगलभ ज्योत्स्ना—ने महेश के लिए एक नयी विपत्ति खडी कर दी थी। वह महेश के साथ ही पूना जाना चाहती थी।

महेश ने उसे समझाते हुए कहा, "पागल तो नही हो गयी हो ?"

"इसमे पागल होने की क्या बात है ? तुम जा रहे हो तो मेरे चलने मे क्या आपत्ति है ?"

हँस कर महेश ने कहा, "मै तो जा रहा हूँ नौकरी पर।"

"और मै चलना चाहती हूँ तुम्हारे साथ। इसमे क्या बुराई है ?"

'चलना तो तुम्हे एक दिन है ही । लेकिन चलने के पहले समाज का एक विधान है । वह तो दो-तीन दिन मे पूरा नही हो पायेगा । इस विधान की प्रतीक्षा तो करनी ही है । तुम समझती हो कि मै ही तुम-से इस चॉद के टुकडे को, कभी अपने से दूर छोड सकूँगा ?"

"उस विधान की तुमने अब तक तो कोई चिन्ता नही की । जब मुझे खास तरह मे बैठने को प्रेरित किया, मेरे शरीर की लम्बाई, स्थूलता और सूक्ष्मता को नापा ? "

हॅस उठा, महेश और बोला, "तुम विलकुल पागल हो । अब तो मुझे यह सोचने को वाध्य होना पडेगा कि एक पागल के साथ उस सामाजिक विधान को सम्पन्न करना भी चाहिए या नही ।"

"यह सोचने का अब तुम्हे अधिकार ही नही रहा । मै विधान आदि कुछ नही मानती । पडित द्वारा सस्कृत के मत्रो की ही प्रतिज्ञा एकमात्र प्रतिज्ञा नही । हमारा-तुम्हारा विधान हमारे मनो की प्रतिज्ञा से पूरा हो गया है । मै तुम्हारे साथ पूना चल रही हूँ। अगर विधान का होना भी जरूरी है तो बाद मे लोग करते रहेगे ।"

महेश पहले तो ज्योत्स्ना की बातो को रसिकतापूर्ण व्यग्य-विनोद समझ रहा था । पर ज्योत्स्ना की गम्भीरता से उसे लगा कि बिल्कुल मजाक मे कही गयी वे बाते नही है । वह जानता था ज्योत्स्ना विवाह सस्कार को बौद्धिक रूप से महत्व नही देती है । वह उस सस्कार के मूल पर आघात कर रही थी । एक क्षण के लिए तो उसने भी सोचा कि सस्कार का महत्व ही क्या ? सहसा उसे गोद-सस्कार की क्रियाओ की याद आई । उनका एक सामाजिक महत्व है । विधान के कर्म-काड मनोभावो को समाज के सामने सक्षम रूप से रखने मे समर्थ हो पाते है । महेश किसी भी उलझन से कभी भी खिन्न होने वाले स्वभाव का नही था । उसने प्रयत्न पूर्वक अपना स्वर गम्भीर बनाकर कहा, "अच्छी बात है । मै तुम्हारे विचारो का हार्दिक सम्मान करता हूं । तुम चाचा जी से पूछ लो । वह पिता जी से कह दे और तुम चलने की तैयारी करो ।"

"मुझे बेवकूफ बनाना चाहते हो। उतनी बेवकूफ मैं नहीं, जितना तुम समझते हो।"

"क्यो, इसमे बेवकूफ बनाने की क्या बात है?"—महेश का स्वर अब भी गम्भीर था।

"तुम जानते हो कि मैं पिता जी से यह बात पूछ नही सकती। अपनी जिम्मेदारी मुझ पर टालते हो?"

"ज्योत्स्ना, तुमने तो साहित्य पढा है। मैंने तो जिससे निवेदन—प्रणय निवेदन—करना था, कर दिया। यह मेरा परम सौभाग्य है कि उसने मेरे निवेदन को स्वीकार किया। शायद मैं उसके योग्य कदापि नही था—योग्य बनने की हमेशा कोशिश जरूर करूँगा। पर उसके अतिरिक्त किसी अन्य से निवेदन करना उसका अपमान समझता हूँ। तुम अवश्य चलो। पूछना न चाहो तो उसकी भी जरूरत नहीं।"

"तो भाग कर चलूँ?"—ज्योत्स्ना रोष से बोली।

"ठीक भागने की तो बात नहीं है। और अगर ऐसा भी हो तो साहित्य मे इसके अच्छे-अच्छे उदाहरण मिल जायेंगे।"

"मैं तुम्हे इतना डरपोक नहीं समझती थी।"

"अच्छा, चाचा जी से तुम पूछ लो, पिता जी से मैं निपट लूँगा।"

ज्योत्स्ना का मुँह लाल हो उठा। उसकी जिद वास्तव मे चलने की नहीं थी। वह विवाह-संस्कार को कोई महत्व नहीं देना चाहती थी। इस व्यर्थ की सामाजिक मान्यता के कर्म-काड को वह व्यक्ति के प्रति मूलत अविश्वास का भाव मानती थी। इसी भाव मे यह विनोद-चर्चा उसने चला दी थी। महेश की बात कि वह अपने पिता से पूछ ले, उसको बुरी लग गयी। क्या वह इस बात को अपने पिता या माँ से भी पूछ सकेगी? नही, उसके लिए यह कदापि सम्भव नहीं था, कभी सम्भव नही था। महेश, जिसकी उसने अब तक कितनी बेचैनी से प्रतीक्षा की थी, जिसने उसे प्रेम की अनुभूति दी थी, वह चला जायगा और वह अकारण परीक्षा पास कर भी उस संस्कार की प्रतीक्षा करती रहेगी, जिसमे

उसे गुडिया बनना ~~~ सब उसे हास्यास्पद लग रहा था। पर समाज, विधान का सस्कार पूरा कराये बिना कब मानेगा। ज्योत्स्ना भावो की तीव्रता मे व्यग्र हो उठी।

ज्योत्स्ना के तमतमाते चेहरे को देख महेश ने नाटकीय कला से उसका मुँह हाथो मे ले ऊपर उठाया और अपनी ओर ले गया। अपने होठो को वह बढा ही रहा था कि ज्योत्स्ना उसका भाव समझ झटक कर पीछे हट गयी और बोली, "क्या करते हो ?"

"युग-युग के प्यासे अधरो की प्यास मिटाना चाहता था।"

"अभी यह कैसे सम्भव है ?"—ज्योत्स्ना रोष मे थी।

"तुम तो कहती थी कि सस्कार—समाज के विधान—मे तुम्हे विश्वास नही। या मुझ पर अविश्वास है ?"

"अच्छा बाबा, मै हार मानती हूँ। तुम्हारी ही जीत हुई। लेकिन कुछ ऐसा करो कि यह सब जल्दी हो जाय।"

"इसके लिए काश, तुम मेरी उत्सुकता का अन्दाजा लगा पाती।"

महेश-ज्योत्स्ना मे समझौता हो गया। थोडी ही देर बाद महेश ने पूछा, "कभी माधुरी के बारे मे तुमने सोचा है ?"

"मेरे रहते तुम्हे अपनी चहेती बहन की याद कैसे आयी ?"—ज्योत्स्ना ने क्रोध जता कर परिहास किया। फिर वह महेश की उक्ति पर सोच मे पड गयी।

उसकी प्रिय सखी माधुरी, उसके मँगेतर की चहेती छोटी बहन, उसके बडे भाई से प्रेम करती थी। हँस पडी मन-ही-मन यह ख्याल कर कि माधुरी के भाई से उसे प्रेम और माधुरी को स्वय उसके भाई से प्रेम। यह भूलभुलैया नही तो और क्या है ? वह जानती थी कि उन लोगो मे साधारणतया ऐसा होता नही। लेकिन माधुरी का मर्म भी उसे मालूम था कि उसके भाई के अतिरिक्त अन्य कोई भी युवक माधुरी के जीवन मे अब आ ही नही सकता। सोचा उसने, 'आज क्षणिक वियोग के भावो की कल्पना से वह सामाजिक नियम बन्धन को ठुकरा कर महेश के साथ—अपने प्रिय के साथ—पूना जाने को तत्पर है। और सरोवर की तरह शात माधुरी, जो शायद कभी कुमार से एकान्त

मे मिली भी नही, अब तक कैसे रही, भविष्य मे उनका न जाने क्या होगा ?"

ज्योत्स्ना एकाएक कुछ उदास हुई। लेकिन दूसरे क्षण उसने सोचा कि वह अपने भाई को भी जानती है और अपनी सहेली को भी। उसने कहा, "माधुरी अपना लक्ष्य पा ही जायेगी।"

"शायद सच कह रही हो। लेकिन इसान सोचता कुछ है और भगवान करता कुछ है।"—महेश ने किसी अज्ञात आशका से कहा।

ज्योत्स्ना बोली, "हमारा-तुम्हारा कर्त्तव्य होगा कि हम दद्दा और माधुरी को सुखी होने मे सहायता करे।"

"हाँ, ज्योत्स्ना।"—उसने ज्योत्स्ना के हाथ को अपने हाथ मे ले लिया।

"अच्छा अब चले। पूना मे रोज पत्र लिखना और जल्दी आना न भूलना।"

"जल्दी ही जाऊँगा और तुम्हे लेकर चलूँगा। तुमसे अब कोई भी दूरी सही नही जाती। इस शरीर की दूरी को भी जल्दी ही मिटाना है। काश, हम-तुम केवल आत्मा होते।"

ज्योत्स्ना हँस पडी, "कौन कहता है कि तुम कोरे इजीनियर हो। तुम तो बडे-बडे कवियो को मात करने वाली उक्तियाँ बघारते हो।"

"कविता की वस्तु जो हाथ लग गयी है।"

दोनो उठ खडे हुए।

घर पर महेश से माधुरी ने कहा, "दादा, पार्टी कब कर रहे हो ?"

"क्यो ?"

"दिसम्बर मे लगन तय हो रही है।"

"यह भी कोई पार्टी की बात है। पार्टी तो तब दूँगा जब तेरी लगन तय होगी।"

माधुरी गम्भीर हो उठी, कुछ बोल न सकी। करुणा ने मदद की आ गयी और बोली, "दादा, पार्टी कल सिविल लाइन के होटल मे खायेगे। अभी बताया भी नही कि ज्योत्स्ना दीदी को ही भाभी बनाकर ला रहे हो ? उनको भी पार्टी मे बुलायेगे।"

"अच्छा करुणा, कल तुम सबको होटल मे खाने की दावत दे रहा हूँ।"

माधुरी ने करुणा से कहा, "तू आज ही अपनी ज्योत्स्ना दीदी को खबर कर दे।"

करुणा चौदहवाँ पार कर रही थी। हँसी-खुशी चली गयी। पर फौरन लौट आयी और उसने बताया, "कल दादा की पार्टी नही हो सकती। कल ज्योत्स्ना दीदी के यहाँ शाम को सबको चलना है।"

डाक्टर दत्ता के यहाँ सभी आये। जान्हवी प्रसन्न ही दिखायी देने की कोशिश कर रही थी। जैसे ही ज्योत्स्ना उसे मिली उसने एक मणियो का हार उसके गले मे डाल दिया—माँ की होने वाली बहू को पहला आशीर्वाद।

श्रीमती दत्ता ने अभी इसकी आशा नही की थी। हँस कर बोली, "बहन जी ने सगाई की रस्म आज पूरी कर दी।" पति की ओर देखते हुए बोली, "लो, तुम्हारा एक खर्च तो बचा।"

डाक्टर दत्ता ने पत्नी से प्रसन्न मन कहा, "जिसको लडकी दान कर रहे हैं, वह अगर हम लोगो को नही सँभालेगा तो सँभालेगा कौन?"

जान्हवी ने भी विनोद मे योग देते हुए कहा, "बहन जी, सारे बच्चे अपने ही है। कौन किसे सँभालेगा—यह तो दोनो का कर्त्तव्य बन पडा है।"

"सब प्रभु की इच्छा है। मनुष्य क्या कर सकता है?"—डाक्टर दत्ता ने भाव-मग्न होकर कहा।

महेश ज्योत्स्ना से अलग कह रहा था, "परसो चल रही हो?"

लज्जा की लालिमा कपोलो मे छिपाये वह भाग कर घर के अन्दर चली गयी। आज पहली बार महेश के सामने उसकी लज्जा नही टूटी। डाक्टर दत्ता ने उसे अन्दर से कई बार बाहर आने के लिए कहला भेजा। लेकिन वह नही आयी। श्रीमती दत्ता और जान्हवी भी उसे बुलाने गयी, वह आई नही।

माधुरी गोल कमरे मे चुपचाप बैठे बाते सुन रही थी। कुमार को भी वही बैठ जाना पडा। करुणा इधर-उधर केदार के सँग फुदक रही थी।

डाक्टर दत्ता ने बाबू रूपकिशोर को बताया, "शास्त्री जी ने दिसम्बर की लगन तय की है।"

बाबू रूपकिशोर ने जान्हवी और श्रीमती दत्ता की ओर इशारा करते हुए कहा, "इन शास्त्रियों की सहमति हो तब तो।"

श्रीमती दत्ता बोलीं, "दिसम्बर हमारे लिए उपयुक्त है।" फिर जान्हवी से उन्होंने पूछा, 'आपको तो कोई अड़चन नहीं बहन जी !"

"अड़चन कैसी ?"—जान्हवी का उत्तर था।

उस दिन की दावत जोरदार रही। सब हँसते-खाते प्रसन्न रहे।

खाने के बाद लगभग दस बजे रात को वे घर के लिए रवाना हुए। बच्चे गाड़ी में पीछे बैठे थे। जान्हवी पति के बगल में आगे थी। बाबू रूपकिशोर ने गाड़ी चलाते-चलाते पत्नी से कहा, "विवाह का इन्तजाम अब शुरू हो जाना चाहिए।"

जान्हवी ने लेकिन उत्तर में कुछ भी नहीं कहा। बाबू रूपकिशोर ने कनखियों से पत्नी की ओर देखा। उसके मुख की गम्भीरता और मलिन छाया देखकर फिर आगे कुछ कहने-सुनने का साहस नहीं हुआ।

घर पहुँच कर जब सोने के लिए अपने कमरे में पहुँचे तो जान्हवी के पलंग के पास एक शीतलपाटी फर्श पर बिछी दिखायी पड़ी। उस पर हाथ की सिलाई की मशीन रखी थी। शायद दिन में सिलाई करने के लिए जान्हवी ने ऐसा किया हो और शाम को वह उठा न पायी हो—सोचकर बाबू रूपकिशोर कपड़े बदल पलँग पर लेट गये। जान्हवी ने हुक्का भी लाकर रख दिया।

काफी देर के बाद जान्हवी कमरे में आयी और शीतल पाटी पर लेट गयी।

बाबू रूपकिशोर को झपकी आ गयी थी, वे सोये नहीं थे। उनका मन पत्नी के नये आचरण से सहम उठा। किसी प्रकार उनके मुँह से शब्द निकले, "पलँग ने तो कोई अपराध किया नहीं।"

जान्हवी ने न कोई उत्तर दिया, न हिली-डुली।

बाबू रूपकिशोर ने एक बार स्वयं शीतल पाटी पर आकर जान्हवी को मनाने का सोचा। पर ऐसा वह कर न सके। जान्हवी का दुःख कितना गहरा है, इसे वह अब पूरी तरह समझ चुके थे। उनका हृदय स्वयं जल रहा था। लेकिन जीवन-चक्र ने उन्हें जहाँ लाकर पटक दिया था वहाँ उन्हें कोई रास्ता

सूझ नही पडता था। वे स्वय अपनी नजर मे गिर ही नही चुके थे, उनका अन्तर धधक रहा था और धुएँ की कालिमा उनके जीवन को छाती जा रही थी। बाबू रूपकिशोर पच्चास से कई वर्ष ऊपर के अब हो चुके थे, मन के साथ-साथ शरीर भी साफ जर्जर दिखायी पडता था। क्षीण मन ने शरीर को झुका भी दिया था धनुष सा, मानो जीवन-सग्राम के जूझने के लिए वे अब सीधे नही खडे हो सकते थे। सग्राम से जूझने की भावना भी मिट चुकी थी। उनकी अब एक ही मनोकामना थी——जीवन के चारो ओर बढते अन्धकार मे खो जाने की। इसीलिए इच्छा करके भी जान्हवी को मनाने वे शीतलपाटी पर नही आ सके, न मालूम किस अदृष्ट शक्ति ने उन्हे घर दबाया ओर शून्य निरीह भाव से दु ख के घोर अन्धकार मे वह न जाने क्या कुछ खोजने लगे। नीद भी अब उन्हे आसानी मे नही आती थी। कई-कई रात वे जागते बिता चुके थे।

शीतल पाटी पर जान्हवी को कुछ आराम मिला। पलग तो जैसे उसे काटने दौडता था। जान्हवी तो अपना कमरा ही अलग कर लेना चाहती थी। लेकिन बच्चो का——सयाने बच्चो का घर, उमकी [illegible] न शुरू हो जाय, इसलिए वह कमरा बदल नहीं सकी। पर पलँग जिसकी अधिकारी वह अपने को नही मानती थी, उसने छोड दिया। पति बुरा मानेगे——मन मे यह उठा था। लेकिन बुरे-भले से वह परे हो चुकी थी। 'पति' की भावना भी उसे सदा कुरेदा करती थी। जब वह पत्नी ही नही रही तो पति ही क्या ? पत्नित्व खोकर पति के पलँग पर शरीर के व्यापार से अधिक उसके जीवन का मोल ही क्या रहा ? लेकिन अपने जीवन भर के सँजोये सस्कार और विवेक के विरुद्ध की मन की इस आवाज से वह डरती थी, बहुत डरती थी। इसीलिए अभी प्रदर्शन बाकी था, इसलिए वह कमरा नही बदल सकी। लेकिन उसने पलँग छोड दिया। पति का घर भी काटे खाता था। परन्तु दिसम्बर तक, जब तक महेश का विवाह न हो जाय, तब तक तो जैसे भी हो रहना हो था। आगे जो होना हो, हो—— जान्हवी का निश्चय था।

जान्हवी कभी-कभी अपने मे आ पडती। कितना पति उसे प्यार करते थे। कहा करते थे, 'तुम न आयी होती तो मेरा क्या बन गया होता ?' किस

लिए यह सब तब पति उससे कहा करते थे ? क्या जीवन की सन्ध्या की इस धोखा-धडी, इस प्रवचना को छिपाने के लिए ? क्या सदा से ही पति का प्यार धोखा मात्र था ? वह सिहर उठी इस भाव पर लेटे ही लेटे । सोचा उसने—'क्यो वह जी रही है ? भगवान उसे बुला क्यो नही लेते ?' पर पति से अलग उसे भगवान की भी शरण मिलेगी ?—सस्कार ने पूछा । प्रश्न मन मे अटक गया । कुछ समझ नही पडा उसे । लेकिन एक बात साफ थी, पति ने ही कभी कहा था, 'प्रेम के बिना शरीर का मेल पाप है ।' पति का तो कही अन्यत्र प्रेम है, फिर पलग तो उसके लिए कदापि नही । वह हँस पडी सोच कर कि जिसके लिए सगमरमर के स्नान-टब और चन्दन-चर्चित आबनूस के पलँग है, उसे यहाँ का पलँग कभी भी क्यो पसन्द आया होगा ? कभी भी था, यह अब नितान्त सन्देहात्मक है ।

इस उधेड-बुन के बाद उस रात—शीतल पाटी पर जीवन की पहली रात—जब जान्हवी को नीद आई, तब अच्छी ही आई ।

महेश ट्रेन की सुविधा के कारण दूसरे ही दिन पूना के लिए रवाना हो गया । स्टेशन पर छोडने सभी गये थे । डाक्टर दत्ता, श्रीमती दत्ता, कुमार भी आये थे । ज्योत्स्ना नही आई थी ।

गाडी जब छूट रही थी तो महेश ने माँ के चरणो मे प्रणाम किया । जान्हवी महेश को गले लगा फूट-फूट कर रो पडी । गाडी चले जाने के बाद भी उसके आँसू नही थमे । सबने समझा कि महेश के पहली बार दूर जाने के कारण जान्हवी दु ख से भर आई है । लेकिन माधुरी ठीक समझा कि माँ के मन की पीडा का बँधा जल अचानक रास्ता पाकर ब [illegible] निकला है । कब तक बहेगा और कितना—यह माधुरी नही सोच सकी ।

माधुरी की आँखे भी छलक पडी । उसने माँ को सहारा दिया, चुप कराने की कोशिश की । लेकिन घर पहुँच कर वह स्वय तकिए मे मुँह छिपा कर फूट-फूट कर रो पडी ।

केदार ने माँ से जाकर बताना चाहा । माँ की मुख-मुद्रा देख कर वह कुछ कहने की हिम्मत नही कर सका । पिता से उसने कहा । बाबू रूपकिशोर भागते-

भागते माधुरी के पास आये। उसके पलँग पर बैठ कर छोटे बच्चे की तरह उसका सिर अपनी गोद मे ले स्वय आर्त्त क्रन्दन के स्वर मे बोल उठे, "माधुरी, मुसीबत मे तू भी धीरज खो बैठेगी तो इस घर का क्या होगा, तेरी माँ का और मेरा क्या होगा ?"

पिता की अनुनय भरी पीडा की समवेदना पा माधुरी के आँसुओ की बाढ और तेज हो गयी। लेकिन पिता के निवेदन का मन पर प्रभाव पडा। जो होना था, उचित या अनुचित, वह हो गया, माधुरी ने सुस्थिर होकर सोचा—'अब उसका कर्तव्य पिता के आदेशानुसार घर को उजडने से बचाने का है—सबको सँभाले रखने का है।'

बडी देर तक पिता की गोद मे अपना सिर रखे वह पडी रही। आँसू बह गये। पिता चुपचाप बैठे रहे। जब मुशी जी ने बाहर से आवाज दी तब बाबू रूपकिशोर उठकर दफ्तर के कमरे मे गये और माधुरी जान्हवी के पास पहुँची।

: २३ :

महेश और ज्योत्स्ना का विवाह दिसम्बर मे हो गया। रानी बिल्वमाला भी विवाह मे निमन्त्रित थी और आई भी। बाबू रूपकिशोर ऐसा चाहते नही थे। पर रानी का आग्रह अतीव था। बाबू रूपकिशोर ने कहा था, "सब कुछ तो जानती हो।"

"सब कुछ जानकर ही आना चाहती हूँ। बहनजी मेरे न आने से और दुखी होगी। बहनजी का मन फेरने के दो ही रास्ते है। पहला तो यह कि तुम लूकरगज हमेशा के लिए भूल जाओ। मुझे पहाड-सा दु ख होगा इससे। मगर तुम्हारे लिए, बहनजी के लिए, वहाँ के सुख के लिए, मै तुम्हारे उस जनम मे पॉव पखारने की आशा मे यह जीवन बिता ही लूँगी।"

बाबू रूपकिशोर ने बात काट कर कहा था, "नही बिल्वमाला, मै इतना अधम नही।"

"तब दूसरा रास्ता है वस्तुस्थिति को स्वीकार करना। बहनजी इससे आश्वस्त होगी—मेरा मन कह रहा है। महेश माधुरी के विवाह मे मै यदि न जाऊँ तो लोग क्या कहेगे ?"

"मै कुछ नही समझ पा रहा हूँ, बिल्वमाला ! तुम जैसा उचित समझो करो।" —आर्त्त क्रन्दन था बाबू रूपकिशोर का।

"मैं जो हुक्म दोगे, वही करूँगी। मै हरे-भरे परिवार की दावा बनूँ, यह मेरा तुम्हारे प्रति धर्म नही।"

"नही, बिल्वमाला, मेरा लूकरगज छोडना नीचता की पराकाष्ठा होगी। तुम महेश के विवाह मे जरूर आओ। जो भी हो, भाग्य की रेख को तो मिटाया नही जा सकता।"

बिल्वमाला विवाह मे आई, अप्रकट रूप में विवाह का काफी खर्च-व्यय भी उन्होने सँभाला। जान्हवी ने सब कुछ देखा-सुना, सब कुछ समझा। कुछ भी कहा नही और जब बिल्वमाला आकर उसके चरणो पर लोट गयी थी तब वह —नारी जान्हवी—करुणा से भर भी आई थी। जान्हवी अब बुराई-भलाई से ऊपर थी। महेश के विवाह मे बिल्वमाला के आने का उसके लिए कोई महत्व ही नही रहा, न आना ही शायद अखरता।

बिल्वमाला बहन जी और बाबू रूपकिशोर की ज्वाला को शुरू से ही जानती और समझती आ रही थी। लेकिन विवाह मे माधुरी के शात मुख पर विषाद की रेखा को वह नही समझ सकी। माधुरी के लिए पहली ही भेट से बिल्वमाला के हृदय मे माँ का स्नेह फूट पडा था। माधुरी—सर्वप्रिय माधुरी—को वह मन-ही-मन स्नेह करती थी। उसे दुखी देख वह कातर हो उठी। शायद माधुरी भी घर मे लगी आग मे, जिसका कारण वह स्वय थी—झुलस रही है—उन्होने सोचा।

माधुरी से लूकरगज लौटने के पहले उन्होने कहा भी, "माधुरी बेटे, जीवन दुख का अपार सागर है। जीवन का रोग सबको सताता है। इस दुख के सागर की लहरो को सुख से झेलना ही समझदारी है। इसके लिए प्रयत्न करना पडता है। तुम उच्च शिक्षिता हो, विवेकशील हो। तुम्हे इस प्रयत्न से मुँह नही

मोडना चाहिए । जीवन मे सुख की आशा छोडना प्रयत्नहीन होना है । अपने माता पिता की हर स्थिति से तुम परिचित हो । उसके बारे मे मै कुछ कहने का दुस्साहस किस मुँह से करूँ ? तुमसे आशा है कि तुम इस सर्वग्रासी विषाद से अपने को कीचड मे कमल की तरह ऊपर रखोगी ।"

माधुरी —एम० ए० पास माधुरी—के रानी के प्रति स्नेह की भावना पहली भेंट से ही थी । तर्क ने इसका विरोध भी किया था । परन्तु चाहकर भी वह अपने स्नेह को मोड नही पायी थी । उसे मालूम था कि रानी के कारण ही उसके घर पर विपत्ति के बादल छाये है । लेकिन केवल रानी का ही दोष हो— यह वह स्वीकार नही कर सकी थी । पिता के विरुद्ध वह कुछ सोचने से मजबूर थी । लेकिन सोचने को उसे बाध्य होना पडा था और उस विचार-प्रवाह में रानी के प्रति उसकी समवेदना जाग पडी थी । बिल्वमाला की सीख भरी बातो को उसने ध्यान से सुना और समझा । फिर उसने उत्तर में कहा, "रानी माँ, हर चेष्टा करती हूँ कि सब प्रसन्न हो । परन्तु सारे प्रयत्न असफल होते है ।"

"रानी माँ" सम्बोधन जीवन मे पहली बार बिल्वमाला ने सुना । आत्मीयता और स्नेह के उद्रेक से माधुरी को उन्होने खीच कर अपने अक मे भर लिया और कहा, "बेटे, चाँद-सूरज पर भी ग्रहण लगता है, फिर टल जाता है । उसी की चेष्टा करना सबका कर्तव्य है ।"

माधुरी शात रही और बिल्वमाला उसे देर तक गौर से निहारती रही । फिर पूछा, "बेटे, तुम अब बडी हो । तुमने मुझे रानी माँ कहकर मुझमे विश्वास प्रकट किया है । क्या मै यह जानने की अधिकारी हूँ कि तुम्हे तो कही दूर-दराज का कोई दुख नही ?"

"नही, रानी माँ, तुम्हारे आशीर्वाद से मुझे कोई भी दुख नही ।"

माधुरी कहने को तो निष्कपट भाव से कह गयी । पर उसे विदा होती हुई अपनी चिर सहेली ज्योत्स्ना की याद आई । पूना के लिए प्रस्थान से पहले उसने विनोद से कहा था, "तुमने तो मुझे बेवकूफ बनाकर श्रीमान महेश के गले बाँध दिया । मै भी तुम्हे दद्दा के गले लटकाये बिना नही छोडूँगी और अगली गर्मी मे ही ।"

माधुरी ने अकारण ही पूछा था, "क्या यह उचित होगा ?"

"क्यो नही ? आखिर इसमे बाधा ही क्या है ?"

"तेरा विवाह हो गया है। अगले साल तेरी गोद भरी होगी। तू क्यो अपने बच्चे से मुझे मामी कहलाना पसन्द करेगी ?"

"क्या मामी और बुआ की मर्यादा एक नही ?"—ज्योत्स्ना ने पूछा था।

फिर कहा था, "यह तुम्हारी बेकार की माथापच्ची है, खास कर जब तुम और दद्दा निश्चय कर चुके हो।"

"मेरा तो कोई ऐसा निश्चय नही। तेरे दद्दा का अगर है तो उसे बदलने की कोशिश कर। कही निराशा ही हाथ न लगे।"—माधुरी ने परिहास किया था।

"मै तेरी भाभी ही नही, तेरी अतरग सहेली भी हूँ। मुझे तेरा मन मालूम है, तुम दोनो का निश्चय मालूम है। पूना पहुँचते ही तुम दोनो को मैं बुलाऊँगी और फिर पूना ही कण्व-ऋषि का आश्रम बनेगा।"

माधुरी ने तब ज्योत्स्ना के परिहास मे योग नही दिया था। उसके मन मे अपने घर के नये वातावरण से अपने और कुमार के सम्बन्ध मे एक कल्पनातीत आशका उत्पन्न हो चुकी थी।

रानी बिल्वमाला की बात से वह आशका पुन सजीव हो उठी, यद्यपि उसने यह [illegible] चातुर्य उनको लेकर घर मे फैले दु ख की छाया के विषय मे था।

माधुरी के जवाब पर रानी ने कहा, "कभी कोई बात हो तो मुझसे न छिपाना। तुमने मुझे रानी-माँ बनाया है। अकारण अपने को दु खी मत करना।"

माधुरी ने घर के लिए यह सकेत समझा था। घर की खुशहाली की आशा अब कम थी और हुआ भी ऐसा ही।

महेश और ज्योत्स्ना के चले जाने के बाद एक दिन चाभियो का गुच्छा माधुरी को देते हुए जान्हवी ने कहा, "बेटे, मैं कुछ दिनो के लिए पिता के घर जा रही हूँ, कल ही। यह गुच्छा तुम सँभाल लो।" फिर अलग मे दो चाभी देते हुए बोली, "यह तिजोरी की चाभी है। चाहो तो अपने पिता को दे देना। दूसरी भण्डार-घर की है। वह तुम सँभाल लेना।"

माधुरी ने रोना चाहा। लेकिन क्रोध से भर कर उसने कहा, "माँ, यह तुम्हारा अन्याय है। तुम आज तक तो कभी कुछ दिनो के लिए नाना जी के यहाँ गयी नही। अब ऐसे समय मे हम लोगो को छोडकर जाने की क्या जरूरत पड गयी। आखिर हम लोगो को किसके भरोसे छोडे जा रही हो ?"

"माधुरी, तू सयानी है। केदार-करुणा को अब तक भी तुम्ही ने देखा-भाला है। उन्हे सँभाल ही लोगी। अब वे भी बडे है और मै कोई दूर थोडे ही जा रही हूँ। जब जी चाहे आकर तुम लोग मिल जाना। कुछ दिनो के ही लिए बेटा, मुझे प्रसन्न मन से जाने दो। फिर जाना हो पाये या नही।"

आग्रह का कातर स्वर सुन माधुरी ने माँ को स्थिर नेत्रो से देखा। फिर कहा, "हमलोग तो रोज ही आ-जा सकते है। लेकिन बाबूजी को अकेले छोड कर तुम जाना क्या उचित समझती हो ?"

"क्या उचित है, क्या अनुचित यह कठिन मीमासा है, माधुरी! अब कुछ दिनो के लिए जाने ही दो। मन बडा अधीर है।"

माधुरी माँ के स्वर से विवश हो गयी। शाम को एकात मे उसने पिता को आभूषणो की तिजोरी की चाभी देते हुए कहा, "कल माँ नाना जी के यहाँ जा रही है।"

बाबू रूपकिशोर चौक उठे। जान्हवी अक्सर पिता के घर जाया करती थी। पर सुबह गयी, शाम को लौट आयी। इससे अधिक पिता के घर वह कभी नही ठहरी थी। आज माधुरी की बात से और चाभी से कुछ और प्रकट हो रहा था। कातर बाबू रूपकिशोर चिन्ता के गहन अँधेरे मे जा गिरे। कुछ देर बाद उन्होने माधुरी से पूछा, "क्या तुम सब जा रहे हो ?"

"वह अकेले जा रही है। भण्डार-घर की चाभी भी मुझे सहेज दिया है, गुच्छा दे दिया है। करुणा-केदार के देखभाल को कह रही थी।"

बाबू रूपकिशोर फिर पुत्री से कुछ भी नही कह सके।

रात को नित्य की भाँति जब जान्हवी आकर अपनी शीतलपाटी पर लेट गयी तब बाबू रूपकिशोर भी चटाई पर आ गये और बोले, "जान्हवी क्या मुझे माफ नही कर सकोगी ?"

जान्हवी के मन का अतराल बहुत दिनो से विषाद से इतना भरा था कि अन्य किसी भाव या विचार के प्रवेश के लिए इसमे स्थान ही नही था। पति की चटाई पर आने से वह सशकित तो जरूर हुई। परन्तु मन निस्पन्द रहा। उसे शायद अब न राग था, न द्वेष, न क्रोध, न प्रीति, न उसका मन शून्य था न अशून्य। पति की बात सुनकर उस पर जैसे कोई प्रतिक्रिया ही नही हुई। वह पूर्ववत् लेटी रही।

बाबू रूपकिशोर ने उसके शरीर पर हाथ फेरते हुए फिर कहा, "जान्हवी, गलती हो जाती है। क्या वह माफ नही की जाती ?"

पति के शब्द उसने सुने नही। पति के हाथ का परस उसे एक युग के बाद मिला था। उस परस से भी उसमे कोई भावना नही जगी जैसे वह जड हो—चेतना हीन। उसने पति के हाथ फेरने का विरोध भी नही किया। पति देर तक चुपचाप उसी अवस्था मे रहे। परन्तु जान्हवी उनसे बोली नही।

बाबू रूपकिशोर उसी शीतलपाटी पर पत्नी के बगल मे लेट गए। पति-पत्नी उसी चटाई पर रात भर मौन पडे रहे। बडी रात तक नीद दोनो को नही आई। पति अपने जीवन के उधेड-बुन मे थे और पत्नी शून्य मन पडी थी—जैसे वह पत्थर हो।

सुबह जान्हवी की झपकी पहले खुली। बहुत दिनो पर बाबू रूपकिशोर कुछ सो पाये थे—पति को चटाई पर निद्रामग्न देख उसके जीवन का संस्कार उमड आया। उसकी आँखे भर आयी। पति ने उसे क्या नही दिया—यश, मान, प्रेम, किस सुख की उसे कमी रही। क्या-से-क्या बन गयी वह पिता के घर से पति के घर आकर। पर अब जो उसके जीवन मे एक भारी व्याघात आ खडा हो गया था, उससे वह पति को क्या केवल अपना पति कह सकती थी ? औरो का पति पर अधिकार ही नही, औरो से पति का ससार चल रहा था। उसने सोचा—औरो का पति पर अधिकार भी था, शासन भी। औरो की पति अवज्ञा नही कर पाते थे। यह सब सोच कर उसे असह्य पीडा का बोध हुआ। आँखो से धार बह निकली और वह पति के चरणो मे लुढक पड़ी—पति को जिससे वह पति मानती रहे, उसका विश्वास अटल रहे।

आँखो की बूँदो ने बाबू रूपकिशोर को जगा दिया, वह उठ बैठे। जान्हवी

को रोते देख, उसे अपने अक मे खीच लिया और बोले, "जान्हवी, मै अपराधी हूँ, इसे अस्वीकार करते नही बनेगा। लेकिन कठोर-से-कठोर अपराध भी माफ किया जाता है। मुझे माफ करो, इसकी कोशिश करो।"

पति सच्चाई से माफी माँग रहे है, इससे जान्हवी सचेत हो उठी। उसका नारी दर्प जाग उठा। हृदय के अतर की आग, ईर्षा और विषाद, फिर सजग हो गये। वह बिना बोले पति के आलिगन से मुक्त हो चली गयी। हुक्का भर लायी और फिर स्नानागार मे जाकर अन्दर से उसने किवाड बन्द कर लिया।

स्नानागार मे उसने सोचा, 'क्या उसका जाना उचित है ? जाकर क्या वह फिर लौट पायेगी ?'

'क्यो नही ? पति के अलावे उसकी और कही गति ही कहाँ ?'—सस्कार ने कहा।

'फिर बिना पति की आज्ञा के, उनके अनुनय के विरुद्ध, उसके जाने का मतलब क्या है ?'

कुछ भी उत्तर नही सूझ पडा। मन के किसी कोने से आवाज आई, 'कुछ दिनो के लिए यहाँ से जाना ही अच्छा है। शायद इससे शाति मिले, शायद मन का बोझ हल्का हो जाय। कम-से-कम रात-दिन जिस प्रकार वह जल रही है, उससे तो उसे मुक्ति मिलेगी।'

स्नानागार से निकली जान्हवी का मन कुछ हल्का था। नाश्ते पर सभी बैठे थे। जान्हवी ने माधुरी से कहा, "खाने-पीने मे कमी न होने देना। महाराज पर ही सब कुछ मत छोड देना।"

करुणा-केदार को यह पहली सूचना थी कि माँ कही जा रही है। करुणा ने पूछा, "अम्माँ, नाना जी के यहाँ जा रही हो ?"

"हाँ।"

"मै भी चलूँगी।"—करुणा ने कहा।

"तेरी परीक्षा निकट है। तू यही रह कर पढ। परीक्षा खतम हो ले तब आ जाना।"

बाबू रूपकिशोर की रही-सही आशा पत्नी का निश्चय सुन जाती रही। वह चौक पडे। माधुरी भी चौकी। सोचा दोनो ने कि इतने लम्बे अर्से तक पिता के

घर रहने का विचार है। बाबू रूपकिशोर अपने मन की आशका को शब्दो मे प्रकट भी नही कर सके।

माधुरी को नारी के मान का अभी अनुभव ही नही था। उसने सोचा, 'माँ इतने दिनो तक हम लोगो के बिना रह ही नही सकती है। अभी दुखी है। कुछ दिनो बाद वह आ ही जायेगी।' उसने कुछ कहना उचित नही समझा।

बाबू रूपकिशोर ने किसी तरह नाश्ता समाप्त किया। उनका मन डूब चुका था। बिना कुछ सोचे समझे उन्होने कहा, "गाडी छोड जाऊँ या जाकर भेज दूँ।"—शब्द निकल गये तब उन्हे होश आया कि उन्होने क्या कह डाला।

जान्हवी की आग भडक उठी। उसने कहा, "गाडी जिसकी है उसके लिए छोडे या न छोडे। मै रिक्शे पर या पैदल ही चली जाऊँगी।"

उसके कटु स्वर से सारे बच्चे सहम उठे। स्वय जान्हवी अपने भावावेश पर अप्रतिभ हो उठी। पति के मुँह से, घोर पीडा मे, एक बात निकल गयी थी। उसका उसने बच्चो के सामने इतना कठोर उत्तर दिया।

माधुरी ने वातावरण को हल्का करने के लिए कहा, "बाबू जी गाडी भेज दीजियेगा। मै माँ को छोड आऊँगी। दो-तीन दिन मे ही ये लोट आयेगी। हम लोग रोज मिल आया करेगे। आपको भी ले चलेगे।"

पुत्री का आश्वासन पिता के मन ने स्वीकार नही किया। वे चुपचाप उठ गये। कचहरी पहुँचकर उन्होने गाडी भी भेज दी।

केदार, करुणा कालेज चले गये थे। माँ का सामान गाडी पर रखा जा चुका था। माधुरी महाराज से कह रही थी, "मै अभी घण्टे भर मे आती हूँ। सो मत जाना।"

जान्हवी ने टोककर कहा, "नही माधुरी, मै अकेले चली जाऊँगी। यह चाभी तेरे पिता जी ऊपर कमरे मे फर्श पर छोड गये है। उन्हे दे देना।"

तिजोरी की चाभी थी। माधुरी ने कल पिता को दी थी। पिता जान-बूझ कर माँ के पास छोड गये थे। माँ को चाभी लोटाते देख माधुरी का मन थरथर काँप उठा।

"माँ, फिर तो तुम्हे जाने नही दूँगी। तुम नाराज होकर जा रही हो। आखिर क्यो ?"––माधुरी किसी प्रकार बोली।

"नही री माधुरी, अब मै नाराज हो सकती हूँ ? चाभी रख ले। शायद कोई जरूरत पडे।"

"अगर जरूरत भी पडी तो तुम कही दूर तो हो नही ? और दो-तीन दिन मे आ ही जाओगी ? क्या तुम नाराज होकर हम लोगो को बेसहारा कर जाना चाहती हो ?"––माधुरी ने बहुत ही आर्द्र स्वर मे पूछा।

जान्हवी भर आयी। किसी प्रकार उसने कहा, "नही माधुरी, तुम लोगो को छोडकर जाना क्या सम्भव हो सकेगा ? इस दलदल––जीवन––से क्या अब उबर सकती हूँ ?"

"तो चलो, नाना जी के घर पहुँचा आऊँ। अगले रविवार को आकर ले आऊँगी।"

"तू न चल, तभी अच्छा है। जब कभी जी चाहे चली आना।"

माधुरी ने देखा कि किसी को साथ न ले जाने का माँ का आग्रह सच्चा है। एक शका उसके मन मे आयी। पर वैसा शका माँ से करना उनके प्रति अन्याय समझ माधुरी ने साथ जाने की ज़िद छोड दी। लेकिन चाभी लेने को वह किसी प्रकार तैयार नही हुई। उसने कहा, "यह चाभी तुम्हारे ही पास रहेगी।"

बाबू रूपकिशोर कचहरी मे दिन भर क्लान्त रहे, किसी भी काम मे उनका मन जरा भी नही लगा। शाम को जब घर लौटे तो घर [illegible] भूत का डेरा था। जान्हवी के चले जाने से ही घर इतना निस्पन्द हो जायगा––यह बाबू रूपकिशोर की हैरानी का कारण बना। बच्चे भी, माधुरी भी, खोये-खोये से थे।

घर––जहाँ जीवन की दैनिक चिन्ताओ से मुक्ति मिले, जहाँ सुख और विनोद का कोलाहल बरसता हो––ऐसा घर अब उनका नही रहा। वहाँ सब कुछ चुपचाप था, ऐसा चुपचाप जो अपेक्षित नही, जो जीवन की घोर निराशा का सजीव प्रतीक है, एकान्त––घोर एकान्त––जो मनुष्य को जीते जी काट खाता है।

चाय का एक प्याला माधुरी ने उन्हे पिलाया। चाय के वाद फिर वही घवराहट,वही भय,वही चुपचाप। जव किसी भी तरह उनका मन घर मे नही लगा तो वे पैदल ही घर से निकल पडे ।

पडोस मे वैद्य जी के दवाखाने मे कुछ लोग वैठे थे । वकील साहव वहाँ पहुँचे। सबने उनका हार्दिक स्वागत किया ।

चर्चा धर्म पर हो रही थी। एक सज्जन कह रहे थे कि इस युग मे धर्म का तो लोप होता जा रहा है । वावू रूपकिशोर के पहुँच जाने से सज्जन जोश से भर उठे क्योकि वकील साहव वडे धार्मिक मशहूर थे, सत्सग, प्रवचन, पूजा-पाठ आदि मे विश्वास रखते थे। वैद्य जी ने भी मौका चूकना उचित नही समझा और कहा, "इतिहास पढा जाय तो हर युग के मनुष्य को यही लगा है कि धर्म का नाश होता जा रहा है। धर्म और अधर्म एक दूसरे के पूरक है। अधर्म न हो तो धर्म का महत्व ही क्या ?"

किसी ने पूछा, "लेकिन धर्म आप कहते किसे है ?"

पडोस के एक सज्जन बैठे थे। चौक मे उनकी विविध वस्तुओ की दुकान थी। वे बोले, "धर्म देश-काल की मर्यादा निभाने का नाम है। अधर्म या पाप उस मर्यादा को भग करना है। कर्तव्य—जिससे व्यक्ति सुखी हो सके और अपने सुख से समष्टि [illegible] वही पुण्यकर्म है। दूसरे शब्दो मे उसे धर्म कह लीजिये।"

बावू रूपकिशोर बिलकुल शिथिल थे। लेकिन चर्चा का विपय मनोनुकूल पडा । उन्होने भी कहा, "हर युग मे धर्म-अधर्म की अलग-अलग परिभापा रही है। किसी प्राचीन समय मे पाप उस वस्तु को माना जाता था जिससे रोग उत्पन्न हो। उसका उपचार किया जाता था। उस युग मे पाप शरीर को लेकर था। फिर कालान्तर मे उसका सम्बन्ध ईश्वर से जुडा। पाप के प्रक्षालन के लिए ईश्वर की शरण खोजी जाने लगी। विविध प्रकार की रूढियाँ इससे चल पडी। किसी समय य [illegible] सकता है। जादू, टोना, टोटका के रूप मे अव भी वह प्रथा प्रचलित है।"

वैद्यजी उपनिपदो के विद्वान माने जाते थे। वे बोले, "पाप की भावन मनुष्यकृत ही है। कालक्रम से पाप की भावना का सम्बन्ध नैतिकता से जुडा और

पापमुक्त होने के लिए प्रायश्चित्त, यज्ञ, तीर्थयात्रा, दान, गगास्नान और जप-पाठ आदि का विधान चल पडा।"

किसी ने पूछा, 'क्या पाप जप-पाठ, पूजा आदि से मिट नही सकता ?"

बाबू रूपकिशोर ने प्रश्नकर्ता की ओर देखा। उनके मन का प्रश्न था।

वैद्यजी ने उत्तर मे कहा, "समाज की धारणाओ की मर्यादा स्थिर रखने के लिए ही शायद प्रायश्चित्त और पूजा-पाठ का विधान बना। जैसे एक बार चोरी करके व्यक्ति के मन मे अपने कृत्य पर पश्चात्ताप हो, वह फिर चोरी न करने का सकल्प कर ले और अपना सकल्प निभाये तो प्रायश्चित हो गया—समाज की धारणा निभायी गयी।"

बाबू रूपकिशोर ने फिर योगदान दिया, "नरक की कल्पना शायद मनुष्य को डराने के लिए ही की गई जिससे वह मर्यादा का उल्लघन न करे। पाप—अनुचित कर्म—का फल लेकिन जरूर मिलता है।"

वकील साहब की उक्ति पैनी थी, सबने उसको सराहा। एक सज्जन ने तो पुनर्जन्म का उदाहरण देकर कहा कि पाप का फल इस जन्म मे नही तो अगले जन्म मे भोगना ही पडता है।

चर्चा चलती रही। चर्चा बाबू रूपकिशोर को रुचिकर लगी। घर लौटते समय बाबू रूपकिशोर सोच रहे थे कि सदा से पाप नीति-नियमो का भग करना ही माना गया है। है। लेकिन अपना पाप किसी दूसरे को दे दिया जाय, यह तर्क-सगत नही और नरक की कल्पना भी सच नही जान पडती। यह कल्पना समाज की धारणा बनाये रखने की चेष्टा से उत्पन्न है। यही पाप का नैतिकता से सम्बन्ध जोडा गया है। समाज की मर्यादा का भी महत्व है और उसकी धारणा के लिए पाप की कल्पना—अन्धविश्वास से मुक्त—स्वस्थकर ही है।"

एकाएक उन्होने अपने बारे मे सोचा, "क्या उनका जीवन पापमय है ?' —'हाँ' और 'नही' के ऊहापोह मे घर आ पहुँचा। माधुरी ने कहा "बाबू जी, खाना ठण्डा हो रहा है।"

"आया बेटा,"—कहकर वकील साहब ने हाथ-मुँह धोया ओर खाने की मेज पर आ बैठे।

खाना खाते समय उन्होंने माधुरी से पूछा, "तुम माँ को छोडने गयी थी ?"

"माँ ने साथ जाने से मना कर दिया। ड्राइवर कह रहा था कि उतरते समय वह बहुत उदास थी।"

"कब आने को कह गयी हैं ?"

"रविवार तक शायद आ जायँ।"—माधुरी को अपने कहे शब्दो पर स्वय विश्वास नही हुआ।

खाने के बाद बाबू रूपकिशोर अपने कमरे मे पहुँचे और लेट गये। लेकिन हुक्का नही था। ऐसा कभी भी नही हुआ था। खाने के बाद उनके पहुँचने के पहले ही हुक्का पलँग के पास तैयार मिलता था। जान्हवी नही थी—यह याद मन को मसोस उठी। उन्होने माधुरी को आवाज दी, "हुक्का भेजना, बेटे!"

हुक्का भरा जा रहा था। महरिन ऊपर रख आयी। हुक्के की कश मे बाबू रूपकिशोर अपने भावो मे डूबते-उतराते सोच रहे थे, 'जान्हवी मेरी विनती स्वीकार न कर सकी, मुझे माफ नही कर सकी। उनकी इतनी दारुण पीडा है। लेकिन पीडा पिता के घर जाकर साथ तो नही छोडदेगी ? शायद कुछ मन बहल जाय। पर अपने से क्या कोई भाग सकता है ? मै कहाँ भाग जाऊँ ? तीर्थाटन करूँ ? क्या उससे शाति मिलेगी ? या सन्यास ले लूँ ? अवस्था पचास कब की पार कर चुकी है। शायद परमात्मा की शरण मे वृत्तिनिरोध हो जाय ? लेकिन घर-परिवार का क्या होगा ? महेश अपनी जगह पा गया। अभी माधुरी पडी है। माधुरी—सर्वप्रिय माधुरी—के ध्यान मे बाबू रूपकिशोर डूब गये। हुक्के की गहरी कश खीची उन्होने। फिर सोचा, 'क्या कुमार से उसका व्याह समाज की धारणाओ के प्रतिकूल होगा ?' 'नही' उनका उत्तर था। उनके समाज मे साधारण तौर पर ऐसा होता नही था। पर समाज मे ऐसा न होता हो, यह गलत था। माधुरी का विवाह कर ही देना उचित है और जल्दी ही। एक और खयाल उठा मन मे जिससे

वे हँस पडे । जान्हवी को मनाने का, वापस ले आने का, यह एक सुगम तरीका भी था । जान्हवी विवाह के आयोजन के लिए भागी आ जायेगी—वह इनकार कर ही नही सकेगी ।

माधुरी और कुमार का आपस मे प्रेम है, प्रेम विवाह से वे दोनो सुखी रहेगे—इस ध्यान से बाबू रूपकिशोर अपने आप से पूछ बैठे, 'क्या उनका विवाह माधुरी की माँ से और बाद मे जान्हवी से प्रेम के बिना था ? वे विवाह के पहले न माधुरी की माँ को जानते थे, न जान्हवी को । लेकिन दोनो से उन्हे प्रेम मिला, उन्होने भी प्रेम किया । फिर बिल्वमाला तथा बीरा मे उनका क्या सम्बन्ध था—मन से जिज्ञासा आई ? प्रेम का ही, हार्दिक—दोनो पत्नियो से कही अधिक—उत्तर था । क्यो ऐसा है—यह वह नही समझ सके । पर बिल्वमाला से और वीरा के प्रति उनका आकर्षण सच्चा है—यह उनका मन अस्वीकार नही कर सका ।

तब क्या बिल्वमाला और बीरा के प्रति उनका कोई कर्तव्य नही ? उस बालक की शिक्षा-दीक्षा, उसे आदमी बनाना आदि मे उनके मतामत की अपेक्षा नही ? क्या उनके प्रति अपना कर्तव्य निभाना उनका धर्म नही ? 'है, अवश्य है'—अतर से आवाज आयी । क्यो ऐसा हुआ, यह वे अब नही जानना चाहते थे, लेकिन जो हो गया उसे मिटाया नही जा सकता था । उनकी जिम्मेदारी साफ है । यही धर्म है, यही समाज की धारणा है । बच्चे के भविष्य का हल बिल्वमाला ने कितना सुन्दर निकाला ! बच्चे को समाज का पुष्ट अग बनाना, उसे जीवन के योग्य बनाना, उनका परम कर्तव्य है ।

परस्पर विरोधी मन की भावनाओ से बाबू रूपकिशोर के हृदय मे शूल उभड आया—दर्द से वे कराह उठे । दर्द से छुटकारा पाने के लिए वे कलेजा दबा कर लेट गये । पर शूल बढता ही गया । बहुत देर मे दर्द का वेग कम हुआ । लेकिन नीद नही आई । बडी देर तक वे नीद बुलाने की कोशिश करते रहे । जब हार गये तब एक पुस्तक के पन्ने उलटने लगे । श्रीकृष्ण के प्रतिपादित सिद्धात पर दृष्टि गयी—"कर्म करने का कौशल ही योग है ।"—गीता की सीख, कर्ममार्ग से मोक्ष की प्राप्ति । समन्वय निरोध से कही अधिक सुलभ कर्म द्वारा है । उनका, उन्होने सोचा, यही मार्ग है । सन्यास नही—कर्म-कर्तव्य । अपनी जिम्मेदारियो के रहते कर्म से विमुख

होना उनके लिए शोभन नही । बाबू रूपकिशोर पुस्तक मे कर्म-मार्ग की मीमासा पढने लगे ।

लेकिन बहुत देर तक पढ नही सके न नीद ही आयी । कमरे का नीरव एकान्त, शीतलपाटी की खाली पडी जगह, उनके दिल के टुकडे-टुकडे कर गयी । वे उठ कर कमरे मे टहलने लगे । क्या करे, क्या न करे !

उधेडबुन मे उनकी रात कटी । कई बार नीद की कोशिश मे पलँग पर लेटे भी, लेकिन झपकी ने भी आने का नाम नही लिया ।

: २४ :

बिल्वमाला बीमार थी । बाबू रूपकिशोर जान्हवी के जाने के बाद से लूकरगज नही आ पाये थे । उन्हे बुलाया गया और वे आये ।

बीरा ने उनसे बताया, "रानी जीजी की अस्वस्थता का कारण है ।"

"क्या ?"—चौक उठे बाबू रूपकिशोर, एक नयी आशका से मन डोल गया ।

बीरा ने लेकिन भ्रम का निवारण करते हुए कहा, "बहनजी के घर से नाराज होकर चले जाने से रानी जीजी बीमार पड़ गयी है। उनका कहना है कि उन्ही के कारण यह सब हुआ ।"

बाबू रूपकिशोर चुपचाप सुनते रहे ।

बीरा कहती गयी, "जीजी रानी उनको मनाने जाने वाली है ।"

बाबू रूपकिशोर के हृदय का रक्तचाप तेज हो गया । घबराहट के स्वर मे उन्होने कहा, "बीरा, यह कोशिश करना कि वह जाये नही। बडा अनर्थ हो जायगा। जान्हवी इससे और अधिक उग्र होगी ।"

"जीजी रानी ऐसा नही समझती । कहती है, बहन जी के दिल को सदमा पहुँचा है वह जल्दी लौटने वाली नही । स्वय जीजी रानी रात-दिन उदास पड़ी रहती है ।"

"इसी का नाम जीवन है, बीरा !"—एक दीर्घ नि श्वास लेकर बाबू रूपकिशोर ने कहा ।

लूकरगज की वह सन्ध्या बाबू रूपकिशोर के लिए भीषण बन गयी । मन के हारे, तन से क्लान्त बाबू रूपकिशोर को जो बीरा शारीरिक आकर्षण मे सदा बॉध लेती थी, [illegible] । बीरा की बातो ने उनका ध्यान बरबस तीव्र रूप मे जान्हवी की ओर खीच लिया । कितना भारी पत्थर कलेजे पर रखकर जान्हवी अपने पिता के घर गयी होगी ? किस तरह वे वहॉ अपना समय बिता रही होगी—उनसे अलग, बच्चो से अलग, रात दिन एक मार्मिक ज्वाला मे—उनका मन सोच-सोच कर रोने लगा ।

बिल्वमाला को देख, उसकी दवा-दारू का हाल चाल पूछ, हर सावधानी बर्तने का आदेश दे वह घर लौटना चाहे । बिल्वमाला ने तो बाबू रूपकिशोर का पीला चेहरा देखते ही अपना मुँह छिपा लिया था। कुछ भी वह बोल नहीं पायी। बीरा ने उन्हे रोकने की कुछ कोशिश जरूर की, लेकिन बाबू रूपकिशोर वहॉ रुक नही सके ।

घर पर माधुरी से उन्होने पूछा, "कई रविवार तो गुजर गये । तुम्हारी माँ नही आई ?"

माधुरी क्या कहती ? कितनी बार वे सब गयी थी आशा लेकर कि मॉ चली आयेंगी । पर हर बार उन्होने बहाना बना दिया । माधुरी की आतरिक इच्छा थी [illegible] लिवा लाये । लेकिन पिता के सामने यह सुझाव वह रख नही सकी । बाबू रूपकिशोर ने अपना ध्यान भगकर पूछा, "तुम्हारे नाना जी का क्या हाल चाल है ?"

"अच्छे ही है । बहुत उदास नजर आते है आज कल । आपको पूछ रहे थे ।"

पिता ने फिर और कुछ नही पूछा । ऊपर अपने कमरे मे चले गये । कर्मयोग वाला निबन्ध पढने की कोशिश करने लगे । कर्म ही गति है—उसी मे वह डूब जायेंगे, जहॉ तक सम्भव हो—यही निश्चय करते रहे ।

माधुरी उस दिन भावमग्न थी । दोपहर को कुमार आया था, जब माधुरी घर पर अकेले थी ।

कुमार ने पूछा था, "अब कितने दिन और ?'

माधुरी ने कोई उत्तर नही दिया था। बात टालने के लिए महाराज को चाय लाने का आदेश दिया था।

कुमार ने तब दूसरा सवाल किया था, 'पूना चलोगी ?"

ज्योत्स्ना की चिट्ठी माधुरी को भी आई थी। उसने पूना बुलाया था। उसे विदा के समय की ज्योत्स्ना की उक्ति याद आई। कुमार से उसने कहा, "देख ही तो रहे हो, सारा घर सिर पर है। माँ नाना जी के यहाँ चली गयी है। बाबूजी का शरीर सूखता जा रहा है।"

'माँ के आने पर तो चल सकोगी? कहो तो मैं ही जाकर माँ को लिवा लाऊँ?"—फिर कुछ देर के बाद उसने भावमग्न स्वर मे कहा था, माधुरी, मुझसे क्या कोई दोष बन पड़ा है? जिन बाधाओ का तुम्हे ध्यान था, वह निरर्थक है, यह अब तुम भी मानती हो। फिर यह अन्तरिक्ष-सी मुझसे दूरी क्यो?" उत्तर वही था, 'देख ही तो रहे हो। माँ जब तक नही आ जाती तब तक मेरा कही आना-जाना सम्भव नही।"

'माँ इतने दिनो के लिए आखिर चली क्यो गयी है ?"—दबी जुबान मे कुमार ने पूछा था।

माधुरी ने कुमार की ओर भरपूर नयनो से देखा था, यह जानने के लिए कि उसके प्रश्न के पीछे जानकारी की सीमा क्या है? पर कुमार के चेहरे पर जानकारी या अजानकारी का कोई भाव नही था। माधुरी ने उत्तर मे कहा था, 'बहुत दिनो पर गयी है। कुछ दिन रहना चाहती होगी।'

कुमार ने प्रसग को अरुचिकर समझ, बात बदल कर पूछा था, "कल सिनेमा के लिए तैयार रहना। आकर ले चलूँगा।'

"करुणा और केदार का इम्तहान नजदीक है।'

"उन्हे तो मैं सिनेमा चलने का निमत्रण दे नही रहा। केवल तुम्हे ले चलूँगा।" फिर उसने परिहास किया था, "क्या मेरे सग अकेले चलने मे एतराज है ?"

माधुरी ने हँसकर सवाल का जवाब देना जरूरी समझा था, "यह तुम मुझसे अधिक समझते हो ।"

"तुम आजकल उखडी-उखडी रहती हो ।"—कुमार ने माधुरी का हाथ अपने हाथ मे ले लिया था ।

माधुरी भाव-विभोर हो उठी थी । प्रसग बदलने के लिए उसने पूछा था "तुम्हारी ट्रेनिग कैसी चल रही है ?"

कुमार वकालत की ट्रेनिग ले रहा था । छ महीने की अवधि व्यावहारिक ट्रेनिग की थी । उसके बाद बाबू रूपकिशोर के सहकारी के रूप मे काम शुरू करने वाला था । ट्रेनिग भी वह उनके साथ कर सकता था । जान-बूझ कर ही एक दूसरे प्रख्यात वकील के नीचे काम सीख रहा था ।

माधुरी के प्रश्न के उत्तर मे उसने कहा, "चल ही रही है । सच्ची ट्रेनिंग तो तब मिलेगी जब इन कर-कमलो का सहारा मिल जायगा ।"

माधुरी मौन हो गयी थी । कुमार उसके मौन और भाव से स्वय गम्भीर हो उठा था । किस अदृश्य की छाया माधुरी के घेरे है, उसने समझना चाहा था, मगर समझ नही सका था । फिर जाने की आज्ञा माँगी थी ।

"अभी नही ।"—सिर नरकारात्मक ढग से हिलाकर माधुरी ने जाने से मना किया था ।

कुमार फिर वहाँ घण्टे भर और रहा था ।

माधुरी पलँग पर लेटे-लेटे सोच रही थी कि कुमार को मन से स्वीकार कर वह जीवन मे और कहाँ विध सकती है ? उसके साथ पूना जाकर दद्दा और ज्योत्स्ना के पास कुछ दिन बिताना कितना सुखदायी होगा । लेकिन घर की ऐसी हालत मे क्या उसे पूना जाना चाहिए ? सहसा माँ की दशा का उसे ध्यान आया और उसने सोचा, क्या सभी पुरुष ऐसे ही होते है, क्या कुमार के साथ उसके जीवन मे भी कभी वैसी परिस्थिति पैदा हो सकती है ? भविष्य की इस आशका के लिए कोई आधार तो था नही । पर ऐसी बात असम्भव हो, यह कैसे मान लिया जाय ? वह सोच रही थी कि नारी तो असहाय हो सहारा चाहती है, लेकिन पुरुष मे क्या किसी रागात्मक अनुभूति के अभाव के कारण—

नारी पुरुष,के आकर्षण के बीच—ऐसी प्रवृत्ति जन्म लेती है ? सयोजित विवाह मे समन्वय शायद ही सम्भव हो। लेकिन क्या प्रेम का विवाह भी असफल हो सकता है ? उसे अपनी बी० ए० की सहेली प्रतिमा की याद आई। प्रेम विवाह किया था उसने। वैभव मे पली थी, बुद्धि मे तीक्ष्ण थी। माँ-बाप ने उसका आग्रह स्वीकार कर प्रसन्नतापूर्वक उसका विवाह जहाँ वह चाहती थी, वहाँ कर दिया। वह एक डाक्टर था। बहुत दिनो से उनका आपस में प्रेम था। कम से कम प्रतिमा ने सदा यही समझा था। लेकिन विवाह के दो वर्ष के भीतर ही उनका सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। कारण का सही पता माधुरी को या किसी को नही था। माधुरी ने अनुमान के बल पर यह निष्कर्ष निकाला था कि प्रतिमा को पहले आकर्षण के बीतते ही केवल निराशा हाथ लगी, शायद डाक्टर और प्रतिमा के आकर्षण और प्रेम की जड गहरी नही थी। फल यही हुआ जो ईमानदार प्रतिमा के लिए होता, उन्होने आपस मे प्रसन्नतापूर्वक ही सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। एक दूसरे के पूरक वे नही बन सकते थे, तब उन्होने इसकी चेष्टा भी नही की। प्रतिमा की ईमानदारी का माधुरी पर गहरा प्रभाव पडा था। प्रतिमा ने, जो कालेज मे अब अध्यापिका हो गयी थी, उसने बताया भी था। लेकिन आज वह सोच रही थी कि कितने युवक-युवती अपने आपस के घनिष्ट सम्बन्ध मे, विवाहित प्रेम मे भी, ईमानदारी निभाते है ? घरो का जीवन उसने देखा था। अपने ही घर मे क्या कुछ ऐसा नही हुआ था जो किसी औपन्यासिक घटना से कम हो ? माँ के प्रति, पिता के प्रति भी, उसका हृदय भर आया। वह सोचना चाहती थी कि इन सबका मूल कारण क्या है ? प्रेम करने की स्वतन्त्रता का अभाव, आर्थिक विषमता, यौन-शिक्षा का अभाव या इसान की प्रकृति। बहुत कुछ इसने इस विषय पर पढा था। लेकिन पुस्तको का ज्ञान आज जीवन के यथार्थ से मात खा रहा था।

कुमार के प्रति उसका प्रेम और उसकी जड़ बहुत गहरी थी। लेकिन कुमार के अलावा दूसरे किसी युवक से उसका परिचय भी कहाँ था ? मन में उठे भाव उसे प्रिय नही लगे। उसने अपने को विश्वास दिलाया कि उसे कुमार से प्रेम था—गहरा और सच्चा। कुमार के पास बैठने पर उसके शरीर की नाडी

की गति तेज हो जाती थी, उससे दूर उसके ध्यान को पल भर के लिए भी तो वह भूल नही पाती थी, कुमार का आचरण, व्यवहार, ज्ञान, गरिमा और मनोरम व्यक्तित्व की उसके मन पर छाप थी, उससे उसके मन का पूरा मेल था। कुमार की बलिष्ठ भुजाएँ ही उसका एकमात्र सहारा बन सकती थी —इसमे उसे किसी सन्देह की गुजाइश नही थी।

दूसरे दिन चाय के समय कुमार आ पहुँचा। बाबू रूपकिशोर ने उसका हार्दिक स्वागत किया और पूछा, "तुम्हारी ट्रेनिग तो ठीक चल रही है ? दीवानी या फौजदारी, किधर झुकाव है ?"

"फौजदारी मे काम करना चाहता हूँ ?"—कुमार ने शालीनता से उत्तर मे कहा।

"फौजदारी मे लाभ जल्दी होता है। मानव-जीवन को समझने मे भी इससे बडी सहायता मिलती है। साहित्य से कही अधिक इसमे मानव के उत्थान और पतन की प्रवृत्तियो और उसके कारणो को जाना जा सकता है। तुम ट्रेनिग समाप्त करते ही स्वतत्र रूप से काम करना शुरू कर दो।"

"जी हाँ, सोच तो यही रहा हूँ।"

"लेकिन बडी मेहनत की दरकार होती है, फौजदारी न्याय-पद्धति मे सफल होने के लिए। वैसे तो तुम साहित्य के विद्यार्थी रहे हो। मनुष्य का मन परि-स्थितियो मे पडकर किस प्रकार उत्तेजना या अविवेक पैदा करता है, जिसके कारण अपराध सम्भव होता है, उससे तुम परिचित हो। पर वकालत पेशे का भी एक सुपथ है जो परिश्रम और ईमानदारी से ही मिलता है। सफल वकील इसी से कोई बनता है।"—बाबू रूपकिशोर ने कुमार के प्याले मे चाय डालते हुए कहा।

"वकील सघ मे इस विषय पर आपका भाषण मैंने सुना था। बडा ही प्रभावोत्पादक भाषण था।"—कुमार ने श्रद्धा पूर्वक कहा।

"जीवन मे तप कर ही सोना बना जाता है। तपना लेकिन बडा कठिन होता है। इसी तपने के क्रम मे बहुत अपना विवेक खो बैठते है। उसी को न खोना और तपने को ही जीवन का उद्यम समझना सफलता को करीब लाता है।"

फिर माधुरी से बाबू रूपकिशोर ने कहा, "आज कुमार को यहीं खाना खिलवाओ।"

"आज सिनेमा जाने का कार्यक्रम है।"—माधुरी ने बिना झिझक के कहा।

"बडी अच्छी बात है। बहुत दिनों से तुम गयी नहीं, हो आओ। कौन-कौन जा रहे है ?"

"केदार-करुणा का इम्तहान करीब है। वे नहीं जायेंगे।"

"अच्छी बात है। जल्दी ही लौटना।"—कहकर बाबू रूपकिशोर ने चाय की प्याली का अंतिम घूँट समाप्त किया और उठकर चले गये।

करुणा सिनेमा की प्रेमी थी। पिता के जाने के बाद उसने कहा, "जीजी, मै भी चलूँगी।"

"तुम कभी और चली जाना।"—कहकर माधुरी ने इस विषय को ही समाप्त कर दिया।

कुमार ने सिनेमा मे एक बाक्स सुरक्षित करा लिया। उस एकान्त मे माधुरी को कुमार के साथ बैठना बडा प्रिय लगा।

माधुरी का हाथ कुमार ने हाथ मे लेकर पूछा "कल मेरे सवाल का तुमने जवाब नहीं दिया।"

माधुरी ने समझा और बोली, "जिस सवाल का जवाब तुम खूब अच्छी तरह जानते हो, उसके लिए अधीर होने की आवश्यकता ?"

"अधीर की बात नहीं माधुरी! मेरे कलेजे पर जरा हाथ रख कर तो देखो ?"

उसने माधुरी का हाथ अपने कलेजे पर रख दिया। सचमुच उसका रक्त-चाप तेज था।

माधुरी ने अपना हाथ वहीं रहने दिया और कहा "तुम्हे डाक्टर से परीक्षा करानी चाहिए।"

माधुरी ने सचाई से यह बात कही थी। रक्त-चाप कुमार का अपेक्षाकृत तेज था। पर कुमार पर माधुरी की उक्ति का असर परिहास का पडा। उसने माधुरी को अपनी बाँहों मे अचानक समेटकर कहा, "डाक्टर की शरण मे तो

हूँ ही। मेरी एकमात्र डाक्टर तुम्ही हो।"—उसने माधुरी के मुँह को अपने होठो की ओर ले जाने की कोशिश की।

माधुरी ने अपना मुँह तो हटा लिया परन्तु कुमार के शरीर की उष्मा से विलसित हो उसने चुपचाप उसके वक्ष पर अपना सिर रख दिया। मिनटो तक ही नही, देर तक उन्होने इस प्रकार सिनेमा देखा।

घर लौटते समय रिक्शे मे माधुरी ने परिहास किया, "इतने छली हो, मैं जानती नही थी।"

"अभी बहुत कुछ नही जानती हो। बहुत कुछ सिखाना शेष है। इसीलिए जल्दी की अपेक्षा है। चाचाजी से अब मुझे ही कहना पडेगा।"

"नही कुमार, हम तुम एक दूसरे को समझते है, आपस मे विश्वास रखते हे। समय की प्रतीक्षा करनी ही चाहिए।"

"एक युग से प्रतीक्षा ही तो कर रहा हूँ। अब अधिक प्रतीक्षा सह्य नही।" —कहकर दाहिनी भुजा से माधुरी को कुमार ने पुन अपनी ओर खीच लिया।

माधुरी को कुमार के हाथ का सहारा प्रिय लगा। वह उसी तरह बैठी रही जब तक घर नही आ गया।

घर पर करुणा ने बताया कि नानाजी आये थे। बाबूजी को बहुत डॉट-फटकार रहे थे और कह गये है कि मैने समझ लिया कि मेरी लडकी का पति नही है। बाबूजी से उन्होने कहा, "तुम्हारा काला मुँह कभी नही देखूँगा।"

माधुरी ने सहमकर पूछा, "बाबू जी कहाँ है ?"

"ऊपर कमरे मे लेटे है। मै हुक्का रख आयी थी। वैसे पडा-पडा ठण्डा हो गया।"

माधुरी पिता के कमरे मे पहुँची। पिता का चेहरा दुख और अपमान के क्षोभ से राख हो गया था। वर्षो के रुग्ण हो जैसे, ऐसा लग रहा था। सिर पर पिता के हाथ रखकर करुणा से भरी माधुरी ने पूछा, "बाबूजी, तबियत कैसी है ?"

"अपने किये का फल भुगत रहा हूँ, बेटा! ठीक ही है!"—पिता का दर्द भरा स्वर माधुरी को विह्वल कर चला।

बाबू रूपकिशोर ने मन का भार बाहर निकाला, 'आज तुम्हारे नानाजी आये थे। जो न कहना था, कह गये—सब के सामने। महाराज भी था, महरिन भी।"

माधुरी पिता के मन के दुख को समझ रही थी। पर वह कहती क्या? उसने आश्वासन देने के लिए कहा, "बड़ो की कड़ी बात भी आशीर्वाद सिद्ध होती है। वे प्रेम ही के कारण तो क्रोध कर बैठते है।"

"हाँ बेटा।"—क्षीण स्वर मे बाबू रूपकिशोर ने कहा।

नीचे से महाराज ने आवाज दी, "खाना मेज पर लगा है।"

'चलिए बाबू जी, खाना मेज पर लगा है।"—माधुरी ने मर्माहत स्वर मे पिता से कहा। पिता के दुख से उसका मन कराह रहा था।

"मेरी खाने की तबियत नही है। तुम लोग जाकर खा लो।"

"आप जानते है कि आप न चलेंगे तो कोई खायेगा नही।"

किसी तरह बाबू रूपकिशोर उठे। चलना उनके लिए दुष्कर साबित हुआ। पाँव को लड़खड़ाते देख माधुरी ने उन्हे सहारा दिया। उसके कधो के बल वे नीचे कमरे मे आये। लेकिन खाना वे न खा सके।

बच्चो ने भी खाने का बहाना मात्र किया। किसी ने कोई बात नही की। माधुरी पिता की दशा देख उनसे खाने के लिए कुछ कह भी नही सकी।

दूसरे दिन सवेरे जब माधुरी पिता के कमरे मे गयी तो उनको तेज बुखार मे पड़े पाया। तत्काल ही उसने केदार से डाक्टर दत्ता को बुलाने के लिए कहा। पर पिता ने मना कर दिया और कहा, "कई रातो से नीद नही आती है। इसीलिए बुखार हो गया है—ठीक हो जायेगा, डाक्टर साहब को बुलाने की जरूरत नही।"

माधुरी ने आग्रह किया। लेकिन बाबू रूपकिशोर ने साफ मना कर दिया।

माधुरी ने तब महाराज से काढा बना लाने को कहा। पिता का हाथ-मुँह धुला, उनके कपड़े बदलवा, उन्हे काढा पिलाया। बाबू रूपकिशोर ने मुशी जी को बुलाकर कचहरी के लिए कुछ आदेश दिया।

[illegible] आकर माधुरी से कहा, "बिटियारानी, माँ जी को खबर कर दी जाय ?"

माधुरी सोच मे पडी। नानाजी की पिता जी से क्या बाते हुई थी, वह पूरा जान नही पायी थी। जो कुछ करुणा ने बताया था, वह ही इतना काफी था कि पिताजी से माँ को खबर करने के लिए कम-से-कम पूछ जरूर लिया जाय। उसने मुशीजी से कहा, "उन्हे खबर कर दी जायेगी।"

मुशीजी ने कोई भाव प्रकट नही किया, घर की सही हालत की उन्हे जानकारी न हो, ऐसी बात नही थी। सारे जीवन भर मुशी जी ने बाबू रूपकिशोर के साथ काम किया था। उनके वह ऋणी थे। उन्ही की बदौलत एक छोटे-मोटे वकील से कही अच्छी स्थिति मुशीजी की आज थी। उनके मन मे बाबू रूपकिशोर का ही नही, उनके परिवार के सबका, सच्चा आदर और स्नेह था। माधुरी की बात से मुशीजी दु खी हुए। इस घर पर ग्रहण लग चुका है—वह जानते थे। यह ग्रहण पूरा होगा या टल जायेगा—यह वे नही जानते थे। वे असमजस मे पडे, लेकिन बोले कुछ नही।

जान्हवी को पति की बीमारी की खबर उसी सुबह मिल गयी। करुणा कालेज जाते समय माँ को पिता के तेज बुखार का समाचार सुना आई।

जान्हवी चाहकर भी नही आ सकी। पर शाम को न मालूम कहाँ से समाचार पाकर बिल्वमाला आ पहुँची।

माधुरी को पहली बार बिल्वमाला से क्षोभ उत्पन्न हुआ। उनका आना अखर गया।

बाबू रूपकिशोर भी उससे सहमे। पर बिल्वमाला सशरीर घर पर पहुँच चुकी थी, उन्हे अब कैसे रोका जा सकता था।

बाबू रूपकिशोर की हालत देखकर बिल्वमाला को सन्न हो जाना पडा। पीले चेहरे के भीतर से उनके हृदय का हाहाकार साफ दिखायी पडा, बिल्वमाला को जिसे माधुरी भी नही देख पायी थी। जीवन का बधन जैसे रग-रग तोड फेंकना चाहता हो और जिसे न तोड पाकर वह निराशा मे डूब गया हो—ऐसा श्रीहत हो गया था उनका तन-मन।

बिल्वमाला ने अपने को सुस्थिर चित्त बनाकर पूछा, "तुमने डाक्टर का आना क्यो मना कर दिया ?"

बाबू रूपकिशोर ने कोई उत्तर नही दिया। वह चुपचाप शून्य भाव से जिधर देख रहे थे देखते रहे।

बिल्वमाला ने फिर कुछ कहा नही। वह परिणीत प्रेमी की दशा, उसके मन हारने का कारण—सब कुछ ठीक-ठीक जानती थी। इसीलिए बुखार की खबर सुनते ही वह चली आई थी। यह नही कि उसने आगा-पीछा नही सोचा था।

उसके आने का क्या प्रभाव बाबू रूपकिशोर पर, बच्चों पर और पिता के घर गयी जान्हवी पर पडेगा, इसका उसे अनुमान था। लेकिन अपनी बीमारी में ही बाबू रूपकिशोर की उसने जो हालत देखी थी, उससे उसे बिना आये नहीं रहा गया। वह डर गयी थी कि बुखार कहीं असाधारण न हो जाय।

बाबू रूपकिशोर चुपचाप जान्हवी के बारे मे सोच रहे थे कि कितना घोर सघर्ष करना पड रहा होगा उसे उनके बुखार की खबर पाकर भी न आने के लिए। अपने ससुर के शब्द उन्हे याद आये कि अगर जान्हवी मेरी सन्तान है तो जब तक लूकरगज से तुम्हारा सम्बन्ध टूट नही जाता, तब तक वह तुम्हारा काला मुँह नही देखेगी। मैं समझ लूँगा कि वह पति-विहीन है।

आशा कभी मरती नही। अपने ससुर के ऐसे कठोर शब्द सुनने के बाद भी बाबू रूपकिशोर मन ही मन यह सोचना चाहते थे कि शायद उनके लूकरगज के सम्बन्ध की पूरी-पूरी जानकारी न जान्हवी को ही है, न किसी दूसरे को। परन्तु ।

बहुत देर के मौन के बाद बिल्वमाला ने किसी प्रकार साहस कर कहना उचित समझा, "बहन जी का फौरन आ जाना जरूरी है, तुम आज्ञा दो तो मैं बहन जी को मना लाऊँ ?"

बाबू रूपकिशोर का ध्यान अब टूटा। चौककर उन्होंने कहा, 'तुम अगर लूकरगज ही रहो तो शायद सबका कल्याण हो।"

बिल्वमाला कॉप गयी बाबू रूपकिशोर का भाव समझकर। मगर बोली,

"बहनजी का हृदय मोम की तरह है। वे करुणा की माँ है। वे जरूर मान जायँगी।"

बाबू रूपकिशोर ने इस बार कुछ भी नही कहा। मगर उनका मौन बिल्वमाला के सुझाव को भी हेय मान रहा था—यह बिल्वमाला को समझने मे देर नही लगी। फिर गहरा सन्नाटा छाया। न मालूम किन भावो से ओत-प्रोत बाबू रूपकिशोर ने बिल्वमाला की ओर देखा और कहा, "तुम्हे भी मुझसे कितना दुख मिला।"

सिसक-सिसक कर बिल्वमाला बोली, "क्या कहते हो? मुझे आशा से अधिक मिला, जीवन का मैने मोल समझा। मै तो जन्मजन्मान्तर की तुम्हारी दासी हूँ। यह तो सयोग है कि परिस्थितियाँ भीषण बन गयी।"

बाबू रूपकिशोर बिल्वमाला के उदास भाव को निहारते रहे। सोच रहे थे कि मत्रो के बल पर ही किसी को पत्नी कहलाने का क्यो अधिकार है? बिल्वमाला से उन्हे क्या नही मिला? बिल्वमाला से यदि उनका केवल वासना का सम्बन्ध होता तो और बात थी। उनका सम्बन्ध तो प्रेम-परिणय का था। वह एकमात्र पुरुष थे बिल्वमाला के जीवन मे, वही रहेगे, उसमे भी कोई शक शुबहा नही था। बिल्वमाला रानी थी, उसके रनिवास की अपनी मर्यादा, अपना देश-काल था। उसमे पाप कुछ नही था। वही वहाँ की परम्परा थी।

'मगर . ', आगे वह कुछ सोच नही पाये। तब तक माधुरी आ गयी। महाराज के साथ मे चाय की तश्तरी और नाश्ते का सामान था। वह बोली, "रानी माँ, चाय लायी हूँ।"

"इस समय तो मुझे चाय चाहिए नही बेटा! मै मेहमानदारी के लिए तो आई नही।"—बिल्वमाला अपनी सजल आँखो को छिपाते हुए बोली।

महाराज कमरे मे पलँग के पास पडी छोटी मेज पर चाय का सामान सजा गया। दो प्याले थे।

बिल्वमाला ने दूसरे क्षण ही समझकर फिर कहा, "अच्छा बेटे, तेरी आज्ञा माननी ही पडेगी।"

माधुरी बिना कुछ कहे चली गयी।

बिल्वमाला बाबू रूपकिशोर से बोली, "तुमने दिन भर कुछ भी खाया-पिया नही, मालूम पडता है। माधुरी ने मेरे बहाने तुम्हे चाय भेजी है।"

एक तश्तरी मे अगूर सँवार कर और चाय बनाकर बिल्वमाला ने बाबू रूपकिशोर को दिया। चाय वे अस्वीकार न कर सके। लेकिन वे आश्चर्य चकित थे माधुरी के 'रानी माँ' सम्बोधन से। उन्हे कोई शक नही रहा कि माधुरी से अब बात छिपी नही है, किसी से छिपी नही रही, बात कभी छिपती है? लज्जा की एक रेखा पीले चेहरे पर आ झलकी। लेकिन माधुरी के मन मे, उसके मुँह पर, कोई रोष नही दिखायी पडा था। उसके व्यवहार मे कही कुछ भी अशोभन नही था, क्या शिक्षा के कारण? उन्हे माधुरी पर गर्व हुआ। माधुरी की माँ की—पहली पत्नी की—याद आई। स्मृति उनकी धुँधली पड गयी थी। पर एक बात याद थी, उन्होने कभी भी पति की किसी बात का विरोध नही किया था। पति की इच्छा ही उनके लिए सर्वोपरि थी। माधुरी अपनी माँ की तरह थी। जान्हवी जब आयी—आयी ही थी—तब माधुरी से उसका व्यवहार पूर्ण सौहार्द का नही था। कई बार अप्रिय व्यवहार की ओर उन्होने जान्हवी का ध्यान खीचा भी था। फिर माधुरी ने प्रेम से जान्हवी का मन धीरे-धीरे जीत लिया। उन्हे दद्दा और भाभी का भी ध्यान आया। कितना प्यार करते थे वे माधुरी को। माधुरी भी कितना उनके लिए विह्वल रहा करती थी। सहसा उन्होने माधुरी और कुमार के बारे मे सोचा। अगले गर्मियो मे उनका विवाह कर ही देना पडेगा, समाज आलोचना करे या अन्यथा, उन्होने निश्चय किया।

चाय पीकर बाबू रूपकिशोर कुछ हल्के जान पडे। बिल्वमाला की ओर सहानुभूति के भाव से देखते रहे।

माधुरी आ गयी। बिल्वमाला ने उससे कहा, "बेटे, अपने पिताजी का ध्यान रखना। कल मुझे समाचार देना न भूलना। आज तो तुमने मुझे सूचित करना उचित नही समझा। अब चलूँगी।"

माधुरी क्या कहती?

बिल्वमाला ने फिर कहा, "तुम बहन जी को जाकर कल ले आना।"

बिल्वमाला उठ खडी हुई, जाना तो था ही, चाह कर भी क्या वहाँ टिक सकती थी ? माधुरी मकान के बाहरी फाटक तक उन्हे छोड आई। चलते समय उसने देखा कि बिल्वमाला कि आँखे डबडबा आयी थी।

दूसरे दिन बाबू रूपकिशोर का बुखार उतर गया। लेकिन कमजोर इतने थे कि माधुरी ने उनका उठना-बैठना मना कर दिया। किसी डाक्टर की बात बाबू रूपकिशोर शायद अमान्य कर देते, लेकिन माधुरी की परिचर्या वह नही टाल सके।

बाबू रूपकिशोर तीन दिन आराम करते रहे। बुखार तो छोड गया, परन्तु मन का रोग कहाँ मिटने वाला था ? मन मे तो वह आग जल चुकी थी जो अन्दर-अन्दर ही सुलगती है और जिसका धुँआ भी नहीं दिखायी पडता है। बुखार ने एक काम जरूर किया। रुग्ण होकर बाबू रूपकिशोर की शरीर की नसो को आराम मिला जिससे वे फिर सबल बनी। कर्म-मार्ग—समन्वय—की ओर लग जाने की उनकी भावना को बुखार ने अद्भुत बल दिया। बुखार के बाद तीन-चार दिन आराम कर, स्वास्थ्य लाभ कर जब वे उठे तो निरोध और कर्म को लेकर उनके मन का सशय प्रकृत रूप मे ही अनायास मिट चुका था। कर्म के लिए वे कार्य-व्यस्त रहने लगे—अपने शून्य उदासी को दबा कर। कचहरी भी जाना शुरू किये। बच्चो की देखभाल मे भी लगन बढी। लूकरगज जाना बन्द हो गया। आश्रम के काम मे भी मन लगाने लगे।

बालिका-आश्रम अब सुनियोजित ढग पर चल रहा था। देश की आदर्श सस्थाओ मे उसकी गिनती थी। आश्रम की उपयोगिता को अधिक बढाने की ओर उन्होने ध्यान दिया। उनके हाथ का परस पा आश्रम का काम लहलहा उठा। बाबू रूपकिशोर का एक नया रूप नगर-निवासियो के सामने आया जिससे सब श्रद्धावनत हो उनकी भूरि-भूरि प्रशसा कर उठे। जिस आग मे वह जल रहे थे—उसका अधिकाश को अनुमान भी नही था और जो दूसरे का सब कुछ जानना ही अपने जीवन का परम धर्म समझते है, वे भी बाबू रूपकिशोर के निज को भूल गये उनके 'परार्थ' मे। बाबू रूपकिशोर एक आदर्श समाज-सेवी प्रसिद्ध हो चले। लेकिन स्वय अपनी नजर मे जो वह एक बार गिर चुके थे, उससे वह उठ नही सके। वह कर्म-रत थे शायद अपने मन को हमेशा काम मे

लगाये रखने के लिए जिससे मन अपने को, अपनी दावा को भूला रहे।

एक दूसरा कारण भी था। अब उन्हे नीद नही आती थी। अगर रात-बिरात एक झपकी आ जाती तो गनीमत थी।

: २५ :

जान्हवी पति के आकस्मिक तेज बुखार को सुनकर भी उनके पास नही पहुँच सकी और बिल्वमाला बिना सूचना पाये ही पहुँच गयी—यह जान्हवी के धधकते हृदय मे घी का काम कर गया। इस खबर के मिलने से पहले जान्हवी को अपने पर आश्चर्य हुआ था कि पति की बीमारी की बात जानकर वह भागी-भागी गयी क्यो नही? माँ की सीख, अनसूया का उपदेश, उसका सस्कार स्वय के उसके रग-रग की पुकार को उसने ठुकराया कैसे? उसे मालूम था कि उसके पिता पति का कठोर अपमान कर आये थे, अपना काला मुँह न दिखाने को कह आये थे। पति भी तो कभी पिता के पास आये नही। फिर जान्हवी पिता के घर से जा कैसे सकती थी? लेकिन बिल्वमाला के आने की सूचना ने तो उसे पागल कर दिया। जान्हवी अपनी जलन की ज्वाला मे राख बन जाना चाहती थी। लेकिन   ।

बच्चे आये थे। माधुरी ने कहा, "आज बिना तुम्हे साथ लिए हम नही जायेगे। बाबूजी का शरीर गलता जा रहा है, उन्हे रात-रात भर नीद नही आती। तुम उन पर अन्याय कर रही हो, घोर अन्याय।"

जान्हवी ने कुछ नहीं कहा, चुपचाप सुनती रही। माधुरी ने फिर कहा "और बाबूजी की ही बात तो नही? वे तो पुरुष है। उनका सब माफ हो सकता है। लेकिन मै हू, केदार है, करुणा है। हम सबको तुम किस पर अकेले छोड आयी हो? अगर मुझे और करुणा को कुछ हो जाय तो!"

जान्हवी ने एक नयी आशका से माधुरी की ओर देखा था। 'क्या करुणा मे माधुरी ने कोई उच्छृखलता देखी है?'—उसके मन मे उठा। करुणा अब

उमर की हो रही थी। यही समय था, उसे समाज की मर्यादा समझाने का—उस पर ध्यान रखने का।

उसने माधुरी से कहा, "तुम लोग तो हो ही।"

माधुरी झल्ला उठी थी, शायद झल्लाना कुछ प्रदर्शन भी था। तीखे शब्दो मे माँ की समवेदना जगाने के लिए उसे कहा था, "बाबूजी हम लोगो के पूज्य है। लेकिन क्या सचमुच तुम हमलोगो को उन पर छोड सकती हो ? नही माँ, आज तुम्हे चलना ही पडेगा।"

जान्हवी चुप रही, उसने कुछ भी नही कहा था। उसका मन किसी नयी विपत्ति की आशका से भर आया था। माधुरी जानती थी कि माँ के लौटने का अब एकमात्र तरीका पिता का माँ के पास जाना है। पिता से कई बार कोशिश करके भी वह यह सुझाव नही दे सकी थी। बिल्वमाला से भी उसने पिता से कहलाना चाहा था। पर माँ के लिए बिल्वमाला से कहलाने मे जो अपमान छिपा था—इससे उसने वैसा नही किया था। बात बनाने के लिए ही माधुरी ने माँ से कहा, "पिताजी रोज सुबह-शाम तुम्हे ले जाने का निश्चय करते है, हम लोगो से कहते भी है।"—बात एकदम झूठी नही थी, बाबू रूपकिशोर ने कई बार ऐसा सोचा था, पर वे अपने विचार पर अमल नही कर सके थे, "पर नाना जी के डर के मारे वे आ नही पाते है। तुम घर को बरवाद न होने दो। जो कुछ हो चुका है, वही काफी है। यहाँ तुम सुलग रही हो, वहाँ बाबूजी जल रहे है। और आगे ऐसा ही रहा तो हम लोगो का जीवन—मेरा और करुणा का—तुम्हारे जाने न जाने पर निर्भर है।"

जान्हवी को बात प्रिय लगी। पति की उसके पिता के प्रति स्नेह और श्रद्धा की भावना बात से टपकती थी। पर जिन परिस्थितियो मे जान्हवी पिता के घर आई, जिस तरह उसके पिता ने पति को जाकर डाँटा-डपटा, उन सबसे क्या स्वेच्छा से उसका पति के घर लौटना सम्भव था ?

उसे ध्यान आया पहले दिन का जब वह पिता के घर पहुँची। पिता ने उसका सामान आदि देखकर कहा था, "मैं जानता था कि यह दिन आयेगा। लेकिन

कोई बात नही । उस बहुरुपिए का भण्डाफोड तो होगा । बडा भारी समाज-सुधारक और परोपकारी प्रसिद्ध है ।"

जान्हवी की माँ नही थी । बहुत दिन हुए उनका स्वर्गवास हो गया था । पिता ही माँ के स्थान पर भी थे । पिता के गले लगकर वह खूब रोयी थी । अपनी एकमात्र पुत्री जान्हवी के दुख से पिता की आँखे भी बह निकली थी ।

जान्हवी के बडे भाई थे, साधु-स्वभाव के सीधे आदमी । उन्होने अपने काम के अतिरिक्त जीवन मे कुछ और न देखा था, न सुना था । बहन के दुख से वे दुखी अवश्य हुए थे । पर बोले कुछ नही थे, वे कम बोलते भी थे ।

लेकिन उसकी भाभी ने आसमान उठा लिया था उस दिन । पुरुष-जाति के छल-कपट के खिलाफ उन्होने धरती-आकाश गुजायमान कर दिया था । फिर जब वाणी थक गयी थी तो आँखो से गगा-जमुना बहाया था ।

जान्हवी के लिए पिता के घर मे सभी दुखी हुए थे । लेकिन पिता का दुख असीम था । दुख की उत्तेजना मे ही उसके पिता दामाद को जाकर बुरा-भला कह आये थे, जो न कहना चाहिए था, वह भी कह आये थे । उन्हे उसके बाद ही इस पर पश्चात्ताप भी हुआ था । पर शब्द निकल कर वापस होते नही । उन्हे मन ही मन आशा थी कि बाबू रूपकिशोर आकर जान्हवी को ले जायेगे ।

दुनिया देखे पुरुष थे जान्हवी के पिता। अपने दामाद का लूकरगज का सम्बन्ध उन्हे अक्षम्य लगा था। वे जानते थे कि समाज के बहुत बडे लोग जैसा बाहर दिखलायी पडते थे, ठीक वैसा ही उनका अन्तर नही। ऋषि-मुनि भी मेनका के मोह मे पथ-विरत हो चुके थे । अहिल्या जैसी सती नारी का सतीत्व नष्ट करने की चेष्टा स्वर्ग के देवताओ ने की थी । महाभारत के पाँच पाडवो की तो एक पत्नी थी । लेकिन अपनी पुत्री का पति ऐसा हो—यह उनके गले के नीचे नही उतरता था । इसी कारण वे उबल पडे थे ।

अब इधर लडकी का मान और उधर दामाद का न आना देखकर वे भयभीत हो उठे थे । इशारे से कई बार उन्होने जान्हवी से कहा भी था कि नारी का एकमात्र स्थान उसके पति का घर होता है, पति कैसा ही क्यो न हो ?

एक दिन पुत्री के दुख से द्रवित हो उन्होने पाप-पुण्य की मीमासा भी कर

डाली थी। मनुस्मृति का एक श्लोक पढा था जिसका मतलब था कि न मास भक्षण, न मद्यपान, न वासना ही सृष्टिकर्म विरुद्ध दोष है। प्राणिमात्र के लिए यह सब स्वाभाविक है। एक अन्य श्लोक का भी उद्धरण देते हुए उन्होने कहा था कि पशु और मनुष्य मे केवल विवेक का ही अतर है। इशारे से ही उन्होने व्यक्त किया था कि बाबू रूपकिशोर ने अभी विवेक बिलकुल नही खो दिया है। वे सुधर सकते है, सुधारे जा सकते है।

पिता का इशारा समझने के बाद भी न मालूम किस अदृश्य शक्ति की प्रेरणा से जान्हवी के पॉव कभी घर की ओर अग्रसर होने को उद्यत नही हुए। आज माधुरी की आशका भरी बाते सुनकर वह मन ही मन रो उठी—घर वापस जाने को मन तैयार हो आया। लेकिन नही, उसने सोचा, पन्द्रह मिनट भी तो नही लगता गाडी से यहॉ आने मे। जब वे ही नही आ सके तो वह कौन मुँह लेकर जायेगी ?

माधुरी से उसने कहा, 'माधुरी, करुणा पर ध्यान रखना। उसे अपनी तरह बनाने की कोशिश करना।"

"बना चुकी मै। स्वय तुम्हारी गोद मे जैसा तुमने बनाया वैसा मै बनी। करुणा के साथ तुम बडा अन्याय कर रही हो। आखिर ऐसी भी क्या बात है। एक बार तो खून भी माफ कर दिया जाता है।"

करुणा की मामी आ गयी। अतिम वाक्य उन्होने सुन लिया था। बात समझ कर बोली, "खून माफ हो सकता है, माधुरी ! पर नारी अपना अपमान अपने पति से ही, नही सह सकती। तुम भी नारी हो। किसी दिन यह बात समझोगी, तब कहोगी कि मामी ठीक कहती थी।"

"पर मामी जी, क्या आप भी चाहती है कि हमलोग बरबाद हो जायँ ? मॉ से दूर मेरा और करुणा का क्या बनेगा ?"

"तुम्हारी बात झूठ नही। लेकिन इतने बडे आदमी है, इतना नाम और शोहरत है, इतने अनुभवी है, क्या उनके सोचने का यह कर्तव्य नही ? तुम एक बार उन्हे भेजना तो।"

मामी का स्नेह-सिक्त इशारा और युक्ति-सगत तर्क माधुरी को प्रिय लगा।

वह बोली, "मामीजी आज माँ को आज्ञा दे दो। बिना इनके आज हमलोग जायेंगे नही।"

"ननदजी हमेशा यहाँ थोडे ही रहेगी। परन्तु जब तक तुम्हारे पिताजी से मै दो बाते नही कर लूँ, तब तक मै स्वय इन्हे नही जाने दूँगी।"

मामी की वाक्पटुता ने माधुरी को मुग्ध ही नही, चकित किया। माँ की मर्यादा को किस प्रकार वे निभा रही थी।

केदार ने भी जो महेश ही की तरह हमेशा चुप रहता था, माँ से एकान्त मे कहा, "माँ अब चली चलो। बाबूजी बहुत ही दु खी है।"

"आऊँगी बेटा, तुमलोगो से अलग कैसे जी सकती हूँ। पर अभी कुछ देर है। तुम लोग इस बात की चिन्ता न करो। खूब पढो-लिखो, पिताजी का आदर करो, बडी जीजी की बात मान कर चलो। मै कही दूर थोडे ही हूँ।"

एक म्लान हँसी की रेखा लाकर उन्होने पुन कहा, "जैसे तुम लोगो मे मै प्रसन्न रहती हूँ, वैसे ही तुम्हारे नाना जी मुझे पाकर प्रसन्न रहते है। बहुत दिनो पर उनकी सेवा का अवसर मिला है। पके आम है। कुछ दिन उनके पास भी काट लेने दो। इम्तहान के कारण और तुम्हारे पिताजी के कारण तुम लोगो को वही छोड दिया है। और दूर ही कितना है?"

माधुरी जानती थी कि घर उन्हे लौटना ही है। यह भी उसने अनुमान लगाया कि जब तक बाबूजी नाना जी से आकर नही मिलते, तब तक माँ के घर लौटने का रास्ता नही। गुस्से का भाव बनाकर वह बोली, 'माँ, अगर तुम नही चल रही हो तो हमलोग भी अब वहाँ नही जायेंगे।"

जान्हवी ने प्रेम से कहा, "तुम लोगो को छोडकर बेटे, मै जी ही कैसे सकती हूँ। आऊँगी, पर अभी नही। तुम सयानी हो, सब समझती हो।"

माधुरी ने मर्म समझा और मौन हो गयी।

जान्हवी ने प्रसग बदल कर पूछा, "कुमार कैसा है?"

"अच्छे ही है।"—अन्यमनस्क भाव से माधुरी ने जवाब दिया।

"उसे भी लाना।"

"अच्छा।"

चलने लगी तब नानाजी ने बुलाया। माधुरी से एकान्त मे कहा, "बेटा, तुम सयानी हो, बुद्धिमान हो और नारी हो। वात कही बिगड न जाय। अपने पिताजी को समझाकर भेजना।"

"अच्छा, नानाजी।"

बच्चे जब चले जा चुके तब चतुर भाभी ने जान्हवी से कहा, "अब वकील साहब को तुम्हारे विना रहने का मजा मिलने लग गया है। बच्चो से कहलवाते है। स्वय आते शरमाते है और शरमायेगे क्यो नही ? ऐसा करतब ही किया है।"

जान्हवी उस रात करुणा को लेकर आशका मे डूबती-उतराती रही। करुणा कही उच्छृखल तो नही हो रही है। उसके सारे बच्चो से, केदार से भी, करुणा का स्वभाव अलग था। वह चचल थी। जिस भाव विशेष मे बहती, उसी मे डूब जाती। उचित, अनुचित का न उसे ज्ञान था, न उसे चिन्ता थी। बचपन से ही करुणा ऐसी थी। रोती तो रोती ही रहती, रूठती तो मानती नही। जो उसका मन चाहता उसी पर अड जाती। प्रगल्भ हो गयी थी, पता नही क्यो ? जान्हवी सोचती रही, 'क्या कुछ देखा माधुरी ने करुणा के प्रगल्भ स्वभाव मे जिससे उसके बारे मे वह आशका पूर्ण बात कह गई। हो सकता है, कोई बात न हो। केवल कहने मात्र के लिए माधुरी ने करुणा का नाम ले दिया हो।' पर किशोर वय की अतिम सीढी पर खडी करुणा को लेकर जान्हवी चिन्तित हो उठी। उसे सोचना पडा कि, 'और किसी के लिए नही तो बच्चो के लिए उसका घर पर रहना जरूरी है। पर जिस अपमान से क्षुब्ध हो वह पति का घर छोड आयी थी, उससे कैसे बिना बुलाये वह वहाँ लौट सकेगी ? उसके पिता का मान कहाँ रहेगा, उसका अपना दर्प कहाँ रहेगा ?'

मन से आवाज आयी, 'विल्वमाला जो एक रखैल थी, उसके यहाँ पति जा सकते थे। पर अपनी पत्नी के यहाँ नही आ सकते थे।' दुस्सह पीडा मिली उसे अपने इस भाव पर। मन मे वह जानती थी कि पति का घर ही उसका अपना घर है जैसे उसके पिता का घर उसकी भाभी का घर था। लेकिन पति की बीमारी की खबर पाकर वह नही जा सकी—यही कल्पनातीत था। और अब अगर वह पति के घर लौटे भी तो क्या वह पहले वाली जान्हवी बनी

रह सकेगी ? पति को वह खो चुकी थी, उनका मन कही और था, उनका अपराध अक्षम्य था। उसने सोचा, 'वह केवल साफ-साफ उससे कह दिये होते, साफ नही तो इशारे से ही अगर बता दिए होते। छलना और धोखे का व्यवहार—यह तो कदापि उचित नही था ?'

पति का घर छोडने की रात की उसे याद आई। पति ने कितने मनस्ताप से क्षमा-याचना की थी। पर पति का व्यवहार बदला कहाँ था ? लूकरगज उनका आना-जाना पूर्ववत् ही था। क्यो ? जान्हवी का दु ख जानकर भी पति का हृदय पिघला क्यो नही ? क्या लूकरगज पति के हृदय मे स्थायी रूप से समा गया है ? क्या वह पति को हमेशा के लिए खो चुकी है ? फिर अगर ऐसा है तो उसका क्या लौटना उचित है ? वहाँ जाकर रात दिन की जलन-कुढन, इसके अलावे उसे मिलेगा क्या ? उससे तो पति से उसका दूर रहना ही अच्छा है। कुछ तो उसका मन शात रहेगा।

अपने विचारो मे खोयी जान्हवी पति-पत्नी के सम्बन्ध के विश्लेषण मे मन ही मन लीन थी जब उसे पिता के कमरे से ये शब्द सुनायी पडे। मुनीमजी कह रहे थे, "आज वकील साहब ने कल्याण समिति मे सुख-दु ख की वह व्याख्या की कि श्रोताओ की आँखे भर आयी। वकील साहब साधु व्यक्ति है। विद्वानो को भी वैसा ज्ञान कहाँ ? पर बाबूजी, वे बहुत ही कमजोर हो गये है, बिलकुल पीले पड गये है। अब वृद्ध लगते है। उन्हे कोई रोग तो नही हो गया है ?"

"उमर भी तो पचास पार कर चुकी है।"—पिता ने दामाद की प्रशस्ति सुन मुनीमजी से प्रेमपूर्वक ही कहा।

"उम्र से क्या होता है ? आप तो सत्तर पार कर चुके है। लेकिन आपका शरीर कितना सबल है। वकील साहब तो अभी कुछ ही दिनो पहले बिलकुल युवक से लगते थे। अब झुर्रियाँ साफ दिखलायी पडती है। लेकिन वे है महात्मा पुरुष। हमारे नगर मे गौरव है।"

"हाँ मुनीमजी, प्रतिभा—गुण देखकर ही तो कन्यादान किया था।"

पिता का स्वर वह आगे नही सुन सकी। सुख-दु ख की व्याख्या ! स्वयं तो वे सुखी ही है। पर दूसरो को दु ख देने मे जरा भी सकोच नही—वह सोचने लगी।

पिता के शब्द फिर सुनायी पडे, "हॉ मुनीमजी, सुख दु ख के मायाजाल का ही तो नाम ससार है। विरले ही सच्चे सुख का उपभोग करते है। सब मिथ्या सुख को ही सच्चा मान बैठते है।"

मुनीमजी का उत्तर था, "वकील साहब ने भी यही समझाया था। कहा था उन्होने कि जो हमारे प्रतिकूल पडता है उसे दु ख कहते है और जो मनोनुकूल होता है उसे सुख। दु ख उन्होने दो प्रकार का बताया था, शारीरिक और मानसिक। बडी वेदना से उन्होने बताया था कि शारीरिक दु ख तो मिट सकता है परन्तु मन का दु ख इसान को समूल नष्ट कर देता है।"

जान्हवी कराह उठी—पति के मानसिक दु ख का अनुमान कर, अपने दु ख को देख। पिता बोले, "साध्वी स्त्री को सुख पाने के लिए दु ख सहना पडता है। सुख से ही सुख कभी नही मिलता।"

पिता ने कुछ उच्च स्वर मे कहा था। शायद वे जान गये थे कि जान्हवी उनकी बाते सुन रही है।

"यही सार था वकील साहब की व्याख्या का,"—मुनीमजी ने कहा, "वह कह रहे थे कि सुख-दु खमय ससार मे सुख के बाद दु ख और दु ख के बाद सुख मिला ही करता है, गाडी के पहिए के समान सुख-दु ख की दशा ऊपर और नीचे की ओर हमेशा बदलती रहती है।"

"हॉ मुनीमजी, यह न बदले तभी कष्ट बढता है। न हमेशा सुख, न हमेशा दु ख ही मनुष्य को सन्तुष्ट कर सकता है। ययाति राजा की कथा तो आपने सुनी ही होगी ?"

"क्या कथा है ?"—मुनीमजी ने पूछा। जान्हवी ने भी कान बढाया।

"ययाति राजा शुक्राचार्य के शाप से बुड्ढा हो गया। उन्ही की कृपा से उसे अपनी वृद्धावस्था के बदले जवानी फिर से मिली—उसके बेटे पुरु की। पूरे हजार वर्ष तक उसने सब प्रकार के सुख-विषयो का भोग किया। अन्त मे वह ऊब गया और उसने यही कहा कि सुखो के उपभोग से ही विषय-वासना तृप्त नही होती। वह बढती ही जाती है उसी प्रकार जैसे अग्नि-कुड मे होम पदार्थ डालने से उसकी ज्वाला बढती है। इसीलिए सुख के उपभोग की भी मर्यादा है।"

मुनीमजी का नया प्रश्न जान्हवी ने सुना, "दु ख का निवारण कैसे सम्भव है ?"

पिता बोले, "दु ख का निवारण सन्तोष-वृत्ति से ही हो सकता है। मन मे दु खो का चिन्तन न करने से, स्थितप्रज्ञ न्याय से। शुभ-अशुभ जो कुछ भी आ पडे उसके बारे मे जो निष्काम रहता है, जो उससे राग या द्वेष नही रखता—वही स्थितप्रज्ञ है। स्थितप्रज्ञ बुद्धि तभी प्राप्त होती है जब सुख मे या दु ख मे अपना कर्तव्य—कर्म—न छोडा जाय।"

जान्हवी को लगा मानो पिता प्रसग द्वारा उसे ही उपदेश कर रहे है कि उसे अपना कर्तव्य निभाना चाहिए और जैसे सुख के बाद दु ख आया है, वैसे ही दु ख के बादल भी भाप बन उड जायेगे और यदि नही भी उडे तो फलाशा छोडकर अपना कर्तव्य ही करना चाहिए।

जान्हवी को अपने पिता पर, जीवन मे पहली बार सच्चे गर्व का बोध हुआ। जीवन की अनुभव-राशि के शिखर पर बैठे पिता मनुष्यमात्र के कल्याण की बात कर रहे थे। इस मरीचिका के मृत्यु-पथ मे मन की शाति का यही एकमात्र रास्ता भी है। उस दिन जान्हवी का मन जितना दु खी रहा, उतना ही पिता का उपदेश उसे प्रिय लगा।

उस दिन उसने भाभी का गृह-कार्य मे उनके मना करने पर पर भी उत्साह से हाथ बँटाया। भाभी ननद के उत्साह से प्रसन्न हुई। उन्होने कहा, "ननदोईजी अब रास्ते पर आ रहे है।"

पर रात को जान्हवी जब अपने पलँग पर सोने के लिए लेटी तो उसे पीडा का तीव्र अनुभव हुआ जैसे अक्सर उसे आजकल होता था। अपने जीवन मे उसे अँधेरा ही अँधेरा दिखायी पड रहा था। पीडा का आवेग कम होने पर उसने मन ही मन सोचा कि ससार मे सुख की अपेक्षा दु ख ही क्यो अधिक है ? और सुख है भी तो इतना अस्थायी क्यो ? जान्हवी—अदार्शनिक जान्हवी को—गुरु नानक का एक पद याद आया, जो मनुष्य सुख को सुख नही मानता, दु ख को दु ख नही मानता, वही 'गोविन्द' मे लीन हो सकता है। 'गोविन्द तो उसका पति है'—सस्कार बोल उठा। उसमे जान्हवी को लीन होना चाहिए, उसके

उचित-अनुचित का विचार बिना किये। लेकिन यह सम्भव कहाँ हो रहा था ? मनुष्य का शरीर पाकर, तृष्णा——राग की वृत्तियो से——मन उबर कब सकता था ? तो क्या जीवन भर इसी तरह तडप-तडप कर मर मिटना होगा ? अगर हाँ, तो इस जीने से लाभ क्या ? दु ख के वेग मे जान्हवी भूल गयी पिता का उपदेश कि दु ख के बाद सुख आता है, भूल गयी कि फलाशा त्यागकर कर्तव्य करना ही मन को शान्ति देना है। मन की चिन्ता मे, जितना उसे भूलने की उसने कोशिश की, उतनी ही अधिक तीव्रता से उसमे डूब गयी। रात भर उसका मन असह्य दु ख से कराहता रहा।

जान्हवी उस शुक की तरह तडप रही थी जो फडफडा कर सोने के पिजडे के बाहर उड जाना चाहता है, पर फडफडाने के अलावा उड सकने मे सर्वथा असमर्थ है। उसका जीवन फडफडा रहा था और जितनी अधिक उसकी पीडा बढती जा रही थी, उतना ही अधिक बलवान उसका मान होता जा रहा था।

महेश की चिट्ठी आई थी। माँ को उसने बुलाया था। वह जाना चाहती थी। पिता को जान्हवी ने पत्र दिखाया।

पुत्री का भाव जानकर पिता ने कहा, "कोई हरज नही, पूना जाने मे। पर माधुरी, करुणा को यहाँ छोडकर जाना क्या उचित होगा ? नही बेटे, अभी मै पूना जाने की सलाह नही दूँगा। घर-ससार को इस हालत मे अभी छोडना उसे बरबादी से बचाना नही होगा। मै पिता हूँ। तेरी माँ और मैने बहुत कुछ सोच-विचार कर रूपकिशोर से रिश्ता तय किया था। रूपकिशोर ने हमे निराश भी नही किया। तेरे रिश्ते के बाद ही उसका भाग्य चमक उठा। वह अच्छा वकील बना, उसने समाज मे आदर प्राप्त किया। लेकिन चिराग तले अँधेरा [illegible] हम भूले बैठे थे। तुम्हे इतना दु ख झेलना पडेगा——यह हम कल्पना भी नही कर सकते थे। होनहार था बेटा, वैसे तेरे पति पर समाज की तरह मुझे भी नाज है। मुझे आशा है, सब ठीक हो जायगा। परिस्थितियो मे पडकर अच्छे से अच्छे इंसान से भूल-चूक हो जाती है। काश, आज तेरी माँ होती। उस देवी का अद्‌भुत प्रभाव था सब पर। आज वह होती तो रूपकिशोर की ऐसी हिम्मत नही हुई होती। वह नही रही, लेकिन मै तो हूँ। और बेटे, रूपकिशोर

को तू अगर माफ कर सकेगी तो सब ठीक ही होगा। घर अपना है, उसे सँभालकर, सँवारकर रखना तेरा काम है। घर को छोड कर भागने से तो काम नही चलेगा।"

शाम को जान्हवी के बडे भाई ने कहा, "आज जीजाजी मिल गये थे। मुझे जबरदस्ती घर पकड ले गये। खाना खिलाकर ही आने दिया। उन्हे इतना कमजोर, इतना क्लान्त, मैने कभी नही देखा।"—फिर धीरे से कहा, "तुम अन्याय कर रही हो। उनके ऐसे अस्वास्थ्य के समय तुम्हे उनके साथ रहना चाहिए।"

जान्हवी ने सब सुना। सोचती रही कि पति की आत्मा पीडित है, परन्तु क्यो ? वे तो पूर्ण अनुभवी है। जो कुछ उन्होने किया, सोच-समझ कर ही किया होगा।

पति की दशा पर लेकिन उसका मन पसीज उठा, भर आया। वह सोचने लगी, 'तो क्या जो परिस्थिति है, उसे स्वीकार करनी ही पडेगी ?' लेकिन ऐसा करना सम्भव कैसे था ? जान्हवी इस सोच के ताने-बाने मे खो गयी।

भाभी ने उसके मन की चचलता का अनुमान कर कहा, "ननद रानी, जीवन खोने की वस्तु नही। चिन्ता करने से तो कोई लाभ नही होगा।"

"भाभी, अब जी ऊब चुका है, जीने का मन नही करता।'

भाभी—जिसने जीवन मे किसी हृदयगत परिस्थिति का सामना नही किया था, बोली, "ऐसा नही कहते ननदजी, बडे भाग्य से मनुष्य का तन मिलता है। क्या नही है तुम्हारे ससार मे। एक भूल-चूक की बात है। फिर यह जीवन है, इसमे सबको कोई न कोई दुख होता ही है। लेकिन जीवन को, खास कर ऐसा जैसा तुम्हारा है, मिट्टी मे मिला देना बुद्धिमानी नही। तुम्हारे बच्चे है। उन्हे आदमी बनाना है। इन बच्चो के प्रति तुम्हारा कर्तव्य है।"

लेकिन जान्हवी का क्षण-क्षण दूभर था। जीवन जडवत् होता जा रहा था। कोई स्पृहा नही शेष थी, कोई उत्साह नही था—जैसे वह केवल मात्र जी रही थी मौत की प्रतीक्षा मे, क्षण प्रति क्षण अपने से, ससार से ऊब कर।

२६

बाबू रूपकिशोर के मन का ताप जान्हवी से कम नही था। जो कुछ उन पर बीत रही थी वह किसी भी इसान की सहन-शक्ति से बाहर की बात थी। उनके मन का रन्ध्र-रन्ध्र दारुण व्यथा से विध कर जर्जर हो रहा था। ऊपर से अनिद्रा का रोग उन्हे खाये जा रहा था। पीडा शायद एक बार वे सह लेते। लेकिन अनिद्रा से वह बेतरह घबरा जीवन से पनाह माँग रहे थे। क्या करे, क्या नही—वे समझ नही पाते थे। रात-दिन अपने को किसी न किसी काम मे लगाये रखने की भरपूर कोशिश वे करते थे। लेकिन सब व्यर्थ, वह मन ही मन अपने चतुर्दिक फैले अन्धकार मे समा जाने की प्रार्थना किया करते थे।

माधुरी पिता का दुख, उनका रोग, सब समझती थी। वह भी कुछ कर नही पाती थी। नानाजी की बात उसे अच्छी तरह याद थी। पिता से जब-जब इस प्रसग को उसने छेडना चाहा, उसे उनका चेहरा देखकर चुप रह जाना पडा। इशारे से भी वह पिता को माँ को जाकर लिवा आने को कहने का साहस नही कर सकी। उसने कितनी तरकीबे सोची, पर कोई कारगर नही हुई। तब बहुत दिनो के बाद एक दिन, बहुत सोच-विचार कर, वह लूकरगज पहुँची।

दोपहरी ढल रही थी। रानी बिल्वमाला के मकान पर बाहर कोई नही था, चारो ओर सन्नाटा छाया था। [illegible] माधुरी को नही मिली। फाटक के अन्दर, उद्यान पार कर जब मकान के प्रकोष्ठ मे वह पहुँची, तब भी उसने किसी को नही देखा। आवाज उससे देते नही बनी। काफी देर तक वह खडी रही। फिर बरामदे मे पडी एक आरामकुर्सी पर बैठ गयी। बैठे-बैठे भी मिनटो गुजर गये। माधुरी ने वापस चले जाने का निश्चय किया। अचानक शिशु खेलता-खेलता बाहर निकल आया। माधुरी को बैठा देख, उसके पास आ खडा हुआ। माधुरी बालक के सौजन्य पर मुग्ध हो उससे खेलने लगी। कुछ देर बाद अन्दर से आवाज आयी, "राजा भइया, कहाँ चला गया?" बिल्वमाला उस आवाज पर शायद सोते से जगी। बीरा मे भरे स्वर मे बोली, "देखो तो कहाँ भटक रहा है?"

बीरा जो बाहर आयी तो बालक को माधुरी के सग खेलते देख चकित रह गयी, न माधुरी ने उसे देखा, न शिशु ने । बीरा चुपके से अन्दर लौट गयी । बिल्वमाला को बाहर ला माधुरी के साथ बालक को खेल मे मग्न दिखाया । बिल्वमाला उस दृश्य से पुलकित हो उठी, आँखे भर आयी । आवाज़ दिया उन्होंने, "कव आयी, बेटे ?" और माधुरी की ओर वढी ।

माधुरी का ध्यान तब टूटा । बालक को गोद मे उठा उसने रानी बिल्वमाला को प्रणाम किया और कहा, "वडी देर से आयी हूँ । कोई बाहर था नही । लौट जाने का मोच रही थी, तव तक राजा भइया आ गया । उसी के साथ जी बहल गया ।"

"तुम्हारा घर है बेटा, तुम्हे अन्दर आ जाना चाहिए था ।"—कहकर माधुरी को बिल्वमाला अन्दर ले गयी । नाश्ता लाने का बीरा को आदेश दे, वह माधुरी के पास सोफे पर बैठ गयी ।

रानी बिल्वमाला के चेहरे पर भी चिन्ता की कालिमा स्थायी रूप से आ छा गई थी, मुँह पीला पड गया था । वह भी जल रही है—माधुरी ने साफ देखा ।

विचारो के वेग मे बहने से अपने को रोककर उसने कहा, "रानी माँ, एक भीख माँगने आयी हूँ । तुम तो सब जानती ही हो ।"

बिल्वमाला चौक पडी । चेहरे की कालिमा घनी हो गई । मन का दु ख फूटने को आया । माधुरी को वह जानती थी । पता नही क्या भीख आज माँगने वह आयी थी, सोचकर क्षणभर के लिए तो वे काँप उठी । माधुरी जो भी कहेगी, उसे वह अस्वीकार कर ही नही सकेगी—चाहे परिणीत पति से सम्बन्ध-विच्छेद ही क्यो न हो ? उनका हृदय हाहाकार कर उठा । बाबू रूपकिशोर ने इधर आना प्राय बन्द ही कर दिया था—इसी से बिल्वमाला की छाती फटी जा रही थी । नारी हृदय, उनके दु ख को वह सहृदयता से समझती थी । उसी के कारण परिणीत पति का फला-फूला घर नष्ट हो रहा था, एक भयानक आँधी की चपेट मे आ गया था, जिससे जान्हवी ही नही, परिणीत पति के उखड जाने की भी नौबत आ गयी थी , स्वय बिल्वमाला का सब कुछ लुट जाने वाला था । अपराधी तो वह थी ही, अब निराश्रित होने की पारी थी । फिर भी जिसको

सर्वस्व समर्पण किया, जिसे पति के स्थान पर बैठाया, उसको लेकर एक रही-सही आशा थी। उससे जीवन भर के वियोग की आशका बिल्वमाला को एडी से चोटी तक झकझोर गयी। जिस आँधी की चपेट से वह बचना चाह रही थी, वह सिर पर मॅडलाती दिखायी पडी। उसने लेकिन सोचा, 'माधुरी की बात को न मानना मुमकिन ही नही।' मन के अन्तराल से उठी पीडा की लहर को दबा कर वह बोली, "बेटे, तुम्हे मै अपनी सगी बेटी मानती हूँ। आज पहली बार स्वय तुम मुझ अभागिन के घर आई हो। आज तुम्हारी कोई भी बात टाल नही सकूँगी। मेरी शक्ति-सीमा के भीतर की जो भी बात तुम कहोगी, वही होगा।"

"रानी माँ, वहुत विश्वास लेकर आयी हूँ।"—माधुरी का असमजस अभी विलकुल मिटा नही था।

"अपनी बात कहो, बेटे।"—बिल्वमाला सब कुछ सुनने को तैयार थी।

बालक माधुरी के पास से आकर बिल्वमाला की गोद मे बैठ गया था। टुकुर-टुकुर वह माधुरी की ओर ही ताक रहा था। रानी ने माधुरी से कहा, "तुम्हे देख कर कितना खुश है। इसके मारे आफत है। अब चलने लग गया है। देखो न, हम लोगो की जरा आँख लग गयी। यह बाहर पहुँच गया। सयोग से तुम थी, नही तो झाड-झखाड मे जाकर तितली पकडने की कोशिश करता। एक दिन हाथ मे काँटा चुभो आया था।"

तितली पकडने की कोशिश दद्दा—महेश भी—करते थे, माधुरी ने माँ से, पिता से सुना था। बालक की ओर उसने स्नेह के नये भाव से देखा। उसकी आँखो की पुलक विल्वमाला से छिपी नही रही।

बिल्वमाला ने फिर पूछा, "बात नही कही?"—उत्कठा उनकी प्रकट थी।

"कोई खास बात नही, रानी माँ, बाबू जी से एक बात कहनी है। लाख चाह कर भी मै उनसे नही कह पायी। फिर सोचा कि तुमसे अधिक हितू हम लोगो का कौन है? इसीलिए साहस कर तुम्हारे पास आयी हूँ।"

बिल्वमाला के मन की आशका कुछ कम हुई। बात उतनी गम्भीर नही, जितनी उन्होने सोची थी। मगर उत्कठा अभी समाप्त नही हुई थी। माधुरी की ओर वह जिज्ञासा से देखती रही।

माधुरी कह रही थी, "माँ को तो जानती ही है, नानाजी के घर जा बैठी है, आ नही रही है। यहाँ हम बच्चो की और बाबूजी की भी हालत हर दिन बुरी से बुरी हुई जा रही है। बाबूजी तो अपना स्वास्थ ही खो बैठे है, अनिन्द्रा ने ऊपर से धर दबाया है। हम लोगो ने लाख कोशिश की, पर माँ आ नही रही है। अभी तो बात बढी नही। अगर बढ गयी तो सँभाल के बाहर की हो जायगी।"

रानी माधुरी का इशारा नही समझ सकी। आशका की सिहरन फिर एक बार मन को झकझोर गयी। दृढ स्वर मे ही वे बोली, "बहन जी को मना लाने का रास्ता क्या है ?"

"रानी माँ, तुम चाहो तो सब ठीक हो सकता है।"

बिल्वमाला का मन मसोसकर चीख पडने को आया, मन मे जो आशका थी, उसने जोर पकडा। माधुरी सम्बन्ध-विच्छेद माँगने आयी है, परिणीत प्रेमी से विलग कराने आयी है—इस सोच से रानी का चेहरा एकाएक सफेद हो उठा। 'नही, नही'—वह चिल्लाना ही चाहती थी कि बीरा, धीरा, शरबत-फल चाँदी की तश्तरियो मे लेकर आ पहुँची।

रानी ने चित्त को सुस्थिर कर किसी प्रकार कहा, "बेटे, कुछ खाओ।"

"खाकर आयी हूँ, रानी माँ !"

"यह तो जानती हूँ। पर मेरा भी तो कुछ हक है अपनी बेटी पर। तुम मुझे रानी माँ जो कहती हो।"

"रानी माँ तो हो ही। तभी तो तुम्हारे पास आने मे झिझक नही हुई।"

"बेटा, यह हमलोगो का सौभाग्य है कि तुमने चरण-धूलि दी। तुम्हारी इस कृपा को क्या मै कभी जीवन भर भूल सकूँगी ?"

बीरा-धीरा कमरे के बाहर जा चुकी थी। माधुरी ने बालक से पूछा, "क्या खाओगे ?"

बालक ने एक सतरा उठा लिया। माधुरी फाँके सँवार-सँवार कर उसे खिलाने लगी।

"तुम भी कुछ लो बेटा,"—कहकर बालक से बोली, "जीजी रानी घर

आयी है तुझे आशीर्वाद देने और तू उन्हे कुछ खाने भी नही देता ।"

माधुरी ने रानी के सच्चे आग्रह को अमान्य न करने के लिए फल खाया, शरबत पिया और कहा, "रानी माँ, बाबूजी को एक बार माँ के पास भेजना है। इस नाहक के खिचाव को खतम करना है। तुम्हारी बात वह टालेगे नही।"

बिल्वमाला का जी मे जी अब आया, मन की शका मिट गयी, हृदय का काँपना बन्द हुआ। गद्गद् हो करुणा से आर्द्र होकर बोली, "माधुरी कोशिश करूँगी। कई बार कह भी चुकी हूँ। अब जैसे ही भेट होगी फिर कहूँगी, परन्तु अपने बाबूजी को तो तू जानती ही है। अकारण की बात को तूल दिये बैठे है।"

माधुरी ने कहा तो कि तुम्हारी बात वह नही टालेगे। परन्तु वह सोच रही थी कि क्या पिता की रानी से बहुत दिनो से भेट नही हुई। उनके कहने से तो यही मालूम पडता था। अगर पिता यहाँ जल्दी नही आये, तब क्या होगा ? यह भूलभूलैया—जिससे चारो ओर दु ख ही फैल रहा था, मिटेगा कैसे ?

लेकिन रानी के शब्द सुनायी पडे, "बेटे, जब तुम्हारा मुझ पर इतना विश्वास है तो भगवान हम लोगो की जरूर मदद करेगा। मै उन्हे बहनजी को लिवा लाने जरूर भेजूँगी और अगर मै तुम्हारी पवित्र रानी माँ हूँ तो भगवान हमारी मदद करेगे। असफल होने का मतलब मै जानती हूँ। यह हरा-भरा ससार हम सबका उजड जायगा। बहनजी को लिवा लाना ही है और बिना कोई देर किए।"

बिल्वमाला प्रेम से गद्गद् थी। आज उन्हे माधुरी से कोई दूरी नही थी। वे बहुत पहले से ही उसे सच्चे मन से प्यार करती थी। बहुत बार माधुरी को अपने घर बुलाने की उनकी इच्छा हुई थी। आज वह स्वय आ गयी थी।

"जल्दी ही रानी माँ !"—माधुरी ने जोर दिया।

"हाँ बेटे, अब कुछ कहने की जरूरत नही। जैसे भी हो उन्हे भेजना ही पडेगा। उनके न जाने से दु ख की यह दावा सबको जला डालेगी।"

बीरा आकर बैठ गयी। धीरा नाश्ते की तश्तरी उठा ले गयी। माधुरी ने कहा, "अब आज्ञा दो, रानी माँ।"

"यह कैसे होगा ? अभी तो आयी, अभी जायेगी। नयी-पुरानी हो तो ले।"

"नयी-पुरानी तो कब की हो चुकी । कितनी देर बाहर बैठी रही । चली ही जाने वाली थी कि राजा भैया आ गया ।"

"चलो उसी ने तुम्हारा सबसे पहले स्वागत किया । उसी का हक भी है ।"

"रानी माँ, अब चलने दो ।"—माधुरी ने फिर कहा ।

"जल्दी क्या है ?"

"घर अकेला है ।"

"तुम्हे जाने देने को मन नही करता बेटे,"—हृदय के उद्गार थे बिल्वमाला के । —"सयोग से तो आई हो ।"

"जब चाहोगी तभी आ जाऊँगी, रानी माँ !"

"माँ-बाप रोकेगे नही ?"

"तुम्हारे यहाँ आने के लिए माँ भी कभी रोकेगी नही ।"

बिल्वमाला की आँखो मे प्रेमाश्रु आ झलके । बीरा से बोली, "वह कमरा खोल तो । तिजोरी की चाभी ला ।"

कमरा खुला तो बिल्वमाला ने आभूषण और जवाहरात की तिजोरी खोलकर माधुरी से कहा, "पहली बार स्वय आयी हो । सब तुम्हारा है । जो चाहो, अपनी रानी माँ का मन रखने के लिए ले लो । इनकार मत करना, मुझे दु ख होगा ।"

माधुरी घोर असमजस मे पडी । यह बात होगी, इसका उसने स्वप्न मे भी अनुमान नही किया था । लेकिन बिल्वमाला के भरे भाव के बाद इनकार करना सर्वथा अशोभन था । उसने कहने के लिए कहा, "रानी माँ, यह सब मेरा तो है ही । जब चाहूँगी ले लूँगी । अभी सुरक्षित रखा रहने दो ।"

"नही बेटे, ऐसा नही । जो कुछ पसन्द हो ले लो ।"

"रानी माँ"—तब माधुरी को कहना पडा, "आशीर्वाद के रूप मे जो चाहो तुम्ही दे दो । तुम्हारे इस आशीर्वाद को जीवन भर सँजोकर रखूँगी ।"

मोतियो का कर्णफूल रानी बिल्वमाला ने माधुरी के खाली कानो मे पहना दिया । अँगूठियो के एक डब्बे से हीरे की एक अँगूठी निकाल कर बोली, "उसे दे देना ।"

"किसे रानी माँ ?"—न समझ कर माधुरी ने पूछा ।

"कुमार को, और किसे तू अँगूठी देगी ?"—परिहास किया बिल्वमाला ने।

"यह तुम्हारा काम है, रानी माँ ! तुम जब चाहो बुलाकर पहना देना।"

"वह आयेगा ?"—पूछा बिल्वमाला ने।

"क्यो नही ? जब भी तुम बुलाओगी वह जरूर आयेगे।"—सकोच से ही माधुरी ने कहा। कुमार के कारण नही, बिल्वमाला के हार्दिक स्नेह से उसके मन मे सकोच की एक लहर बह निकली थी।

बात समझकर रानी ने माधुरी को कलेजे से लगा लिया। माधुरी को सदा उस गोद मे मातृत्व की छाया मिला करती थी। वह भी विभोर हो उठी।

बिल्वमाला बोली, "हाँ री, मै ही सब कुछ करूँगी। तेरे पिता से मैने कह दिया है। लेकिन सुना तू ही अभी मना कर रही हे।"

"तुम लोग जो चाहोगी, वही होगा, रानी माँ !"—माधुरी कह गयी।

रानी ने माधुरी का हृदय पहचाना। वे बोली, "अच्छा हुआ बेटे, यह प्रसग भी आज उठ गया। बात निश्चित हो गई। अब बहन जी के आने भर की देरी है।"

कमरे से जब बिल्वमाला के साथ माधुरी बाहर आयी तो उसने देखा कि साडियो और कपडो के दो पैकेट उसके लिए सजाकर रखे थे।

माधुरी ने परिहास किया, "रानी माँ, ऊब गयी ? आज ही बिदा कर देना चाहती हो।"

"बिदा करूँगी, बेटे ! भगवान ने चाहा तो अपने ही हाथो सजा-सँवार कर। भगवान पशुपति नाथ तुम दोनो को हमेशा-हमेशा सुखी रखेगे। इस आभागिनि माँ को कभी भूलना मत।"—बिल्वमाला की आँखो से मौन धार बह निकली।

माधुरी भी भाव-विभोर हो उठी।

बिल्वमाला ने कुछ देर के मौन के बाद कहा, "धीरा तुम्हारे साथ जाकर घर तक छोड आयेगी।"

"कोई जरूरत नही, रानी माँ।"

"अकेले कब जाने दे सकती हूँ बेटे ? मुझे माँ जो कहती हो।"

बीरा के चेहरे से लगा कि धीरा के जाने की बात उसे अरुचिकर लगी। लेकिन रानी ने उस पर ध्यान नही दिया।

बीरा मगर पूछ बैठी, "धीरा अकेले लौटेगी कैसे ?"

माधुरी ने जवाब दिया, "आ ही जायेगी।"

बिल्वमाला हॅस पडी और बोली, "उसे रोक मत लेना।"

"क्यो रानी माँ, एक दिन हमारे यहाँ रह ही जाय तो क्या बुरा होगा ?"

बिल्वमाला ने फौरन माधुरी की ओर भरपूर आँखो से देखते हुए कहा, "जैसा चाहो करना बेटा! वह तुम्हारी दासी है।"

बालक को प्यार करना चाहा माधुरी ने चलने के पहले। वह बीरा की गोद मे चिपका था। माधुरी का ध्यान एकाएक बीरा और बालक पर गया। पहली बार उसकी आँखो मे ज्ञान की एक नयी ज्योति जागी—मात्र पल के लिए। अपने भाव को मन ही मन भ्रम मान वह चलने को उद्यत हुई।

कमरे के बाहर होने के पहले माधुरी ने पिता के तैल-चित्र को देखा जो जेनरल रणधीरेश्वरनाथ, गगन मण्डल शिरोमणि, के चित्र के समानान्तर टॅगा था। बिल्वमाला ने भी चित्रो पर उसकी पुतलियो के घुमाव को लक्ष्य किया।

रानी माँ को प्रणाम कर और बीरा का प्रणाम स्वीकार कर वह बाहर आयी। फाटक पर बिल्वमाला ने परिहास किया, "पिता से गाडी नही माँग सकी ?"

"उनसे तुम्हारे यहाँ आने के लिए पूछना जरूरी नही समझा।"

बिल्वमाला झिझककर भी प्रेम पुलक से हॅस पडी।

रिक्शे मे माधुरी ने धीरा से पूछा, "बीरा तुम्हारी बहन है ?"

"हाँ, दीदी रानी।"

"रानी माँ, बडी सदाशय है।"—केवल कुछ कहने के लिए माधुरी ने कहा।

"हाँ, दीदी रानी।"

"हमारे घर तो तुम्हे तकलीफ होगी ?"—माधुरी ने फिर पूछा।

"क्यो दीदी रानी, उसी घर से तो यह घर है।"

"कैसे ?"—पूछ गयी माधुरी।

"आपको शायद मालूम नही। मुकदमा चला था। वकील साहब के का' ही यह सब सम्पत्ति बची रही।"

माधुरी ने मुकदमे की बात सुन रखी थी।

फिर मौन ही वे घर पहुँची। तीन ही बजा था। केदार, करुणा, पिता, कोई अभी घर नही लौटे थे।

धीरा वकील साहब के घर पहली बार आयी थी। उसका घर जो उसकी रानी का परिणीत पति था, जिसे सस्कार और प्रथा के ही अनुसार—हृदय के आवेग से नही उसने भी अपना सर्वस्व समर्पित कर सुख पाया था, उस घर मे आने की लालसा मे उसे उत्साह ही था। वहाँ पहुँच कर उसकी आँखो मे प्रसन्नता चमक उठी। मन ही मन वह परम प्रसन्न थी कि वह आज अपने सरकार को देख पायेगी—बहुत दिनो पर। सरकार ने लूकरगज आना-जाना बन्द ही कर दिया था। रानी दु खी थी, बीरा दु खी थी और धीरा का भी दु ख कम नही था, यद्यपि वह ठीक दासी थी जब कि बीरा की स्थिति ठीक दासी जैसी नही थी। उसको हमेशा इस बात मे क्षोभ रहा था। पर वह, जितना उसे मिला उतना ही अपना अहोभाग्य मानकर प्रसन्न थी। सरकार के आजकल न आने-जाने का कारण सबको, उसे भी मालूम था। जिस परम्परा मे वह पल कर बढी हुई थी—उसमे ऐसा कारण और व्यवहार समझ के बाहर की बात थी, लेकिन आज वह प्रसन्न थी कि वह अपने सरकार को देख पायेगी, उनकी सेवा कर पायेगी। शायद दीदीमणि उसे एक-दो दिन रोक ले। सरकार के अस्वास्थ्य की दशा मे धीरा को उनकी सेवा का यह अवसर पाना क्या कम सौभाग्य की बात थी? वह भावमग्न थी। दीदी मणि उसकी भाव-गरिमा देख रही है, कही कुछ समझ न जायँ—इससे धीरा सँभल गयी। वह दासी थी। उसे दासी जैसा ही व्यवहार करना उचित था।

घर पहुँचने तक माधुरी अपने विचारो मे डूब-उतरा रही थी। महाराज से उसने नाश्ता तैयार करने को कहा और अपने पलँग पर लेट गयी। धीरा ने उसका पाँव दबाना शुरू किया। माधुरी ने बहुत मना किया, लेकिन वह नही मानी। माधुरी अपने विचारो के वेग मे रनिवास के जीवन और वहाँ की दासिय

ार सोच रही थी। धीरा की बहन बीरा के पास बालक कितने प्रेम से चिपटा था, या बीरा ही बालक की असली माँ है, फिर .. । उसने अपने मन में उठे भाव को अशोभन माना, उसे मन से उखाड फेकने की कोशिश की । मन का भाव मगर टस से मस नही हो रहा था । तब तक रग्गा-केदार आ गये ।

बच्चो के आ जाने से भी घर का सन्नाटा कम नही हुआ, वातावरण की गम्भीरता मे कुछ कमी जरूर आ गयी ।

महाराज ने नाश्ता मेज पर लगा दिया । नाश्ते का सरजाम अच्छा था । बच्चो ने नाश्ता किया । धीरा ने सहायता की—दासी-वृत्ति का कर्तव्य निभाया । महाराज का भी उसने हाथ बँटाया । महाराज से उसकी मैत्री हो गई ।

बच्चो के नाश्ते के बाद माधुरी का आदेश मान धीरा ने भी नाश्ता किया, चाय पिया ।

माधुरी पिता की प्रतीक्षा कर रही थी । कचहरी से लौटने मे इतनी देर उनको होती नही थी । लेकिन पाँच बज गये और वह नही आये ।

माधुरी के चले आने के बाद ही बिल्वमाला ने बाबू रूपकिशोर को कचहरी मे सदेश भेजा था कि बहुत ही जरूरी काम है, कचहरी से सीधे वह लूकरगज पहुँच जायँ । यह भी सन्देश मे था कि काम इतना महत्वपूर्ण है कि किसी तरह अगर उनका आना नही हुआ तो बिल्वमाला स्वय उनसे मिलने आयेगी । बाबू रूपकिशोर लूकरगज उस दिन कभी नही जाते, अगर बिल्वमाला के उनके पास आने की बात से वे डाँवाडोल नही हो जाते ।

रानी की मुखमुद्रा गम्भीर थी । नारी का दर्प मानो जाग उठा था । बाबू रूपकिशोर से बोली, "आपको यहाँ बुलाकर आपको दु खी करना नही चाहती थी । लेकिन काम ही ऐसा आ पडा ।"

जीवन मे सब ओर से प्रताडित बाबू रूपकिशोर ने उत्तर मे कुछ भी नही कहा । वे चुपचाप किसी अशुभ बात की आशका से पीडित कुछ भी सुनने के लिए तैयार थे । दिमाग मे एक बात उठती थी, फिर मिट जाती थी, दिमाग मे एक प्रकार का अँधेरा छा गया था जिसमे कुछ भी सोचना-समझना आसान नही था । बीरा तब तक चाय ले आई ।

"चाय मै नही पी सकूँगा।"—अजीब विद्रूप के भाव से बाबू रूपकिशोर बोल पडे।

उनके स्वर की कठोरता से बिल्वमाला सहम गयी। कहना चाह कर भी चाय पीने का आग्रह नही कर सकी।

कुछ देर खडी रह कर बीरा भी चाय लिए वापस चली गयी, जैसे कि उसने जीजी रानी और वकील साहब के मन की आशका से लौट जाना ही उचित समझा हो।

बीरा के चले जाने के बाद बिल्वमाला ने ही किसी प्रकार मौन तोडा ओर कहा, "कल बहन जी को जाकर घर वापस लाये।"

"यही कहना इतना जरूरी था ?"

बिल्वमाला के मन का बाँध टूट पडा। जैसे हृदय उभड आया हो ऐसे स्वर मे बोली, "मेरे ही कारण बहनजी को इतना दु ख पहुँचा है। आपको क कम दु ख सहना पड रहा है ? अगर वे न आयी तो मुझे नरक मे भी ठौर नहीं मिलेगा और जितनी ही देरी होगी, उतना ही कठिन उनका लौटना हो जायेगा। क्या आप मेरी इस छोटी सी बात को नही मानेगे ?"

बाबू रूपकिशोर जरूरी कारण जानकर कुछ आश्वस्त हो गये थे। मन ही मन वह भी समझते थे कि उनके जाने पर ही जान्हवी लौट सकेगी। बिल्वमाला की ओर उनकी आँखे उठ गयी। हृदय मे एक करुणा की लहर बह निकली और मुँह से निकाला, "वहाँ जाना बडा कठिन है। तुम्हे सब कुछ मालूम नही।"

विश्वास के स्वर से बिल्वमाला के मन का रोष-दर्प भी करुणा मे घुल गया। आश्वासन के भाव से ही जैसे परिणीत प्रेमी पर फिर उसने पूरा अधिकार पा लिया हो, उसने कहा, "मुझे सब मालूम है। बिना गये अब काम नही चलता और अगर मेरा-आपका सम्बन्ध पवित्र है तो आप कल ही जाइये, बहन जी जरूर घर आ जायेगी। भगवान हमारी पवित्रता की अवश्य रक्षा करेगे।"

बिल्वमाला के नये रूप को निहारते हुए बाबू रूपकिशोर सोच रहे थे " ससुर के घर जा अपना काला मुँह दिखाना क्या, मौत के मानिन्द दु ख से क कम होगा ? ससुर की क्रोध भरी बाते, जान्हवी की दशा—सब उनकी आँखो मे

आकर छा गया। कैसे वे जान्हवी के पास जा सकेंगे—यह वह समझ नही पा रहे थे। बाबू रूपकिशोर के मन के सघर्ष का आभास पा बिल्वमाला ने कहा, "कल शाम तक बहन जी को जरूर लिवा लाइये। वहाँ टटा-बखेड़ा न कीजियेगा। उनके लौटने मे मुझे शक नही। हमारी पवित्रता की चुनौती है। भगवान [illegible] सत्य की रक्षा करेगे।"

बाबू रूपकिशोर ने कुछ नही कहा। बिल्वमाला भी कुछ नही बोली। कुछ देर वे चुप रहे। फिर बाबू रूपकिशोर बिना कुछ मीन-मेख निकाले वहाँ से घर के लिए चल पड़े।

घर पर धीरा को देख वह चकित रह गये। लूकरगज मे कौन कहाँ है का उन्हे ध्यान ही नही था। बिल्वमाला ने भी इसकी कोई बात नही की थी। धीरा यहाँ क्यो और कैसे आई—वह सोच ही रहे थे कि माधुरी ने बताया, "आज मै उधर चली गयी थी। लौटते समय अकेला जानकर धीरा को साथ कर दिया। आपको आज देर कैसे हुई।"

"देर हो गई,"।—कहकर बात बदलने के लिए उन्होने कहा, "नये कर्णफूल देख रहा हूँ। शायद लूकरगज से लायी हो।"

पिता कर्णफूल से खुश है या नाराज़, यह साफ नही था। माधुरी ने पिता के सवाल के जवाब मे शान्त स्वर से 'हाँ' कहा। लेकिन बाबू रूपकिशोर तब तक ऊपर अपने कमरे मे जाने के लिए सीढियो पर चढ रहे थे। महरिन कही गयी थी। माधुरी पिता के लिए हुक्का तैयार करने लगी।

"मै तैयार कर देती हूँ, दीदीमणी ! घर पर कितनी बार किया है।"—धीरा ने हुक्का माधुरी के हाथ से लेकर तैयार किया। माधुरी के साथ ऊपर वकील सहब के कमरे मे रख आयी।

वकील साहब ने हुक्का की कश लेते हुए माधुरी से पूछा, "लूकरगंज से और क्या-क्या उपहार लायी ?"

पिता के भाव को माधुरी समझ नही सकी। पिता से कुछ भी छिपाना अनुचित समझ उसने कहा, "रानी माँ मानी ही नही। बोली, पहली बार अपने मन से आयी हो। ढेर के ढेर कपड़े-साडी उन्होने साथ रख दिया।"

"धीरा को क्या दे रही हो ?"—माधुरी से पछा। धीरा से भी बाबू रूपकिशोर ने पूछा, "धीरा, तुम यहॉ पहली बार आई हो, क्या पसन्द करोगी ?"

"आपकी कृपा चाहिए सरकार, इससे बढकर हमारे लिए क्या है ?"

बाबू रूपकिशोर ने माधुरी से कहा, "केदार करुणा के साथ गाडी से चली जाओ, धीरा को जो पसन्द हो बाजार मे खरीद देना और इसे लूकरगज छोडकर तुम लोग चले आना।"

धीरा दु खी हुई। हुक्म की बॉदी, चले जाने के अलावा उसे दूसरा चारा ही क्या था ? वह दासी भाव बनाये अपने पॉवो के बीच की जमीन पर ऑखे गडाये रही।

माधुरी पिता के आज्ञानुसार धीरा को बाजार ले गयी। धीरा ने जब बहुत पूछने पर भी कि वह क्या चाहती है, कुछ भी नही बताया तब माधुरी ने उसे काजीवरम् के असली रेशम की एक साडी खरीद दी और लूकरगज उसके घर के फाटक तक छोड आई।

रानी मॉ की दासी धीरा की पिता ने अवज्ञा की, यह माधुरी ने समझा। परन्तु क्यो ऐसा हुआ, वह नही जान सकी। लूकरगज मे बिल्वमाला ने मन ही मन सोचा कि धीरा को जान-बूझ कर फौरन वापस किया गया। उसका वहॉ जाना उन्हे अच्छा नही लगा।

: २७ :

रात भर बाबू रूपकिशोर छटपटाते रहे। सुबह के कुछ पहले झपकी आ गयी। लेकिन देर तक झपकी भी नही टिकी, जल्दी ही उठ पडे। सूर्योदय हो चुका था। आकाश मेघाछन्न था। पवन स्थिर था। लता, गुल्म, वृक्ष, सभी इन्द्र के कोप की आशका से सशकित हो, स्तब्ध खडे थे—मौन, हलचल से हीन। घनघोर घिरे मेघो को देख ऐसा लगता था मानो अब बरसे, तब बरसे। बसत के प्रारम्भ मे भादो की घटा घिरी देख बाबू रूपकिशोर का उद्वेलित मन

और सशकित हो उठा। दस बजे तक मेघ ... । बाबू रूपकिशोर कचहरी के लिए रवाना हुए। कचहरी पहुँचे तब भी मेघो का आकाश मे जोश कम नही था। उमड-घुमड कर पृथ्वी को वे चुनौती दे रहे थे कि आज हम रहेगे या तुम।

एक मुकदमा था। उसे किया बाबू रूपकिशोर ने। फिर शेष काम सहकारियो और मुशीजी के सुपुर्द कर वे ससुर के घर के लिए चल पडे। गाडी उस ओर गति ही नही पकड रही थी। मन बार-बार लौट पडने को हो रहा था। पर उन्हे जाना ही था—प्रतिज्ञाबद्ध थे वे। वे जान चुके थे कि माधुरी लूकरगज इसीलिए गयी थी। तभी बिल्वमाला ने इतना आग्रह किया था। उसे अग्राह्य करना, माधुरी और बिल्वमाला के प्रयत्न को, वे उचित नही समझ रहे थे। अत किसी तरह चले जा रहे थे।

ससुर के घर की बरसाती में गाडी पहुँच ही गयी। गाडी की आवाज से एक नौकर भीतर से बाहर अया। फिर तत्क्षण भागकर अन्दर गया। ससुरजी लेटे-लेटे कागज पर राम नाम लिख रहे थे। एक लाख राम-नाम लिखने का उनका सकल्प था—काशी के राम-बैक मे अपना खाता खोलने के लिए। नौकर ने उनसे कहा, "वकील साहब।"

ससुर उठ कर बाहर आये। बाबू रूपकिशोर तब तक गाडी से उतर चुके थे। ससुर के चरणो मे उन्होने प्रणाम किया। ससुरजी ने प्रेम से गद्गद हो आशीर्वाद दिया। अपने कमरे मे ले गये।

जान्हवी, भाभी के कमरे में उनसे बाते कर रही थी। भाभी कह रही थी, "ननदजी, वकील साहब दौड़े न आये तो कहना।" तब तक नौकर ने आकर खबर दी, "मॉजी, वकील सहब।"

भाभी ने चकित हो पूछा, "कहॉ है?"

"बाबूजी के कमरे मे बाते कर रहे है।"

"कह रही थी न,"—भाभी ने जान्हवी से कहा, "मै उनके नाश्ते चाय का प्रबन्ध करूँ। यही भेजती हूँ। पर याद रखना ननदजी, घर आये देवता को दरवाजे से लौटाते नही।"

उधर ससुर कह रहे थे, "बुरा न मानना, मैंने कुछ उचित-अनुचित कह

दिया हो तो। मेरे लडके ही तो हो। अगर क्रोध मे कुछ कहा भी हो तो तुम्हारे हित ही के लिए कहा होगा।"

बाबू रूपकिशोर चुपचाप सुन रहे थे। उत्तर देने का साहस ही कहाँ था ?

ससुर कह रहे थे, "भूल-चूक अच्छो-अच्छो से होती है। सत्पुरुष वही है जो सँभल जाय। घर घर ही है और बाहर बाहर। बच्चे है, लडकियाँ है। उनका भविष्य सोचना है। और तुम तो अनुभवी हो, घर से ही सुख-समृद्धि पलती है।"

बाबू रूपकिशोर मौन सुन रहे थे। ससुर से पहले भी वे कम ही बोलते थे। इस समय तो उनका हृदय आसमान मे घिरे भादो की घटा सी घुमड रहा था।

ससुरजी प्रसन्न हुए दामाद के शिष्ट व्यवहार से। उन्होने बाबू रूपकिशोर के क्लान्त चेहरे पर पश्चात्ताप की भावना को देखा। वे सोच रहे थे, 'अतीत का कल अब गत हो गया। भविष्य का कल आशाजनक दिखायी पडता है।' 'बात ही क्या थी', उन्होने सोचा। लडकी का कभी अनादर तो किया नही रूप-किशोर ने। कभी किसी प्रकार का कष्ट भी नही दिया। एक बात हो गई। उससे दु ख जान्हवी को जरूर पहुँचा। उन्हें भी पहुँचा। यह स्वाभाविक ही था। पर उसी बात के लिए रत्न जैसे दामाद से विरक्ति तो नही दिखायी जा सकती थी।

उन्हे उस दिन की याद आयी जब पुत्री के विवाह की बात बाबू रूपकिशोर से चली थी। दूसरी शादी है, लडके के दो बच्चे हैं—कहकर जान्हवी की माँ ने सम्बन्ध का विरोध किया था। उन्होने पत्नी से कहा था, 'ऐसा प्रतिभा-सम्पन्न लडका मिलेगा कहाँ ? दूसरा विवाह है तो क्या ? अभी उसकी उम्र ही क्या है ?'

पत्नी तब भी सहमत नही हुई थी। कहा था उन्होने, "क्या मै नही हो जाऊँ तो इन दोनो बच्चो का ध्यान न कर तुम सौत लाओगे ?"

हँस पडे थे वे पत्नी के तर्क पर। तर्क का कोई जवाब नही बन पड़ा था। हँसकर पत्नी से कहे थे, "अब मेरी उमर क्या विवाह के योग्य है ?"

पत्नी को मनाना आसान नही था। पत्नी ने लेकिन जब बाबू रूपकिशोर को देखा तब उनका विरोध मिट गया, वे प्रसन्न ही हुई। फिर सम्बन्ध निश्चित हो

गया। बहुत आगा-पीछा सोचकर ही उन्होंने पत्नी की राय के विरुद्ध बाबू रूपकिशोर से लड़की का विवाह तय किया था और उन्हे निराशा नही मिली। विवाह के कुछ ही वर्षो बाद जहाँ कही वे जाते, लोग उनका वकील साहब का ससुर कहकर परिचय देते। कालक्रम से तो बडे-बडे लोग उनके पास वकील साहब से सिफारिश के लिए आते थे। इससे उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा बढी थी, व्यापार बढा था। उनकी पत्नी ने पुत्री को प्रसन्न देखकर, दामाद की बढती प्रतिष्ठा देखकर, उनसे कहा था, "आप ही ठीक थे। मै गलत थी। जान्हवी बहुत सुखी है।"

जान्हवी का भाग्य था—पिता सोच रहे थे। उसके घर-ससार मे कोई भी अभाव नही था। एक बात हुई, हो गयी। उसे लेकर जीवन-घर-ससार बरबाद करना तो विवेक नही था। दामाद की क्रोध मे वे कड़ी भर्त्सना कर आये थे—जो न कहना चाहिए था, वह कह आये थे। आज उसको दु खी मन सामने बैठा देखकर वे सोच रहे थे, 'सच्चा पश्चात्ताप है उसे।' उनकी छाती इस भाव से फूल उठी।

दामाद को सुस्थिर चित्त करने के भाव से उन्होंने पूछा, "महेश की चिट्ठी आयी थी ? कब आ रहा है ?"

"अभी तो आने को नही लिखा है। अच्छी तरह है।"—नम्र-भाव से उत्तर में कहा बाबू रूपकिशोर ने।

"महेश प्रतिभाशील युवक है। तुम्हारी ही तरह अपने क्षेत्र मे किसी दिन उन्नति करेगा। उसे पत्र बराबर लिखते रहना। और माधुरी का क्या निश्चय किया है ?"

"जैसी आपकी आज्ञा होगी। कुमार के साथ माधुरी का मेल है।"

"कोई हरज नही। माधुरी भी लाखो मे एक लडकी है। डाक्टर दत्ता का भाग्य है। जहाँ जायेगी, वहाँ लक्ष्मी बरसेगी।"

नौकर ने आकर कहा, "नाश्ते के लिए बुलाया है।"

"जाओ बेटा, नाश्ता कर आओ।"—ससुर ने गद्गद कठ से कहा।

बाबू रूपकिशोर के आँगन मे आते ही भाभी ने कहा, "चैन नही पडी वकील साहब को। अपना अपना ही होता है।"

जान्हवी के कमरे में नाश्ते का आयोजन था। सदा की भाँति जान्हवी खडी थी। कमरे मे भीतर आकर बाबू रूपकिशोर ने कहा, "अच्छी तो रही। अब बहुत दिन हो गए। ले चलने आया हूँ।"

जान्हवी मौन रही। हमेशा के अभ्यास के मुताबिक चाय बना कर सामने कर दिया।

चाय पीते-पीते बाबू रूपकिशोर ने कहा, "भूल-चूक को हमेशा मन मे नही रखते। हो ही जाती है। तुमसे माफी मै माँग ही चुका हूँ। तुम यहाँ चली आयी। सब समझते है कि तुम नाराज होकर आयी हो। बच्चे रोज तुम्हारी राह देखते है। खैर, पिता का घर था। कुछ दिन रह ली। अब चलना है।"

जान्हवी का मौन भग नही हुआ।

चाय समाप्त होते ही नौकर हुक्का रख गया। हुक्के की कश लेते हुए बाबू रूपकिशोर ने कहा, "पिताजी कुमार के बारे में पूछ रहे थे। कह रहे थे सम्बन्ध मे कुछ भी अनुचित नही। महेश की चिट्ठी फिर आयी है। उसने माधुरी और कुमार को बुलाया है। तुम चाहो तो वह हो आये। केदार-करुणा की परीक्षा की तैयारी अच्छी ही है। महाराज और महरिन रोज तुम्हे पूछते है। जब उस दिन बच्चे निराश चले गये तो मैने सोचा कि तुमने मुझे माफ नही किया। मैं स्वय मनाने आया। मेरा कसूर है। अब तो तुमने मुझे माफ कर दिया ?"

जान्हवी पति के श्री-हीन चेहरे से दुखी हुई थी, वह स्वय क्लान्त थी। वह कुछ बोली नही। कमरे का पखा तेज था। उसने उसे कम कर दिया।

पत्नी का व्यवहार पति को अप्रत्याशित नही लगा। दुख उसके हृदय मे कितना घर कर गया है—वे जानते थे। वे बोले, "अब चलने की तैयारी करो।"

जान्हवी जैसी खडी थी, खड़ी रही।

भाभी तब तक पान लेकर आयी। पति-पत्नी का भाव देखकर बोली, "आप लोगो का समझौता अभी नही हुआ, लगता है।"

"झगडा ही क्या था, भाभी!"

भाभी ने पूछा, "आप क्यो सूखते जा रहे है? आपको क्या दुख है?"

"दुख की क्या कमी है भाभी? इन्हे मनाने आया हूँ, चलने के लिए कब

से कह रहा हूँ। पर इन्होने मुझसे बोलने की भी कसम खा ली है।"—किंचित् परिहास का स्वर बना बाबू रूपकिशोर ने कहा।

"आप लोगो से न बोलकर हम जी सकेंगी ? इनके जाने न जाने का सवाल तो बाबूजी से करना चाहिए।"

"रोज का आना-जाना है भाभी !"

"हाँ, पर बाबूजी के रहते ये क्या कह सकती है ? और जाना तो है ही। क्या आप लोगो से अलग हम जीवित रह सकती है ?"

बाबू रूपकिशोर ने सोचा कि भाभी का इशारा ठीक ही है। ससुरजी से पूछना ही पडेगा। वे बोले, "मै जाकर पिता जी से पूछ आता हूँ।"

"जल्दी क्या है ? जाने तो अभी आप पायेंगे नही। शाम को ही जाना हो सकता है।"

"नही भाभी, एकाध मुवक्किलो को समय दे दिया है। जाना जल्दी ही है। वैसे तुम से अलग जाने का जी कब चाहता है ?"

परिहास से भाभी प्रसन्न हुई। वे बोली, "वकील है आप। बाते बनाने में आपको कौन पार पा सकता है ?"

बाबू रूपकिशोर को ससुर जी के पास पूछने जाना पडा। ससुर ने कहा, "इतना बडा घर है। उसका जाना तो जरूरी ही है, जायेगी ही। लेकिन अपना कुल-गौरव, मर्यादा, धर्म ही काम आता है। बाकी सब कुछ छलना है।" वृद्ध ससुर किसी अज्ञात भाव से आकुल जान पडते थे। भरे कठ से बोले, "जान्हवी बचपन से ही भावनाशील है।"

ससुर ने और कुछ नही कहा। बाबू रूपकिशोर को अपने कमरे मे छोड वे जान्हवी से आकर बोले, "बेटा, स्त्री का पति ही सब कुछ होता है। तेरी माँ यही कहा करती थी। यही हम लोगो का सनातन है। बुरा जरूर लगता है पर [illegible]। जो हो गया, वह मिट नही सकता। वकील साहब को सच्चा पश्चात्ताप है, वे दु खी है तुम उनका ध्यान रखना। और मै कही दूर थोडे ही हूँ।"—वृद्ध पिता की आँखो मे वात्सल्य का स्नेह उभड आया।

तो जान्हवी वापस लौटी। पति के सग उसके घर पहुँचने पर सबको जरा आश्चर्य तो हुआ। कोई आने की सूचना नही थी। परन्तु बच्चे प्रसन्न हुए। महाराज, महरिन, मुशीजी इत्यादि ने भी सन्तोष की साँस ली, अकारण का जैसा वे समझते थे—सकट मिटा। घर की लक्ष्मी वापस आ गयी।

और जान्हवी जैसे कुछ महीने पिता के घर रह कर लौट आयी जिसमे आश्चर्य की कोई बात ही नही। वह पूर्ववत् अपने गृहिणी कर्तव्य मे जुट गयी।

माधुरी मन ही मन अतिशय प्रसन्न थी। एक भयकर विपत्ति टली। लेकिन उसने रानी माँ के पिता पर प्रभाव का स्पष्ट उदाहरण देखा। माँ ही क्यो, कोई भी पत्नी, इससे दारुण दु ख का अनुभव किये बिना नही रह सकती थी—सोचकर जान्हवी के लिए उसका हृदय बरस पडा।

जान्हवी को पति जाकर लिवा लाये—जो —
इससे उसके हृदय का दु ख मिट गया हो, एसा नही हुआ। उस रात भोजन का आयोजन उसने बडे चाव से कराया, स्वय पति के पसन्द की एक-दो चीजे भी पकायी। पति के पलँग कमरे की नये सिरे से सफाई करायी। पर सोने के समय के पहले उसने अपनी कमरे मे अपने ही हाथो बिछा ली।

बाबू रूपकिशोर कमरे मे शीतलपाटी देखकर स्तभित हुए बिना नही रह सके। उनके दिल का दर्द एकाएक फिर उभरा। लेकिन उन्होने कुछ भी कहा नही। उनका अनुमान था कि जान्हवी एकाएक अपने मनस्ताप को भूल नही सकती। कालक्रम से भूल ही जायेगी—ऐसा उन्होने सोचा।

जान्हवी घर वापस आ गयी थी। पर घर आकर उसका दु ख बढा ही। बाबू रूपकिशोर के तेज बुखार मे बिल्वमाला आयी थी, यह उसे पहले ही मालूम हो चुका था। घर पर माधुरी का रानी के यहाँ जाना मालूम हुआ। माधुरी को मिले उपहार वह देख चुकी थी। माधुरी को छोडने घीरा दासी आई थी, यह भी विदित हुआ। माधुरी के कारण ही बिल्वमाला के कहने पर पति उसे वापस ले आने गये थे, इसका भी उसे अनुमान हुआ। उसे घोर अपमान का बोध हुआ। बिल्वमाला का पति पर उससे कही अधिक जोर था—यह उसके लिए मृत्यु के बराबर दु.ख की बात थी।

जान्हवी का मन इस अपमान के क्षोभ से हल्का न होकर और बोझीला हो गया। यो पति-गृह छोडना एक अधेड नारी के लिए जिसके पूर्ण वय प्राप्त किये लडके और लडकियाँ थी, जिसके माँ-बाप चाहते थे—सस्कार चाहता था कि वह पति परमेश्वर के श्री चरणो मे ही रहे, उसके लिए अब असम्भव था। पर पति का मन खोकर उसकी पत्नी बने रहना, उससे पति पत्नी का सम्बन्ध निभाना न उसके लिए सम्भव ही था और न वह उसे उचित ही समझती थी। यह सम्बन्ध उसे अब पाप लगता था। उसे पिता का उपदेश याद आया—सुख के बाद दु ख और दु ख के बाद सुख आता है। उसके सुख के नीड मे अब किसी दूसरे का बसेरा था। दु ख अब उसका अतिम साँस तक का साथी था। वह दु खी होकर भी अपनी शाख छोड नही सकती—यह उसकी चरम विवशता थी। इसान कितना बेबस प्राणी है—जान्हवी ने सुना था, पढा था। अब जब जीवन मे विवशता ही शेष थी तो और कुछ किया ही क्या जा सकता था ?

जान्हवी जब आकर शीतल पाटी पर चुपचाप लेट गयी तब बाबू रूपकिशोर भी पलँग से उठकर बिना कुछ बोले ही उसकी बगल मे शीतलपाटी पर आ लेटे। जान्हवी पति के रुग्ण मन से, उनके दुर्बल शरीर से भी कातर थी—इसका भी दु ख उसे कम नही था। शीतलपाटी पर सोने मे पति को कष्ट मिलेगा —यह मन मे उठा। लेकिन वह कुछ बोल न सकी। चुपके से—शीतलपाटी से सरक कर जमीन पर हो गई।

पति ने समझा कि उनका स्पर्श भी वह बचाना चाह रही है। उन्हे एहसास हुआ कि उनका जो ख्याल था कि कुछ दिनो के बाद घर का जीवन पूर्ववत् हो जायगा, वह भूल थी। अब शायद ऐसा कभी न हो, यह सोच उन्हे काट खाने लगा। मन मे घोर पीडा का बोध हुआ उन्हे, इतनी कि कुछ देर पीडा से त्राण पाने मे लग गया। फिर केवल पत्नी को जमीन से शीतलपाटी पर आ जाने देने के लिए वे बिना एक शब्द बोले अन्य स्थान के अभाव मे पलँग पर आ पडे।

चिन्ता की कराल ज्वाला की लपटो मे घिरे बाबू रूपकिशोर सोच रहे थे, 'गलती उनसे हुई। पर क्या वह गलती ऐसी थी कि कभी माफ न की जा सके ?

क्या उन्होने पाप किया ? क्या सनके पाप से ही जान्हवी उनसे दूर भागना चाहती है, उनका स्पर्श भी उसे सह्य नही।'

मानव सभ्यता के आदि मे उनका विचार जा पहुँचा जब विवाह की पद्धति नही थी। श्वेतकेतु ने सामाजिक मर्यादा के लिए ही विवाह पद्धति को चलाया। क्या उन्होने उस मर्यादा को भग किया ? भग तो किया ही, उन्होने सोचा। पर बिल्वमाला से उनका सम्बन्ध अनैतिक है, यह मानने को उनका पीडित हृदय किसी तरह तैयार नही था। रह-रह कर मन से भाव उठता था कि बिल्वमाला से या बीरा अथवा धीरा से उनके सम्बन्ध के कारण किसी का सामाजिक अहित तो हुआ नही। बिल्वमाला के रनिवास की अपनी एक सामाजिक मर्यादा थी, उस सामाजिक धारणा मे जो कुछ हुआ वह अनुचित नही था। हर समाज की धारणा भिन्न होती है। [illegible] समाज है, उसकी धारणा वैसी होनी चाहिए। जान्हवी, उनकी विवाहिता पत्नी थी। उसके साथ उनका घर-ससार चल रहा था। बिल्वमाला क्या पत्नी नही थी—मन मे फिर प्रश्न उठा ? क्या मन्त्रो द्वारा सम्पन्न सस्कार से ही विवाह सिद्ध होता है ? क्या वे बहुविवाह के पक्ष मे थे ? फिर क्या पुरुष के बहुविवाह के ही वे समर्थक थे या द्रौपदी जैसी स्थिति वे जान्हवी या बिल्वमाला की स्वीकार कर सकते थे ? इस भाव का बुद्धि ही ने नही, मन ने भी घोर विरोध किया। नारी मे धारणा की शक्ति है, पुरुष मे नही। नारी का बहुविवाह या बहुतो से सम्बन्ध अनुचित है—यह उनका तर्क कह रहा था, लेकिन पुरुष के लिए क्या उचित माना जाय—क्या माना गया है—इसका उत्तर उन्हे नही मिल रहा था। उनका मन सघन अन्धकार की कालिमा से धीरे-धीरे भर गया। ऐसा लगा जैसे उनकी आँखो का प्रकाश मिटता जा रहा है और वे घोर पीडा से सज्ञाहीन होते जा रहे है।

रात भर बाबू रूपकिशोर तडपडाते रहे। सुबह जब उठे तब जान्हवी स्नानागार से निकल रही थी। हुक्का तैयार रखा था। हुक्के की कश लेते हुए पत्नी से उनके मन का उद्वेग बोल उठा, "जान्हवी, इस तरह कष्ट सहने से तो कही अच्छा था कि तुम अपना कमरा ही अलग कर लेती।"

पत्नी ने सुना, ठिठकी और फिर नीचे चली गयी।

ससार मे मनुष्यो का यदि वर्गीकरण किया जाय तो साधारणतया तीन वर्गो मे मानव-सम्प्रदाय को विभाजित किया जा सकता है। पहला वर्ग उन मनुष्यो का है जो केवल स्वार्थी होते है। ऐसे मनुष्य विचारो मे—'कु'-'सु' मे—अपने को बहाते नही। उनका सिद्धान्त है कि ससार मे केवल स्वार्थ ही सत्य है। जिस तरह भी स्वार्थ सिद्ध हो, वही न्याय का पथ है। दर्शनशास्त्रियो मे चारवाक इस मत के प्रतिपादक है। उनके अनुसार पच महाभूत एकत्र होकर आत्मा नामक गुण पैदा करते है। आत्मा, शरीर के जलने के साथ जल जाता है। इसीलिए आत्म-विचार के झझट मे न फॅसकर जब तक यह शरीर जीवित है तब तक, 'ऋण कृत्वा घृत पिवेत्'। इस मत के अनुसार मरने के बाद कुछ भी नही है। अध्यात्मवाद को यह मत पोगापथियो, धर्मशास्त्रियो की अपना पेट भरने की चाल बताता है।

दूसरा वर्ग उन मनुष्यो का है जो स्वार्थ को तो प्रधान तत्त्व मानते है, परन्तु स्वार्थ नीतिपूर्ण हो—दूरदर्शी हो, ऐसा वे उचित समझते है। उनका मत है कि यदि मै लोगो को मारूॅगा तो वे भी मुझे मार डालेगे और मुझे अपने सुखो से हाथ धोना पडेगा। भविष्य का ध्यान रखकर इनका कहना है कि स्वार्थ-साधन ऐसी नीति से किया जाय कि दूसरो को हानि न पहुँचे। ऐसे लोगो के अनुसार परोपकार, दया, उदारता, ममता, कृतज्ञता, नम्रता, मित्रता आदि गुण लोगो के सुख के लिए आवश्यक है, क्योकि मूलरूप से यह अपने ही दु ख निवारणार्थ है। इस मत मे स्वार्थ की रक्षा के लिए ही परार्थ सम्मिलित है, जैसे स्त्री अपने को पति ही के लिए नही चाहती है, अपने सुख के लिए भी चाहती है।

तीसरा वर्ग उन मनुष्यो का है जो पहले और दूसरे वर्ग की मूल भावनाओ को सत्य मानते है और दोनो के सम्मिश्रण से स्वार्थ-साधन करना चाहते है। उनके अनुसार स्वार्थ और परार्थ पर समदृष्टि रख कर ही कार्य-अकार्य करना चाहिए। इसी से नीति—समाज शास्त्र—की उत्पत्ति हुई है। ऐसे मनुष्य स्वार्थ की ही तरह परार्थ को भी मनुष्य का स्वाभाविक गुण मानते है। इनके अनुसार स्वार्थ और परार्थ का लक्ष्य लोकहित है। जहाँ ये दोनो विरोध मे हो, वहाँ लोकहित—बहुजन सुखाय—ही अभीष्ट है। इसी से लोक सुख के लिए अपने सुख के त्याग की भावना बड़ी है।

भर्तृहरि ने उसी को सत्पुरुष कहा है जो अपने लाभ को छोडकर दूसरे का हित करते है और स्वार्थ को बिना छोडे जो लोकहित का प्रयत्न करते है उन्हे सामान्य पुरुष कहा है। अपने लाभ के लिए दूसरो का नुकसान करने वाले को मानव राक्षस कहा है।

बाबू रूपकिशोर ने अपने अतीत का पर्यवेक्षण किया। पहले—वकालत के प्रारम्भ मे—उनको पहले वर्ग मे आसानी से रखा जा सकता था। अभाव ने जीवन की प्रारम्भिक सीढियो पर उन्हे अपने ही मे—अपनी चतुर्दिक उन्नति मे—निहित कर दिया था। बाद मे अपना वे दूसरी श्रेणी मे प्रवेश किये। आज भी शायद वे उसी वर्ग के थे। उन्हे, उन्होने सोचा, सम-दृष्टि ही अपेक्षित थी। समाज—उनका अपना समाज, जान्हवी और बिल्वमाला का—इस प्रकार चले कि कही कोई गतिरोध न उत्पन्न हो, जिससे अपने जीवन मे, लोकहित मे भी, वे मन लगा सके। यही उनके कर्तव्य की साधना थी। भर्तृ-हरि के सामान्य पुरुष की तरह कर्तव्य करना—इसी मे उन्होने अपनी मुक्ति का साधन सोचा।

जीवन की वास्तविकता मगर विचार से कही अधिक कठोर होती है। घर मे रहकर, घर का सारा काम सम्पादित कर भी जान्हवी गलत जा रही थी। वह पति से बातचीत मे भी झिझकती थी। वे एक-दूसरे के लिए अपरिचित से बनते जा रहे थे। उनका जीवन अब किसी एक तार मे पिरोया नही था। पथ के दो राही आ रहे थे, पर एक दूसरे के बीच पथ की लम्बी राह सी ही उनमे दूरी थी। बाबू रूपकिशोर के लिए यह असह्य हो उठा। इस सम्बन्ध मे सारे प्रयत्न असफल हो चुके, प्रयत्न करने का अब उन्हे साहस ही नही होता था। उनका जीवन भावहीन, शून्य, निष्प्राण सा चल रहा था जिसमे न कोई आशा हो, न उत्साह, जो चल रहा था इसलिए कि चलना अनिवार्य था।

जान्हवी ने बच्चो का ध्यान कर—सामाजिक मर्यादा निभाने के लिए—पति की इच्छा प्रकट होने के बाद भी, स्वय चाहते हुए भी, अपना सोने का कमरा अलग नही किया। हर रात एक ही कमरे मे बन्द रहते थे पति—पत्नी, एक पलँग

पर, एक शीतलपाटी पर, एक दूसरे से योजनो दूर अपरिचित, अपनी अपनी ज्वाला मे हृदय को जलाते हुए । इस तरह उनका जीवन चल रहा था । एक दूसरे से बोल-चाल से भी वे बचते थे । केदार एफ० ए० के द्वितीय वर्ष मे था और करुणा दसवी का इम्तहान दे चुकी थी ।

बाबू रूपकिशोर माधुरी का विवाह सम्पन्न कर देना चाहते थे । माधुरी उनके और पत्नी के बीच की खाई की एक मिलाप की कडी थी । लेकिन उसे हमेशा इसीलिए उस स्थिति मे रखना तो सम्भव नही था । विवाह की अड़चने अब समाप्त हो गई थी । सब सहमत थे । शेष था व्यावहारिक रीति से डाक्टर दत्ता से मिल कर तिथि इत्यादि को निश्चित कर विवाह कार्य सम्पन्न कर देना ।

एक दिन सबेरे नाश्ते पर बच्चो से बाबू रूपकिशोर ने कहा, "आज शाम को डाक्टर दत्ता के यहाँ चलेगे ।"

शाम को जान्हवी भी तैयार मिली । सोचा था जान्हवी ने, 'सामाजिक मर्यादा माधुरी के लिए उसे निभाना ही पडेगा ।'

पति के पास गाडी मे आगे बैठ कर डाक्टर दत्ता के घर तक जाते समय उसे शून्य भाव के अतिरिक्त अन्य किसी भाव का बोध नही हुआ । जो व्यक्ति उसका पति था उसके पास बैठकर जाने मे उसे गर्व का बोध नही हुआ तो अपमान का भी नही हुआ । सम्भवत कम से कम यही उसकी चेष्टा थी, वह अब जीवन के राग से, पति से, सर्वथा विमुख, शून्य सी थी ।

डाक्टर दत्ता से बाबू रूपकिशोर ने कहा, "पहले आप आये थे महेश के लिए । आज मै आया हूँ कुमार के लिए ।"

डाक्टर दत्ता बोले, "सच पूछिए तो मैं स्वय आनेवाला था । आप ही का लडका है । अब शुभ दिन निश्चित हो ही जाना चाहिए ।" फिर एकाएक डाक्टर दत्ता ने पूछा था, " पर आप इतने कमज़ोर क्यो होते जा रहे है ? किसी रोग ने तो नही जकड़ लिया है ।" ठीक यही प्रश्न श्रीमती दत्ता उस समय जान्हवी से कर रही थी ।

प्रश्न को अनसुना कर बाबू रूपकिशोर ने जल्दी-की-ही एक तिथि का सुझाव दिया विवाह के लिए ।

जान्हवी ने सुना और श्रीमती दत्ता से कहा, "यह तिथि बहुत ही निकट है। महेश और ज्योत्स्ना का भी तो आना आवश्यक है। कोई दूसरी तिथि ढूँढी जाय।"

प्रस्ताव से किसी को भी असहमति नही थी। दो महीने की निथि निश्चित की गई।

जो व्यक्ति इस तिथि से प्रसन्न नही हुआ वह स्वय माधुरी थी। वह जानती थी कि कुमार को मन से वरण करने के बाद और कही उसका त्राण नही था। पर जान्हवी की अन्तर्वेदना और पिता और माँ के बीच न पटने वाली खाई से, वह उनके मिलाप की एकमात्र कडी भी टूट जायेगी। कुमार उसकी प्रतीक्षा करेगा—यह उसका विश्वास था। वह माँ-बाप के बीच की खाई को पाटने के लिए विवाह कम-से-कम इस वर्ष के लिए टालना चाहती थी। विवाह के बाद वह पति की हो [illegible] के बीच सामजस्य कराने का उसे मौका नही मिलेगा, सामजस्य उनका इतना आसान नही था। यदि वह उनके सग रह पाये तो शायद यह विभीषिका मिट जाय, ऐसा वह सोचती थी।

माँ-बाप से तो वह कुछ कह नही सकी। वह कुमार से मिली। कुमार, नये ज्ञान से प्रफुल्ल कुमार ने, प्रसन्न मन कहा, "अब तो प्रतीक्षा की अवधि दो महीने से भी कम है? मेरे सौभाग्य पर मुझे बधाई नही दोगी।"

"उसी सम्बन्ध मे तुम्हारी सहायता माँगने आयी हूँ। क्या यह अवधि अगले वर्ष तक नही टाली जा सकती है?"—उसने स्पष्ट कहना उचित समझा।

"मैने क्या अपराध किया है?"— कुमार ने सशकित होकर पूछा।

"अपराध की बात नही है। मेरे घर की कुछ ऐसी परिस्थिति है कि वहाँ मेरे न रहने से घोर अनर्थ हो जाने का भय है।"

क्षण भर के लिए कुमार गम्भीर हो उठा। फिर बोला, "तुम्हारे घर की परिस्थिति मेरी अपनी है। मै उससे सर्वथा अपरिचित नही। यह भी जानता हूँ कि तुमने परिस्थिति को भीषण भयकरता से बचा लिया है। लेकिन अब उस परिस्थिति का अत दिखायी नही पडता। अब तो दलदल मे गाडी फँस गयी है। जो कुछ है, उसे स्वीकार करना ही उचित है। अगर यह दृष्टि न उत्पन्न हुई—जैसे

कि लक्षण है—तो परिणाम कुछ भी सम्भव है। तुम्हारे रहने, न रहने से यह ग्रन्थि अब सुलझने वाली नही।"

कुमार ने गम्भीरता से बात कही थी। माधुरी ने उसे ध्यान से सोचा और पूछा, "तुम्हारा अनुमान है कि हम उस परिस्थिति को सुधारने मे मदद नही कर सकते ?"

"हाँ, माधुरी, समस्या नितान्त आन्तरिक है । उसमे कोई तीसरा प्राणी अब कोई मदद नही कर पायेगा ?"

माधुरी ने कुमार की बात को समझा और बोली, "कभी नाटको मे, प्राचीन कथाओ मे, ऐसा पढा करती थी। स्वय अपने घर मे यह सब देखने को मिला।"

"नाटक, कथाओ मे अकित कल्पना से कही अधिक कटु सत्य यथार्थ जीवन मे मिलता है। तुम जितना कर सकती थी उतना तुमने किया। अब तुम्हारा एक-मात्र कर्तव्य इस चातक पर है जो वर्षो से—एक युग-कल्प से—अपने स्वाति की प्रतीक्षा कर रहा है।"—उसने प्रेम-भाव से माधुरी का हाथ अपने हाथ मे ले लिया।

विनोद की भावधारा मे माधुरी ने पूछा, "चातक कभी भी किसी दूसरे नक्षत्र की आभा से तो चकाचौध नही खा जायेगा ?"

"उसकी आशका क्यो ?"

"पुरुष-प्रकृति का क्या भरोसा ?"

"माधुरी, कुछ पुरुष ऐसे भी होते है जो जन्म-जन्मान्तर से एक ही लक्ष्य के पीछे रहते हैं। उनका लक्ष्य आँखो मे ऐसा समा जाता है कि पथ के आकर्षणो पर उनकी दृष्टि ही नही पडती। पथ की बाधाएँ भी उन्हे नही मोड पाती। वे लक्ष्य-मय हो जाते है। बस यही आदि, यही इति।"—फिर कुछ परिहास के स्वर मे उसने कहा, "ऐसी आशका को मन मे जगह देकर तुम मेरा अपमान कर रही हो।"

"तुम नाहक नाराज हो गये। मै तो विनोद कर रही थी।"

"विनोद मे भी निर्मूल अप्रिय बात नही कहनी चाहिए।"

"अच्छा, याद रखूँगी । परन्तु तुम्हारा निश्चय यही है ।"

" हाँ, अ-ि ाल्ना मेरे साथ तुम्हारा घोर अन्याय होगा और जिस भावना से अवधि टालने का विचार उठा है, उसकी पूर्ति कही भी रह कर जो कुछ सम्भव है, की जा सकती है । हमे महेश-ज्योत्स्ना की तरह दूर तो जाना नही है ।"

" मै कुछ दिनो के लिए कही जरूर चलना चाहूँगी ।"

बात समझ कर कुमार ने पूछा, " कहाँ का विचार है ?"

" कोलम्बो का सोच रही थी, यदि तुम स्वीकार करो । वहाँ एक होटल हे, समुद्र के किनारे, लहरो के ठीक ऊपर । एकाध महीने वहाँ रहेगे । फिर पूना होते हुए लौट आयेगे ।"

"अच्छा हुआ, यह बात हो गई । मै उचित प्रबन्ध कर लूँगा ।"

कुमार ने माधुरी को अपने वक्ष से लगा, अधरो पर प्रेम-चिन्ह अकित कर दिया । प्रेम के पहले अमृत-घूँट से माधुरी आज कुमार को वचित न रख सकी । वह स्वय प्रेम की भाव-धारा मे बह उठी ।

उसे ज्योत्स्ना की बात याद आई कि महेश उसके शरीर का आकार-प्रकार, लम्बाई, चौडाई, कोण, नापा करता है । कुमार के शरीर से सट कर वह बैठ गई । लेकिन कुमार का हाथ उसके हाथ को अपने मे लिए पूर्ववत् निश्चल रहा ।

कुमार ने कहा, " यमुना चलती हो । वशी-धुन सुन आये ।"

" कृष्णा यमुना से तो अनुराग नही । पर वशी-धुन सुनने को मना नही कर सकती । चलो ।"

यमुना मे नाव पर गोपियो की तरह ही कृष्ण कुमार की गोद मे सिर रखे माधुरी विस्मृत सी पडी रही । फिर भी कुमार ने उसकी आन्तरिक इच्छा को पूरा नही किया । वह स्वय प्रेम की पहली सुधा का पान कर बेसुध था । उसे माधुरी के शरीर के कोणो को नापने की सुध ही नही थी । केवल एक दूसरे के शरीर और साँसो की उष्मा आपस मे टकरा कर कह रही थी कि अवधि का अत शीघ्र समाप्त हो जाय जिससे उनके शरीर और आतमा का द्वैत मिट जाय ।

नौका-भ्रमण के बाद कुमार माधुरी को उसके घर के चौराहे तक छोड़ आया ।

माधुरी प्रसन्न मन, प्रेम से अभिभूत, द्रुतगति से घर की ओर जा रही थी। पड़ोस के वैद्यजी का घर और औषधालय लबे-सडक ही था। वैद्यजी की औषधि-शाला मे उसने वैद्यजी के लडके कुलदीपक और करुणा को एक-दूसरे से सटे खडा पाया। पॉवो की गति उसने और तेज कर दी जिससे वे उसे देख न ले।

माधुरी घर पहुँची। विपत्ति की आशका उसे पहले से ही थी। कुलदीपक और करुणा को उसने कई बार मिलते-जुलते देखा था। कुलदीपक जैसे आचरण के लडके से उसने करुणा का मेल-जोल कभी पसन्द नही किया था। इशारे से उसने करुणा को समझाने की भी चेष्टा की थी। साफ तो नही कहा था यह सोचकर कि करुणा अब स्वय समझदार हो रही थी। लेकिन आज उसने जो कुछ अचानक देखा उससे उसका विश्वास हिल गया। एक नयी विपत्ति की आशका मन मे आ पैठी।

सीधे जान्हवी के पास जाकर उसने पूछा, "करुणा नही दिखायी पड़ती ?"

"अभी-अभी तो यही थी।"

तब तक नीचे से करुणा की आवाज आयी, "मै गुसलखाने मे थी, जीजी!"

माधुरी ने बहुत चेष्टा की कि उसके चेहरे से कोई भाव न प्रकट हो, परन्तु गुस्से की लालिमा उसके चेहरे पर आ ही गई। जान्हवी ने शायद उसका चेहरा देखकर पूछा, "बात क्या है ?"

"कोई बात नही।"

जान्हवी को समझते देर नही लगी कि माधुरी कुछ छिपा रही है। परन्तु क्या; यह वह समझ नही सकी।

माधुरी से उसने पूछा, "क्या कुमार मिला था ?"

"हॉ।"

"कोई खास बात तो उसने नही कही।"

"नही।"

"तुम प्रसन्न हो, माधुरी ?"

"हॉ माँ, क्या तुम कभी मेरी अप्रसन्नता का काम करोगी ?"

"ज्योत्स्ना को चिट्ठी लिख देना। अब वे जल्दी ही आ जायें।"

" दद्दा ने तो लिखा है कि तीन-चार दिन के ही लिए वे आ सकते है। कुमार कह रहा था, " हमी लोग पूना चलेगे ।"

"मुझे भी लेती चलना।"—जान्हवी ने सच्चे भाव से करुणार्द्र स्वर मे कहा।

" करुणा अकेले ही जायेगी, माँ ? उसे तुम्हारी छाया की आवश्यकता है।"

जान्हवी का मन करुणा को लेकर पुन सशकित हुआ। करुणा की किसी बात से माधुरी क्षुब्ध है। क्यो वह बात बतला नही रही है—जान्हवी ने सोच-समझ कर बात को पूछा भी नही।

माधुरी जब चली गई तब उसने करुणा को बुलाया और पूछा, " तू अभी कहाँ गयी थी ?"

" जीजी आई तब मै गुसलखाने मे ही थी।"

" माधुरी ने तो तुम्हे गुसलखाने मे पाया नही ?"

करुणा का झूठ पकडा गया। माँ गम्भीर स्वर मे बोली, " अच्छे बच्चे माँ से झूठ नही बोलते ।"

" मै गुसलखाने मे ही थी। पहले एक मिनट के लिए वैद्यजी के औषधालय मे एक पत्रिका लौटाने भर को गयी थी।"

" वैद्यजी को दे आयी ?"—माँ ने विस्मय से पूछा।

" वैद्यजी नही थे, दीपक था। उसे दे आयी।"

माँ ने और गम्भीर स्वर मे कहा, " करुणा, दीपक जैसे लड़के से मिलना या उसको जानना भी क्या उचित है ? अब तू वयस्क हो रही है। अपना भला-बुरा तुम्हे समझना चाहिए। अपने परिवार की मर्यादा—जान्हवी की आँखो मे उसके पति और बिल्वमाला नाच गये—तुम्हे भूलना नही चाहिए। मुझे विश्वास है कि आगे से तुम दीपक जैसे लडको से दुआ-सलाम भी नही रखोगी।"

करुणा ने माँ का जो रूप देखा, उससे मन ही मन भयभीत हो गई। " अच्छा।"—कहकर वह नीचे चली गयी।

: २८ :

करुणा की घटना जान्हवी को अपने अपार दुख मे और अधिक विचलित करने के लिए काफी थी। उसका रहा-सहा धीरज डॉवाडोल हो उठा। माधुरी ने पिता के घर पर उससे कहा था, "तुम्हारे इस तरह के व्यवहार से हमारा और करुणा का क्या बनेगा ? किसके भरोसे तुम हम लोगो को छोड आयी हो ?"

"क्या जान्हवी के कारण ही करुणा में ऐसी अशोभन प्रवृत्ति उभर रही है ? क्या उसके और पति के जीवन की छाया बच्चो पर पड रही है ?" उसका मन भय से अधीर हो सोचता रहा कि जब घर मे प्रेम का प्रसार था, तब घर मे बसत की श्री सुषमा बिखरी थी। माधुरी भी तो थी। ऐसा अशोभन प्रकरण कभी किसी बच्चे को लेकर नही उठा था। अब पति-पत्नी के वर्तमान जीवन के कारण ही, घर मे विनाश का श्रीगणेश हो गया है। उस दिन भर वह इसी बात को लेकर खिन्न रही।

रात को शीतलपाटी पर कई बार उसकी इच्छा हुई कि पति उससे कुछ पूछते, कुछ कहते। पर पति––जर्जर पति––आज नयी चिन्ता मे घिरे थे। घर के बाहर पहली बार उनको आज अपमान सहना पडा था।

एक मुकदमा आया था। सब बाते जानकर मुकदमा उन्होने अस्वीकार कर दिया था। मगर मुवक्किल किसी भी कीमत पर उन्हे वकील रखना चाहता था। घर के घर को फॉसी की सजा की सम्भावना थी।

श्रीसिह जो पहले सरकारी वकील थे, अब सरकारी न रहकर निजी वकालत कर रहे थे। बाबू रूपकिशोर से उनकी मित्रता थी ही। मुवक्किल उनके पास पहुँचा था सिफारिश कराने कि बाबू रूपकिशोर उसका मुकदमा स्वीकार कर ले। धन का लालच दिखाया था। श्रीसिह ने उससे कहा था, "जब रूपकिशोर ने मुकदमा लेना अस्वीकार कर दिया तो धन से उन्हे नै-र नही किया जा सकता। धन की उन्हे क्या कमी है ? वकालत शिखर पर है ही। लूकरगज की सारी रियासत पर उसका अधिकार है। रानी और उसकी दासियॉ पतिव्रता की तरह

उसकी भक्ति करती है---ऐसा जादू का लकडी फेरा है उसने। बडा आला दिमाग है।"

बाबू रूपकिशोर श्रीसिह के कमरे के सामने से गुजर रहे थे। स्वय अपने कानो से सुना यह सब उन्होने। क्षण मात्र को उनके कदम रुक गये थे श्रीसिह के कमरे के सामने।

श्रीसिह के सहकारी के शब्द सुनायी पडे थे, "सुना छोटी दासी को बहुत चाहते है। उसी का वह पुत्र लोग बताते है जिसे रानी ने गोद लिया है।"

"छोटी है भी तो चॉद का टुकडा। उसी नवयौवना ने तो वृद्ध रूपकिशोर को जवान बना दिया था। घर की पत्नी भी दूसरी है। उसकी क्या चिन्ता उन्हे? चली गयी थी बिचारी बाप के घर ।"

आगे बाबू रूपकिशोर ने नही सुना। जितना सुना था वही जरूरत से अधिक था। बाबू रूपकिशोर अपमान से तिलमिला उठे थे। सारा दिन कचहरी उनके लिए उस दिन काल बन गई।

एक मुकदमे की बहस मे श्रीसिह विरोधी पक्ष के वकील थे। अपनी बहस के दौरान एक प्रसग का उल्लेख करते हुए जज महोदय के समक्ष उन्होने निवेदन किया, "श्रीमान्, यह जानना असम्भव है कि हममे से कौन किस समय कैसा आचरण कर बैठे? मनुष्य और गिरगिट की प्रकृति मे विशेष भेद नही। वातावरण के दोनो दास है। गॉव के अपढ गॅवार ही क्यो हममे से अच्छे-अच्छे, चोटी के विद्वान और समाजशास्त्र के प्रख्यात वेत्ता परिस्थितियो मे पडकर अपना स्वार्थ साधने के लिए पशु का-सा व्यवहार करते है। कभी-कभी तो मनुष्य का आचरण पशु से भी अधिक वीभत्स होता है।"

विद्वान जज शायद उक्ति पर किंचित् मुस्करा उठे। बाबू रूपकिशोर को लगा कि श्रीसिह का सीधा उनपर आक्षेप था और जज भी उनके भेद से परिचित थे। उनका सिर घूम गया था। उस घूमने मे ऐसा प्रतीत हुआ मानो अदालत की हर चीज, कमरे की दीवारे, छत की कडियॉ, पॉवो के नीचे का फर्श---सभी उनके आन्तरिक स्वरूप को जानते थे और उन्हे घूर-घूर कर देख रहे थे, उन पर हँस रहे थे। बाबू रूपकिशोर ने हृदय को कडा कर उत्तर मे अपनी बहस की

थी। आन्तरिक मर्मस्थल पर लगे चोट की तीव्रता मे बहस अकाटच और अद्‌भुत की थी उन्होने ।

पर अदालत के कमरे के बाहर जब वे निकले तब उन्होने लोगो को अपने [illegible]। अपने कमरे तक पहुँचने मे उन्होने देखा कि लोगो की ऑखे उनका अनुसरण कर रही है । अपनी आराम कुर्सी पर भी उन्हे कठोर प्रयत्न करना पडा अपने को सुस्थिर चित्त रखने के लिए ।

पलग पर पडे वे इसी चिन्ता से ग्रसित थे । मनुष्य पशु से भी अधिक बीभत्स हो जाता है—स्पष्ट उन पर लक्ष्य था। पशु का-सा, सोच रहे थे वे, जीवन तो उनका बन ही गया था। घर-बाहर, सभी जगह उनका जीवन अब चर्चा का विषय था। कितना गोपनीय उन्होने समझा था अपने जीवन के रूप को। वे हैरान थे कि सबको, श्रीसिह को, कैसे सब बाते ठीक-ठीक मालूम हुई ? मुशीजी, बिल्व-माला के नौकर, अपने ससुर, अरविन्द, जान्हवी का व्यवहार—सब पर उनका ध्यान गया प्रश्न का उत्तर पाने के लिए। किसी एक पर जिम्मेदारी ठहराना मुमकिन नही था और यदि जिम्मेदारी ठहरा भी सकते तो क्या अर्थ था उसका ? होनी अनहोनी तो नही बन जाती। इस सोच मे अपने जीवन से, अपने पेशे से, ससार से, उनके मन मे घृणा का भाव जग उठा ।

वे कलेजा थामे सोच रहे थे—क्यो यह सब उन्ही के जीवन मे घटित हुआ ? क्या रास्ता था उनका अब ? ससार से विरक्ति—पलायन—सन्यास ? इससे भी क्या उन्हे शाति मिल सकेगी ? फिर सबको मॅझधार मे छोडकर स्वय 'परमहस' हो जाना, क्या यही उनका कर्तव्य था ? यह तो, मन ने कहा, भर्तृहरि के मानव राक्षस की वृत्ति होगी ? फिर कर्म मे लीन रहना—यह मार्ग तो उन्होने कब का अपनाया था। इसमे उन्हे शाति कहाँ मिली ? फिर क्या अपने को मिटा देना, उनका मार्ग था ? नगर को तीन ओर से घेरे हुए गगा-जमुना का प्रवाह था। उसमे कही भी अपना प्रवाह कर देना कितना आसान था ? लेकिन मर कर भी अगर चैन न मिला, तब ? तब उनकी क्या गति होगी ? और उनके ससार का क्या होगा ? विचारो के ताना-बाना मे बाबू रूपकिशोर को अपने विस्तर पर पडा रहना असं-म्भव हो गया। उठकर कमरे मे वे टहलने लगे। बडी देर तक टहलते रहे। फिर

शीतलपाटी पर ही जान्हवी के बगल मे लेट गये । जान्हवी के शरीर को उन्होने अपने से जकड लिया, जैसे वह भय से वेमुव हो ।

जान्हवी को पति की मानसिक अवस्था का अनुमान उनके टहलने से ही लग गया था। जकडे जाने पर भी उसे ऐसा नही लगा कि पति ने पत्नी को—विवाहित पत्नी को—बलपूर्वक अपने अक मे खीच लिया हो । उसे ऐसा लगा जैसे कोई अनजान बालक दारुण भय से त्राण पाने के लिए सहारा पकड रहा हो । जान्हवी ने पति की पकड का विरोध नही किया ।

अर्धमूर्छा की अवस्था मे बाबू रूपकिशोर ने रात का अधिकाश समय बिताया । ब्राह्मवेला के कुछ ही पहले पत्नी को जकडे हुए ही वह चिल्ला पडे, "बचाओ, बचाओ।" जान्हवी भयभीत हो पति को सॅभाल कर उठाने लगी । पूर्ण जागत अवस्था मे भी 'बचाओ' की चिल्लाहट उनके मुॅह से दो-तीन मिनट तक लगातार आती रही । चिल्लाहट जब बन्द हुई तब जान्हवी ने पति को उठा कर पलग पर लिटाना चाहा ।

भाव समझ कर पति ने आग्रह से प्रार्थना की, " जान्हवी, कम-से-कम आज की रात मुझे अपने से दूर न करो । मै यही रहना चाहता हूॅ । मुझे ऐसा लग रहा है कि चारो ओर जलती शलाखो से मुझे कुछ भयावनी मानव-आकृतियाॅ बेध रही है और मै जीवित ही चिता मे जल रहा हूॅ। मुझे बचा लो जान्हवी, मुझे बचा लो ।" पति ने जान्हवी को और कसकर पकड लिया ।

जान्हवी रो पडी—फूट-फूट कर। इतना दारुण दु ख मिल रहा है उसके पति को, उसी के कारण । उसे भगवान नरक मे भी स्थान नही देगे—उसका मन दहल गया । वह पति को सॅभालने की कोशिश मे लगी ।

[illegible] आ गई। जान्हवी ने उठकर स्नान किया। पूजा-गृह मे बैठी भगवान से प्रार्थना करती रही और शालिग्राम का पिण्ड अपने आॅसुओ से भिगोती रही ।

जब सबेरा हो गया तब बाबू रूपकिशोर का मन सुस्थिर था, जैसे पहले वे थे, वैसे ही थे । कचहरी जाना बहुत जरूरी नही था । माधुरी से जान्हवी ने कहलवाया भी, स्वय वह नही कह सकी । लेकिन बाबू रूपकिशोर ने सोचा कि कच-

हरी न जाना श्रीसिह के आक्षेपो को पुष्ट करना होगा। इसीलिए वे न चाहते हुए भी कचहरी गये ।

पिता के कचहरी चले जाने के बाद माधुरी ने जान्हवी से कहा, "मुझे कहना तो नही चाहिए। पर तुम स्वय गल रही हो और बाबूजी को भी गला रही हो। कल रात ऐसा लगा मानो दर्द से वे चिल्ला रहे हो।"

जान्हवी मूक माधुरी को देखती रही।

माधुरी कहती गई, "जो बात हो गई, अब वह नही तो हो नही सकती। उसकी खिन्नता मिटा देना ही सबके लिए शुभ होगा। क्या तुम इसकी कोशिश भी नही कर सकती ?"

"कोशिश कर रही हूँ, माधुरी ! केवल तेरे पिता ने यह सब छिपाया नही होता तो शायद इतना दु ख मुझे न मिलता, न उन्हे।"—जान्हवी रो पडी। सयानी माधुरी से आज वह कुछ न छिपा सकी।

"पर क्या तुम दु ख असह्य बना देना चाहती हो ?"—माधुरी ने माँ का मन मोडने के लिए बातचीत का प्रसग बढाया।

"माधुरी, तू भी पत्नी बनने जा रही है। जिस दिन फेरे पड जायँ उसी दिन अपने से इस सवाल का जवाब माँग लेना, मिल जायगा।"

फिर ज़रा रुककर बोली—"मै तेरे सवाल से नाराज नही हुई। तू मेरी बेटी है और तुझमे सखी भाव भी है। सुख-दु ख मे तेरी बाते अनमोल होती है। पर मन भी होता है, माधुरी ! इस मन का क्या किया जाय ?"

"कुछ भी करो। मै तुम्हारे मन की दशा समझ सकती हूँ। तुम्हे अपना उत्तर-दायित्व भी तो निभाना है। करुणा अभी बैठी पडी है। केदार पर भी इस दावानल का क्या असर पडेगा, यह सब सोचो।"

करुणा के नाम पर जान्हवी चौकी। क्या कोई दुर्घटना फिर हुई। पूछ बैठी—"करुणा ने फिर कोई बात की क्या ?"

"नही, करुणा को हार्दिक पश्चात्ताप हुआ था कि वह मुझसे झूठ बोली। अब कोई आशका उससे नही। तुमने उससे सच बात कहलाकर उसके मन का भार मिटा दिया। पर अभी तो उसका और केदार का पूरा भविष्य पडा है। इन सब

बातो का, उन पर क्या असर पडेगा ? कभी-कभी तो मै सोचती हूँ कि घर की वर्त-मान स्थिति मे मुझे विवाह बन्धन मे पडना ही नही चाहिए। तुम अगर अपने मन पर अनुशासन नही कर पाओगी तो घर-का-घर जलकर राख हो जायेगा।"

जान्हवी विह्वल हो गद्‌गद् भाव से बोली, "नही माधुरी, अपने बारे मे ऐसा न सोचो। तुम कितनी भी सयानी हो, तुम्हारे बारे मे मेरा भी कर्तव्य है। तुम्हारे सुख के रास्ते मे मै बाधा बन रही हूँ, इसका मुझे भारी दु ख होगा। मै कोशिश करूँगी कि मुझसे तुम सब प्रसन्न रहो।

"माॅ, वस्तुस्थिति को स्वीकार करने मे ही भलाई है।"

"हाॅ माधुरी, वस्तुस्थिति को अस्वीकार किया ही कैसे जा सकता है ?"

"रात क्या बात हुई ?"—माधुरी ने स्पष्ट पूछा।

जान्हवी ने गम्भीर होकर कहा, "माॅ-बाप की बाते है बेटा, जानकर क्या करोगी ?"

"माॅ-बाप की बाते नही पूछ रही। बाबू जी चिल्ला क्यो रहे थे ? सारे मुहल्ले ने सुना होगा ?"

जान्हवी को तब जो कुछ वह जानती थी बताना पडा। सुनकर माधुरी स्वय चिल्लाने को उद्यत हो गई और माॅ ने यदि सॅभाला न होता तो वह गिर पडती।

सुस्थिर होने के बाद माधुरी ने कहा, "माॅ, बाबू जी पश्चात्ताप के आग मे जल रहे है। उन्हे कोई रास्ता मिल नही रहा है, शायद कोई रास्ता है भी नही। मन उनका कब से रोगी है। अब तुम उन्हे सॅभालो अन्यथा परिणाम की कल्पना भी मै नही करना चाहती।"

"हाॅ बेटे, हाॅ," कहकर जान्हवी ने सजल नेत्रो से धार बरसानी शुरू कर दी।

'वस्तुस्थिति को स्वीकार करना'—यही अगर जान्हवी का मन कर पाता !

बाबू रूपकिशोर कचहरी मे दो बजे तक रहे। अपना काम लगन से उन्होने किया। कोई यह नही कह सकता था कि उनका व्यवहार पूर्ववत् नही था उस दिन।

अवस्था का शरीर पर बोझ, मन का क्लेश चेहरे पर, यह तो अब स्थायी थे। उसे तो मिटाया नही जा सकता था।

श्रीसिह से मुलाकात भी हुई। व्यवहार मे कमी नही आने दिया बाबू रूपकिशोर ने। कर्म मे रत रहे—यही प्रकार अब था उनके जीवन का। अन्य सब भावनाएँ उन्हे व्यग्र नही करती थी कम-से-कम जब तक वे घर से बाहर रहते थे। घर पर जान्हवी, प्रतिक्षण उन्हे जीवन का जो 'कु' था—उनका भयकर विरोधाभास था—उसकी याद दिला दिया करती थी। जान्हवी का भी क्या अपराध था, सोचते थे बाबू रूपकिशोर।

दो बजे के बाद कचहरी से घर के लिए चले। शायद अज्ञात मन जानता था कि घर पर क्या होगा ? अत लूकरगज जाने का उन्होने सोचा। लूकरगज अब वे जाते नही थे, जाना चाहते नही थे। पर आज असहनीय परिताप मे इच्छा के विपरीत उन्होने गाडी लूकरगज की ओर मोड ली।

बिल्वमाला जैसे प्रतीक्षा कर रही थी, अपना मान, अपनी पीडा, सब भूले हुए। नेत्र लाल थे, चेहरा काला था, जान्हवी की तरह। घबरा कर पूछा बाबू रूपकिशोर ने—"क्या हुआ है तुम्हे ? आँखे क्यो लाल है।"

अपने नेत्रो की धार रोककर बिल्वमाला बोली, "आप आ गये ? मेरी प्रार्थना भगवान पार्श्वनाथ ने सुन ली ? आज सुबह से ही मन भारी है। यही सोच रही थी कि बहनजी के पास चलूँ या न चलूँ ? आशा हो गई थी आपके आने की। अगर कुछ देर और न आते तो मै पहुँच ही जाती चाहे कुछ भी क्यो न होता।"—धार का बाँध टूटने को आया।

"मगर हुआ क्या है ? ऐसी क्यो हो गई हो"—उत्कठा से बाबू रूपकिशोर ने पूछा ?

"आज सबेरे सूर्योदय के पहले क्या आप बीमार थे ?"

"हाँ, कुछ तबियत उचटी तो थी।"

"रात के अतिम प्रहर मे मै नीद से जाग उठी। आपके बारे मे एक भयकर सपना देखा। चारो ओर अग्नि-शिखा प्रज्वलित थी। उसके बीचोबीच आप—

मै चिल्ला पडी। बीरा ने उठकर सँभाला। तब से मन बडा ही चचल था। उसी क्षण से राह देख रही थी। आप आ गये, बडी दया की।"

बाबू रूपकिशोर आश्चर्य से भर गये। मन की बात मन को मालूम हो जाती हे। बिल्वमाला को कितनी सचाई से उनकी सबेरे की दशा ज्ञात हो गई। बिल्वमाला के मन की सचाई, पवित्रता, का इससे ज्वलत प्रमाण और क्या होता—यदि प्रमाण की अब भी आवश्यकता थी।

बिल्वमाला को जैसे जान्हवी को रात मे जकड लिया था, बाबू रूपकिशोर ने अपने से जोर से लिपटा लिया। बडी शाति का बोध हुआ उन्हे।

बीरा जब चाय लेकर आयी तो रानी के साथ लिपटे पडे वकील साहब को देखकर सकुचित हुई। पर बिल्वमाला ने उसी अवस्था से कहा—"चाय दो प्यालो मे बना दे।"

बीरा—दासी। बीरा—ने दो प्यालो मे चाय बनाया। प्यालो को तिपायी पर रखा और चली गयी।

चाय पीते समय बाबू रूपकिशोर ने कहा, "बिल्वमाला, भगवान की भी क्या लीला है? तुम्हारी जैसी साध्वी नारी को समाज से, अपने से, [illegible] करना पडा है। तुम नारी होकर क्या कुछ कर सकी ? मै पुरुष होकर भी तुम्हे खुले रूप से अपना नही सकता।"

अर्थ समझकर बिल्वमाला ने कहा—"तुम्हारी जितनी कृपा है, वही मेरा परम सौभाग्य है। तुमने क्या मुझे अपनाने से कम रखा है ? जो समाज है, वहाँ बहनजी का हक है। तुम हम लोगो के कारण अपने मन को क्लेश मत देना। बहनजी का मन मोडने की कोशिश करो, उन्हे सुखी करो।"

बिल्वमाला को श्रद्धा से देखते रह गए बाबू रूपकिशोर। फिर बोले, "जानती हो, इसका मतलब क्या होता है। इसका मतलब है, मैं घुल-घुल कर मिट जाऊँ। मै तुम्हारे बिना जीवित कैसे रहूँगा ? हाँ, बिल्वमाला, सच कह रहा हूँ, अतिरजना मत समझना। मुझ अभागे को तुम्हारे अलावे कही शाति नही मिलती।"—कह कर पुन बाबू रूपकिशोर ने बिल्वमाला को अपने अक मे जकड लिया।

पति जैसे परिणीत प्रेमी के स्नेहातिरेक भावना से बिल्वमाला की बँधी धार

फूट निकली। बाबू रूपकिशोर के अक मे लिपटी बोली, "नही, यह सम्भव नही होगा कि मै तुम्हे देख भी न पाऊँ। इतना अधिकार अवश्य सुरक्षित रखना चाहती हूँ। शेप सब बहनजी के लिए प्रसन्नतापूर्वक त्याग देना चाहती हूँ—अगर ऐसा करने की जरूरत हो। बहनजी को सुखी करना है।"

बाबू रूपकिशोर चुपचाप बिल्वमाला के बालो से खेलते रहे।

बीरा हुक्का रख गई। हुक्के की कश लेते हुए उन्होने कहा, "बिल्वमाला, तुम मुझे पहले क्यो नही मिली? पहले, जब महेश की माँ भी नही आई थी।"

"भगवान ने क्यो ऐसा किया, मैं स्वय नही जानती? पर जब पहले पहल आपको मुकदमे मे देखा था तभी मन ने कहा था—"तेरे जन्म-जन्मातर के देवता आ गये।"

"बिल्वमाला, जीवन बडा कष्टदायी है।"—मन की सच्ची वेदना को प्रकट किया बाबू रूपकिशोर ने।

परिहास कर बैठी बिल्वमाला—"तो क्या भाग चले कही? लडके-लडकियो के लिए आदर्श बन जायें?"

कहने के ढग पर बाबू रूपकिशोर भी मुस्कराये बिना नही रह सके।

बिल्वमाला ने आगे कहा—"अब हम लोगो की उमर पूरी होने को है। जो मिला, जो है, वही भगवान की असीम कृपा है।"

"हाँ"—बाबू रूपकिशोर ने कहा।

"बहनजी, बहुत नाराज है?"—पूछा बिल्वमाला ने।

"क्या कहूँ?"

"मै समझ सकती हूँ। उन्हे प्रसन्न रखने की ही कोशिश हो। इसीलिए आज सबेरे से बहुत चाह कर भी मै आ नही सकी। भगवान जानता है कि कैसे मेरा आज दिन बीता?"

कुछ देर मौन रहकर फिर पूछा—"माधुरी कुमार को भेज सकोगे? बहनजी, शायद बुरा माने।"

"माधुरी को स्वय किसी तरह कहला भेजो। वह तुमसे स्नेह करती है। वह किसी न किसी तरह आ ही जायगी।"

"विवाह की तिथि कौन है ?"

"एक महीना कुछ दिन शेष है ।"

"बुलाना ही पडेगा । माधुरी का विवाह मै करूँगी । सारा खर्च, पाई-पाई, मेरा होगा ।"

"तुम-हम कोई अलग है ?"

"मेरी आन्तरिक अभिलाषा है ।"

"अच्छा ।"

"पटना कब जा रहे हो ?"

"पटना नही जाऊँगा ।"

"क्यो ?"

"नैतिक पुनरुत्थान सम्मेलन के [illegible] के क्या मै योग्य हूँ ?"

"क्यो नही हो, सुनूँ तो ?"

"बिल्वमाला, कोई बात छिपती नही । मेरी गोपनीय से गोपनीय बात जान्हवी को ही नही सारी कचहरी और शायद सारे नगर को मालूम है । जिस भेद को हम इतना छिपाना चाहते थे, उस बालक के बारे मे अपने कानो से सही-सही हाल मैने कचहरी मे एक वकील के मुँह से सुना ।"

बिल्वमाला आश्चर्य से भर उठी, बोली "इसमे अपवित्र क्या है ? मेरा, बीरा या धीरा का सम्बन्ध कदापि अपवित्र नही । हमारे समाज मे यह परम पुनीत है । कई समाज मे तो पति-पत्नी का भी सम्बन्ध एक अवधि के बाद अपवित्र माना जाता है । उससे क्या हमारा पवित्र परिणय अनैतिक हो गया ? नही, कुत्ते भौकते ही रहते है । तुम्हे पटना जाना चाहिए । कर्म-पथ, जैसा तुम कहते हो, यही अपेक्षा करता है । हाथी की तरह अपनी चाल हमे छोडना नही है ।"

बाबू रूपकिशोर मौन रहे । बिल्वमाला को आश्वासन देने के लिए कुछ देर बाद बोले—"तुम कहती हो तो जाऊँगा ।"

कुछ देर बाद उन्होने कहा, "अब चलूँ ।"

"स्नान करके जाओ । अपने पर नही तो बच्चो पर दया करो, शरीर का ध्यान रखो ।"—बिल्वमाला की आँखे भर आयी ।

बीरा ने स्नान तैयार किया। बाबू रूपकिशोर ने स्नान किया। स्नान से मन कुछ हल्का हुआ। फिर नाश्ता भी किया, बालक सोमेश्वर को प्यार किया और घर के लिए चल पडे।

घर पर जान्हवी प्रतीक्षा कर रही थी। पूछने ही जा रही थी, "कैसी तबियत है" कि स्नान से ताजा चेहरे पर नजर पडी। कुछ बिना कहे, बच्चो के कमरे मे चली गयी।

रात को पलग कमरे मे बाबू रूपकिशोर कर्म-योग पर कुछ पढते रहे। जान्हवी कमरे मे कुछ देर इधर-उधर करती रही। मन मे था—पति कोई आदेश दे । पर पति पढने मे लीन रहे। फिर रोज की तरह वह शीतल पाटी पर सो गई।

माधुरी को रानी बिल्वमाला का सन्देश मिला। इस सन्देश की वह प्रतीक्षा ही कर रही थी। पर माँ की, पिता के सम्बन्ध का जो खतरनाक रूप प्रकट मे आ गया था, माँ-बाप दोनो का जीवन जिस प्रकार दयनीय बन गया था, उससे उसे सोचना पडा कि अपना वह वादा पूरा करे या नही। उसके मन मे प्रश्न उठा—क्यो उसे रानी के प्रति स्नेह और ममता की भावना थी ? क्यो अपनी पहली ही भेट से बिल्वमाला के प्रति उसका वात्सल्य भाव उभड आया ? वह भाव अब भी क्यो उसके हृदय मे भरा है जब कि अब उसे माँ के दु ख का सारा कारण मालूम हो चुका है ? सुशिक्षित चतुर नारी क्या बिल्वमाला के आचरण को किसी प्रकार भी उचित ठहरा सकती थी ? क्या बिल्वमाला का ही अकेले दोष था—उसने यह भी सोचा। पिता का ध्यान आया। बडी देर तक पिता के बारे मे वह सोचती रही। पिता के दोष को देखना उसके स्वभाव के विपरीत था। लेकिन वह साफ-[illegible] वह बिल्वमाला की ओर इतनी आकृष्ट थी ? कुछ भी स्पष्ट नही हुआ माधुरी के मन को। तब उसे माँ से कहे अपने शब्द आये—"वस्तुस्थिति को स्वीकार करने मे ही सबकी भलाई है।" नारी [illegible] आज पहली बार इस दृष्टिकोण से बिल्वमाला के प्रति सहानुभूति और समवेदना जगी। जो भी हो, जो हो गया था, वही वस्तुस्थिति थी। क्यो और

किसके कारण ऐसा हुआ, यह जानना विचारो के प्रवाह मे बहना था जो माधुरी ने अपने लिए समीचीन नही माना। उसने जहाँ तक वह सोच सकती थी, सब कुछ सोचकर लूकरगज जाने का ही निश्चय किया—अपना बचन पूरा करने। माँ को इसकी किसी प्रकार की खबर न हो, इसकी सावधानी उसने बरती।

कुमार के साथ एक दिन लूकरगज वह सभीत मन से पहुँची। अपने मन का उद्वेग तो उसको था ही, कुमार ने भी वहाँ जाने मे कोई उत्साह नही दिखाया था। वह माधुरी के साथ उसका मन रखने के लिए चला गया था।

एक तो कुमार का साथ, दूसरे लूकरगज मे बिल्वमाला का आदरपूर्ण स्नेह-सत्कार से उसके मन की आशकाएँ बहुत कुछ लूकरगज पहुँच कर मिट गई।

रानी का माधुरी के प्रति सच्चा स्नेह देखकर कुमार ने भी सोचा—"माधुरी से सभी स्नेह करते है।" वह भी उन्मुक्त हो उठा।

"क्या सीताराम की जोडी है?—कुमार को अँगूठी पहनाते हुए बिल्वमाला ने कहा। फिर आशीष बचन बोली, "तुम लोग युग-युग जीओ। सदा सुखी रहो।"

उनके लिए जेनरल वाला कमरा तैयार कराया था। पहले तो इससे माधुरी से अधिक कुमार ही सकुचित हुआ। पर कमरे के एकान्त मे माधुरी को अकेले पाकर वह अपना सकोच भूल गया और प्रसन्न हो उठा। इतना एकान्त कभी—जब से माधुरी के प्रति उसका खिचाव प्रारम्भ हुआ था,—उन्हे नही मिला था।

माधुरी से बोला, "तुम्हारी रानी माँ की सदाशयता अद्भुत है।"

"रानी माँ सगी माँ की तरह प्रेम का व्यवहार करती है। पर, तुम तो जानते ही हो।"

"व्यर्थ की बात है। ऐसा प्राय हो जाता है। इससे हम क्यो अपना बहुमूल्य समय बरबाद करे?"

माधुरी चौकी। फिर उसने परिहास किया—"समय का इतना आदर कैसे?"

"उस स्नानागार के टब मे कूद पडने को जी चाहता है। तुम क्या साथ दोगी?"

"शरारत मे साथ नही दूँगी, स्नान मे सम्भव है"—माधुरी ने विनोद भाव से कहा।

धीरा आ गई। बिना कुछ पूछे स्नानागार मे वह टब भरने लगी। गुलाब की

आधी बोतल उडेल दी। स्नानागार के साथ बाहर कमरा भी सुगन्ध से गमक उठा ।

बीरा बोली, "भइयाजी स्नान कर ले। उसके बाद भोजन आयेगा। यह घण्टी बजा दीजियेगा।"

"यह ठीक दासी जैसी तो मालूम नही पडती"—धीरा के चले जाने के बाद कुमार ने पूछा।

माधुरी ने गम्भीर स्वर मे उत्तर दिया, "रनिवास मे दासी है या बहन, कहना कठिन है।"

परिहास से कुमार ने पूछा, "रनिवास का जीवन मानव-सुख के वैभव मे तो शानी नही रखता।"

"भूल किया मैने तुम्हे यहाँ लाकर। कही यह लालच मन मे सुदृढ न हो जाय। ज्योत्स्ना की तरह तुम्हारी नाक मे नकेल देकर रखनी पडेगी"—माधुरी ने मुस्कराते हुए कहा।

नाक दिखा कर कुमार ने विनोद किया, "वह नकेल तो कितने सालो से पडी हुई है। तभी तो बुल टेरियर की तरह पीछे-पीछे भागता रहता हूँ।"

माधुरी हँस पडी। स्नानागार की ओर इशारा करती हुई बोली, "जाओ, गुलाब सिंचित जल प्रतीक्षा कर रहा है।"

"अकेले नही जाऊँगा।"

"व्यर्थ की बाते मत करो।"

"परिहास नही, सच कह रहा हूँ। तैरने का छोटा-मोटा तालाब है। साथ-साथ तैरेंगे, फिर ऐसे सुअवसर कहाँ आयेगे ? और, क्या अपने पर विश्वास नही ?"

माधुरी से कुछ उत्तर नही बन पडा। टब मे दोनो स्नान के लिए कूद पडे।

गुलाब सिंचित जल मे माधुरी के शरीर की लहराती कमनीयता को कुमार ने पहली बार देखा। इतना सौन्दर्य उस शरीर पर था, वह बेसुध सा हो गया।

बडी देर तक दोनो मौन जल मे तैरते रहे। माधुरी ने उसके मौन को लक्ष कर कहा, "तुमने तो बोलने की कसम खा ली है।"

"बोलूँगा तो अपना वादा न रख सकूँगा।"

"बोलने की मनाही तो है नही"—माधुरी ने उसके बालो मे अपनी उँगलियाँ पिरोते हुए परिहास से कहा।

"माधुरी," कुमार ने उसके सरोज-चरणो को दोनो हाथो से अपने वक्ष से लगा कर कहा, "मुझे कभी अपने से अलग न करना।" माधुरी के शरीर के सौन्दर्य के आकर्षण से वह विभोर था। मानव शरीर मे इतना सौन्दर्य, इतना आकर्षण हो सकता है, यह कुमार को बेसुध करने के लिए पर्याप्त था।

"क्या कहते हो ?"—पाँव छुडा कर कुमार को माधुरी ने आलिगन पाश मे भर लिया और अपने अधरो से उसके अधरो को ढक लिया, दीर्घ क्षणो के लिए।

कुमार का रहा-सहा होश भी जाता रहा। उसके हाथो ने माधुरी के शरीर के सौन्दर्य को मानो अनुभव करने के लिए सारा शरीर नाप डाला, शनै शनै, बिलम्बित गति से, कोई अग नही छूटा। माधुरी की आन्तरिक इच्छा पूरी हुई। वह प्रेम-उष्मा मे प्रवाहित हो समाधि की अवस्था की प्राप्ति की ओर बढी, रस से बेसुध सी।

बडी देर तक जलक्रीडा के बाद वे टब से निकले। कपडे बदलते हुए कुमार ने कहा, "कोलम्बो जाने की योजना रद्द। विवाह के बाद तुम्हारी रानी माँ से यही कमरा माँग कर यही महीने भर गुप्तवास करेगे।"

"मै तो कोलम्बो ही चलूँगी। वहाँ समुद्र मे रात-दिन नहाऊँगी।"

"इतना एकान्त समुद्र तट पर, और वह भी कोलम्बो मे कहाँ मिलेगा ?"

"तुम्हे वही करना है, जो कहा जाय"—माधुरी ने विनोद किया।

"नकेल तो पहन ही चुका हूँ। पर आज यहाँ लाने के लिए तुम्हारा मै उपकृत हूँ। आज मुझे मालूम हुआ उन्नत देशो मे विवाह के पहले प्रेम करने की एक लम्बी अवधि का विधान क्यो है ? हमारे यहाँ इस जानकारी का—इस रागात्मक अनुभूति का—अवसर कहाँ ?"—फिर आवेश के स्वर से उसने कहा, "माधुरी, मैने पूर्व जन्म मे तुम्हे पाने के लिए तपस्या की होगी। तुम साक्षात् इन्द्रलोक से उतर कर आयी हो।"

"कविता बन्द करो।"—कहकर माधुरी ने घण्टी दबा दिया।

भोजन का थाल लिए बीरा और धीरा आ पहुँची । साथ ही बिल्वमाला भी आयी ।

दो ही थाल देखकर माधुरी ने कहा, "रानी माँ, तुम भी साथ ही खाओ ।" बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये माधुरी ने धीरा से रानी माँ के लिए थाल लाने का आदेश दिया ।

रानी बिल्वमाला ने कोई आपत्ति नही की । धीरा थाल लेने चली गई । रानी ने स्नान से ताजा कुमार और माधुरी के शरीर की द्युतिमान आभा देखकर कहा, "विवाह के बाद यह कमरा तुम लोगो के लिए हमेशा सुरक्षित रहेगा ।"

"विवाह के बाद क्यो रानी माँ ?"—कुमार ने मद हँसकर पूछा ।

"सस्कार है न, बेटा, माँ को सब देखना पडता हे । वैसे तुम देवता सरीखे दो प्राणियो से किसी अशुभ की आशका की कल्पना भी अपमान है । पर समाज की मर्यादा है । वैसे जब मन मिल जाता है तो क्या कर्मकाड ओर क्या पडित ? —रानी बिल्वमाला ने उसाँस को दबा कर कहा ।

कुमार हँस कर बोला, "मै भी कई बार इनसे कह चुका हूँ । पर इनका आदर्श ही कुछ और है । शायद ज्योत्स्ना इनकी आदर्श है ।"

"ज्योत्स्ना का क्या आदर्श है ?"—बिल्वमाला ने कुमार की रसिकता मे योग देते हुए पूछा ।

"ये कहती है कि ज्योत्स्ना महेश की नाक मे नकेल बाँध कर रखती है । कुत्ते की तरह जहाँ चाहती है, नचाती है ।"

बिल्वमाला, बीरा और माधुरी भी खिलखिला कर हँस पडी ।

धीरा थाल लेकर आ गयी । बिल्वमाला प्रसन्न ही हुई कुमार और माधुरी के साथ भोजन करके ।

भोजन के बाद गपशप, दीन-दुनिया की थोडी देर चर्चा रही । फिर वे विदा माँगकर चले । बिल्वमाला फाटक तक छोडने आयी । कुमार ने माधुरी की तरह उनके चरणो मे प्रणाम किया । कुमार को गले से लगाकर भाव पूर्ण शब्दो मे रानी ने कहा, "माधुरी मेरी सगी बेटी से कम नही । कमल सी कोमल है । इसे सदा सुखी रखना ।"—उनकी आँखे सजल थी ।

कुमार की बिल्वमाला के प्रति करुणा जग उठी थी। उसने रास्ते मे माधुरी से कहा, "रानी माँ तो देवी निकली। माँजी का इनके प्रति रोष अब उचित नही। जो हो गया, वह हो गया।"

माधुरी बोली, "माँ अपनी जगह पर ठीक ही है। तुम नारी होते तो इस बात को अच्छी तरह समझते। पर जो है, उसे अमान्य करना ही मा की भूल है। इसीलिए वे स्वय इतना दु ख पा रही है और अपने चारो ओर सबको दे रही है। तुमने रानी माँ के चेहरे को गौर से नही देखा। वे भी जल-भुन रही है।"

: २९ :

बाबू रूपकिशोर पर समाज-शास्त्रियो ने जोर डाला और वे नैतिक पुनरुत्थान सम्मेलन के सभापतित्व के लिए पटना गये। घोर कलिकाल जब पृथ्वी पर छा गया था, तब उनसे अधिक उपयुक्त समाज-सेवीदेश की सारी मानवता को उचित मार्ग-दर्शन के लिए और था कौन---यह कई प्रान्तो के समाज-वेत्ताओ ने उन्हे लिखा। बिल्वमाला के शब्द कि "हाथी अपना चाल [illegible]
और वे गये। पटना सम्मेलन मे जो उनका सारगर्भित भाषण था वह समाज-शास्त्र के विपुल ज्ञान मे एक नवीन मौलिक अध्याय माना गया। मानव के अन्त और बहिर्जगत की जो विवेचना उन्होने की थी, वैसा देश ही क्या समूचे विश्व मे अभी तक इने-गिने चोटी के समाज-शास्त्रियो ने ही की थी —ऐसा बहुत से पत्र-पत्रिकाओ ने लिखा। साख्य के ऊपर कर्म मार्ग की श्रेष्ठता का समर्थन किया बाबू रूपकिशोर ने अपन भाषण मे। साख्य और कर्म की मीमासा मे उनका भाषण अद्वितीय माना गया।

पटना मे बाबू रूपकिशोर का जो स्वागत और सम्मान हुआ वह उनके विचार-पूर्ण भाषण ही नही, उनके जीवन भर के महत् कार्यो की एकाग्र श्रेष्ठता का अभिनन्दन था। अपने सम्मान से पटना के प्रवास मे बाबू रूपकिशोर अपने मनस्ताप को भूले ही रहे। जीवन का अनुराग मन मे फिर से उमड पडा था वहाँ।

इसका कारण लेकिन कुछ दूसरा था। बाबू रूपकिशोर के अन्तर्दाह और क्लान्त शरीर का ही शायद ध्यान रखकर बिल्वमाला ने बीरा को भी अलग से पटना भेज दिया था। जिस होटल मे बाबू रूपकिशोर के ठहरने का प्रबन्ध था वही एक राजकुमारी के नाम से बीरा भी ठहरी थी। बाबू रूपकिशोर की बीरा से जब भेट हुई तो वे स्वय आश्चर्य चकित हो उठे थे। कॉप भी गये थे कि जिन कारणो से सम्मेलन के पद-भार मे वे डर रहे थे वह कारण सशरीर वहॉ भी पहुॅच गया। पर बीरा ने आश्वासन दिया था कि उनकी सेवा-सुश्रूषा के लिए उसका आना आवश्यक था और वह ऐसे आयी थी और ऐसे रह रही थी कि वात खुलने का कोई डर नही था, न पटना मे बात खुली ही। प्रवास मे बीरा का—उनके सबसे छोटे बच्चे की मॉ का—साथ सुखकर ही लगा।

पटना मे उनका मन जो अपेक्षाकृत शात और हल्का था वह वापस आकर उतना ही खिन्न और भारी हो गया। जान्हवी का रुख अब बिलकुल दूरी का उन्होने पाया।

जान्हवी मे एक सप्ताह से भी कम मे ऐसे भीषण परिवर्तन का कोई प्रकट कारण न होने से उन्होने यही अनुमान लगाया कि जो भेद पटना मे देश भर के मर्मज्ञ समाज-शास्त्री नही जान पाये उस बीरा के पटना जाने की बात जान्हवी से छिपी नही रही। भविष्य उन्हे साफ दिखायी पडने लगा, आशका अपने सीमा की छोर छूने लगी।

माधुरी के विवाह की तिथि आ पहुँची। विवाह धूमधाम से हुआ। विवाह में बिल्वमाला को बाबू रूपकिशोर ने निमत्रण नही भेजा। बिल्वमाला को उन्होने सारी स्थिति बताकर मना-मनुहा भी लिया था। उससे कहा था, "माधुरी जानती है, कुमार जानता है कि विवाह उनकी रानी मॉ ही कर रही है। फिर वहॉ न जाने से मन को मलीन नही करना है, खास कर जब परिस्थिति ऐसी है।"

रो-रो कर, स्थिति को सोच-समझ बिल्वमाला ने भी बाबू रूपकिशोर की बात को मान ही लिया, अपना आन्तरिक दुख दबा कर।

लेकिन जव किसी तरह जान्हवी को मालूम हुआ कि लूकरगज निमत्रण नही गया है तो उसने माधुरी से कहा, "तुम स्वय जाकर अपनी रानी बिल्वमाला को

कह आओ कि अगर वे नही आयी तो विवाह नही होगा ।"

पिता के कान तक बात गयी । बिल्वमाला को बुलाना पडा और उसे आना पडा ।

जान्हवी ने रानी से कहा, "माधुरी के विवाह मे आप न आती, यह भला सम्भव था ?"—निर्विकार थी जान्हवी यह कहते समय जैसे उसका मन जड हो गया हो, मानापमान, सुख-दु ख की भावना से वह ऊपर हो ।

बिल्वमाला ने आभार के भाव से उत्तर दिया था, "आपकी महती कृपा है, बहनजी !"

"आप जेनरल सोमेश्वर नाथ को नही लायी ?"—दूसरा प्रश्न था ।

"छोटा बालक, विवाह की भीडभाड से थोडी ही देर मे घबरा जाता। इसीलिए नही लायी ।"

"अच्छा तो है, स्वस्थ तो होगा ही ?"

"हॉ बहन जी, आपका आशीर्वाद है ।"

राग-द्वेष से बहत ऊपर थी जान्हवी । लेकिन बिल्वमाला को बहनजी के चेतन के विपरीत अर्धचेतन और मूर्धचेतन मन की दारुण पीडा को पहचानने मे जरा भी देर नही लगी । उसके दु ख का अनुमान कर बिल्वमाला का अन्तर फटा जा रहा था। उसी के कारण इस सती नारी का मन जल कर राख हो गया—वह सोच रही थी। परन्तु क्या वह स्वय असती थी ?—मन मे प्रश्न उठा। प्रश्न से आपादमस्तक त्रस्त हो गई थी बिल्वमाला। अन्तर ने ही उत्तर दिया—"नही, वह भी असती नही। वह भी जान्हवी की तरह ही सती है—पतिव्रता । न हुआ वेदो के उच्चार के साथ उसका विवाह, ऐसा एक खेल कही किसी दूसरे पुरुष के साथ हुआ। पर जो पुरुष उसके मन और शरीर को पा सका—वह एक था, उसका परिणीत पति, जान्हवी के सामाजिक विवाह का पति।" यह सयोग था कि उस पति का दो जीवन था। ऐसा, उसने सोचा, कुलीन परिवारो मे अब भी होता है, सदा से होता आया है। वह भी पतिव्रता सती नारी थी, छोटी बहन थी बहनजी की। बहनजी न स्वीकार करे पर वह इस सत्य को कैसे अस्वीकार कर देगी ?

माधुरी और कुमार का विवाह जब पडितगण मत्रोचार से सम्पन्न करा रहे

थे, तब बिल्वमाला को ऐसा लगा था मानो कुमार की जगह बाबू रूपकिशोर बैठे हो और माधुरी की जगह वह स्वय। उसने आँखे फाड-फाड कर देखा था। उसे सत्य ही उनका विवाह अपना दिखायी पड रहा था। फिर जब तद्रा टूटी थी तो वह लज्जित भी हुई थी अपनी भावना पर। अपनी बेटी के विवाह मे ऐसी भावनाओ मे वह बह रही थी जब आरती द्वारा, अपने देश-काल की रीति के अनुसार, उसका अपना विवाह बाबू रूपकिशोर से निस्सन्देह विधिवत् ही सम्पादित हुआ था।

विवाह के बाद माधुरी और कुमार ने अपने बडे-बूढो के चरणो मे प्रणाम कर प्रथा के अनुसार आशीर्वाद लिया था। माधुरी दूर बैठी बिल्वमाला के पास भी सद्य प्राप्त पति के साथ आकर अत्यन्त ही स्नेह और ममता से उसके चरणों मे पति के सग शीश नवाया था। करुणार्द्र स्वर मे बिल्वमाला ने आशीर्वाद दिया था दोनो को जैसे सगी माँ पुत्री और उसके पति को देती है।

जो उपहार भी—ढेर के ढेर—माधुरी और कुमार को बिल्वमाला ने दिये थे, वह उसी के योग्य था। मण्डप मे बैठे सबने उपहारो के पीछे के वात्सल्य और स्नेह की भावना को सराहा था। जान्हवी का भी भाव प्रशसा का ही था। जान्हवी को मालूम था, जैसे भी हो, कि विवाह का सारा व्यय रानी वहन कर रही है। विव्राह की दावत जो हुई थी—वह अपने वैभव गरिमा से भरपूर थी। सबने दावत के आयोजन की मुक्तकठ से सराहना की थी, जान्हवी ने भी।

जान्हवी ने विवाह की रात रानी बिल्वमाला को वही रुक जाने का भी आग्रह किया था। बालक सोमेश्वर का बहाना बनाकर बिल्वमाला चली गई। किसी प्रकार भी नही रुकी।

विवाह के दूसरे दिन पतिगृह को विदा होती हुई माधुरी को वक्ष से लगा जान्हवी फूट-फूट कर देर तक रोती रही। ऐसा भाव था मानो उनका वह अतिम मिलन था।

पति-गृह मे सस्कार के कर्मकाण्ड निपटा माधुरी और कुमार मधुमास बिताने कोलम्बो चले गये और महेश और ज्योत्स्ना पूना।

विवाह के बाद जान्हवी कुछ शात दिखायी पडती थी जैसे एक भारी कर्तव्य का बोझ उनके कधो से उतर गया हो। बाबू रूपकिशोर भी मन ही मन पत्नी

के नये भाव से आशान्वित हो उठे। पर एक सप्ताह के भीतर ही बिना पति से पूछे जान्हवी स्वय जाकर करुणा को छात्रावास मे भर्ती करा आयी। उसी दिन अपना कमरा भी उसने अलग कर लिया। बाबू रूपकिशोर की आशका भय मे परिणत हो चली।

घर मे अब केवल केदार था, गुप-चुप, ससार के घात-प्रतिघात की लहरो से अनभिज्ञ। पति-पत्नी का जीवन पूर्ववत् चल ही रहा था। पति का हर काम अब भी जान्हवी कर ही रही थी, उसमे किसी प्रकार की उसने कमी नही होने दी थी। पर स्वय वह मोम की तरह तेजी से गल रही थी। इससे वह अब विचलित नही हुई थी। जलना तो है ही जब तक जीवन की मोम शेष है—सोचा उसने।

बाबू रूपकिशोर पटना के सम्मेलन के अपने भाषण के अनुसार कर्म-मार्ग मे और अधिक व्यस्त रहते थे। साख्य के ऊपर कर्ममार्ग की श्रेष्ठता तो वह कब का स्वीकार किये बैठे थे। गल वे नही रहे हो—ऐसा नही था। उन्हे अब फल क्या होगा की चिन्ता नही थी—कम से कम प्रकट रूप मे। और कर्म और अशाति के बीच उनका जीवन—रक्त, स्वेद, अश्रु का जीवन—चल ही रहा था। वे जानते थे कि हर साँस उन्हे मृत्यु के करीब ला रही है। अब जीने की कामना का उन्हे मोह नही था। वृद्धावस्था का सानिध्य—असमय मे ही उनके जैसे कर्मठ पुरुष के लिए—जीवन के मोह को तो मन से मिटा चुकी थी, मगर जीवन के शेष पथ को दुष्कर बना रही थी। कोई राग-द्वेष, अभिलाषा शेष नही थी। जी रहे थे इसलिए कि मर नही सकते थे। अतर की आग सीमा पर पहुँचकर शेष हो गई थी। उसका धुआँ ही मन मे छा गया था जो उनके समूचे जीवन का धुँधलापन बन गया था। कभी-कभी वे सोचते थे कि जीवन से उन्हे क्या मिला? जब वे स्वय, उनकी विवाहिता पत्नी, परिणीता प्रेयसी उनके सभी बच्चे, दुःख की छाया से उभर नही सके तो क्या अर्थ था उनके जीवन का, घर के भी और बाहर के भी? जब सबका सम्मिश्रण जीवन मे दुःख की ही सृष्टि करता है तो जीने से लाभ ही क्या था? एक दिन सोचा उन्होने—"हजारो, लाखो, असख्यो आये और मिट कर चले गये। पद-चिन्ह भी तो उनका नही शेष है जीवन की

धरती पर । फिर क्यो यह सृष्टि का क्रम, क्यो विनाश के बाद पुर्ननिर्माण का सिलसिला ? मोक्ष प्राप्ति के लिए, जीवन का क्रम चलता है—ऐसा किसी अध्यात्म के तर्क मे उन्होने सुना था। मोक्ष, जीवन के दु ख पूर्ण जाल से, कितना नैसर्गिक होगा ? पर जिस परमशक्ति ने मोक्ष का तत्त्व बनाया, उसी ने पचभूतो को एकत्र कर जीवन की भी रचना की थी। इस सृष्टि का—जीवन का—क्या कोई अभीष्ट था या यह सर्वथा सारहीन, उद्देश्य रहित था ? इस माया की रचना की आवश्यकता ही क्यो पडी ? और अगर यह जरूरी ही था तो मोक्ष को इससे अलग क्यो कर दिया गया ? पानी मे रहकर पानी से अलग रहो उपदेश सारहीन था, असत्य था। भूल गये बाबू रूपकिशोर साख्य और कर्म । वह पत्नी की तरह ही जीवन की लौ से जल रहे थे, गल रहे थे—अनवरत प्रतीक्षा मे उस अतिथि के जो एक ही बार आता है, पर आता है जरूर ।

एक रात, बहुत रात बीतने पर, जब सब सो रहे थे—मानव-जीवन ऊहापोह को भूला हुआ स्वप्नलोक मे तिर रहा था—जान्हवी, सबकी नजर बचाकर मानो, पति के कमरे मे आयी। पति नीद की झपकी ले रहे थे । उनके चेहरे पर कोई भाव नही था। जान्हवी पति के चरणो मे बैठ गई, उनका पाँव दबाने लगी ।

कुछ ही क्षण मे बाबू रूपकिशोर जाग उठे, जैसे स्वप्न से निद्रा भग हुई हो । पत्नी को देख मुँह से अचानक निकल गया, "क्यो अपने को कष्ट दे रही हो ? इसकी आवश्यकता ही क्या थी ?"

जान्हवी का उत्तर सुनकर बाबू रूपकिशोर सन्न हो गए, "क्या मेरा इतना भी अधिकार नही रहा ? क्या धीरा से भी मै गयी बीती हूँ ?"

मर्म पर चोट खाये हुए बाबू रूपकिशोर ने दूसरी गल्ती की जो पूछा, "यह बात क्यो कहती हो, जान्हवी ?"

उत्तर का स्वर साफ था—"रानी का और बीरा का जो स्थान आपके हृदय मे है, वह मेरा कभी न हुआ न हो ही सकता था। मगर क्या धीरा की तरह भी इन चरणो मे मुझे स्थान नही [illegible] अपराध किया है ?"

गुह्यतम भेद के प्रकट होने से, यह जानकर कि जान्हवी से कुछ भी छिपा

नही, बाबू रूपकिशोर थरथर कॉप उठे। पत्नी के हाथो ने शरीर की कॅपकॅपी का स्पष्ट अनुभव किया। फिर कँपकॅपी बन्द होते ही प्रबल पीडा का आवेग उनके हृदय के नस-नस मे छा गया। उनका अव्यक्त मन कराह उठा। वे कुछ भी बोल नही सके ।

जान्हवी मर्म पर चोट करने नही आयी थी। बात जीभ से निकल गयी थी। पश्चत्ताप के स्वर मे बोली, "आपकी नीद मे मैने खलल दिया। क्षमा मॉगने आना जरूरी था। अगर कभी भी मुझसे कोई अपराध बन पडा हो, गलती हो गई हो, तो अकिचन दासी समझकर क्षमा कर दीजियेगा।"

पति का मौन भग नही हुआ। जान्हवी ने आगे कहा, "करुणा का ध्यान रखियेगा।"

पति के अन्त पुर की पीडा का वेग तब भी तीव्र था। वह कुछ भी बोल नही सके थे ।

जान्हवी बडी देर तक अपने अश्रुजल से पति के चरणो को धोती रही। फिर जब पूर्व आकाश मे शुक्र तारा उदित हो गया तब वह अपने कमरे मे लौट आयी ।

पत्नी के जाने के बाद शून्य भाव से पति कुछ देर सोच मे रहे। फिर नीद की झपकी आ गई। सुबह वे देर से उठे।

महाराज, महरिन, केदार, मुशीजी सबकी आवाज बगल के जान्हवी के कमरे से आ रही थी। आशका से भयभीत बाबू रूपकिशोर दौड कर पत्नी के कमरे मे आये। उन्होने पत्नी को तेज बुखार मे बेहोश पाया।

डाक्टर दत्ता और दूसरे सुप्रसिद्ध डाक्टरो को तत्काल बुलाया गया। डाक्टरों ने सोच-समझ कर उपचार प्रारम्भ किया। लेकिन जान्हवी की दशा बिगडती ही गई। करुणा आ चुकी थी। महेश-ज्योत्स्ना और कुमार-माधुरी को तार दे दिया गया।

जान्हवी की हालत दिन-प्रतिदिन खराब ही होती गई। सुविज्ञ से विज्ञ डाक्टरो का इलाज उसे कोई फायदा नही पहुँचा सका। तब वैद्य और हकीम बुलाये गये। लेकिन उनके इलाज से भी बीमारी पर कोई असर नही हुआ और

जान्हवी मौत और जीवन के बीच आ टिकी । वह करुणा को देखती, माधुरी को देखती—माधुरी की ओर बडे गौर से देर तक ताका करती, अन्य बच्चो को देखती, कुछ कहना चाहती हो जैसे । पर जबान साथ नही दे रही थी ।

बाबू रूपकिशोर उसके पास दिन रात बैठ रहते थे । कई बार ऐमा लगता मानो सकोच से पत्नी की आँखे झुकी जा रही हो । बाबू रूपकिशोर रो पडते थे यह सोचकर कि उस रात जब जान्हवी क्षमा माँगने आयी थी, उन्होने एक शब्द भी उससे नही कहा । उसी दु ख को—सब कुछ सहने के बाद—वह सह नही सकी और उसी रात के उनके व्यवहार ने—इसका उन्हे पूर्ण विश्वास था—पत्नी की दशा को ऐसा कर दिया कि वह सचमुच की जीवित मुर्दा बन गई । जान्हवी की साँस—जीवन की—चल रही थी । आँखो से वह देख पाती थी, पुतलियाँ हरकत कर पाती थी, पर जबान बन्द थी, शरीर के शेष अग गतिहीन थे । चेहरे की दीप्तिमय काति ने उसका साथ अभी नही छोडा था ।

उस काति को देखते-देखते बाबू रूपकिशोर कराह उठते—"ऐसी सती नारी पर जिसने सदा पति को भगवान से भी बडा माना, उनके द्वारा इतना भीषण अत्याचार बन पडा । ऐसी साध्वी स्त्री का पति इतना वीभत्स पशु निकला ।" 'अपने को वह कभी माफ नही कर पायेगे, अपनी नजरो मे वह हमेशा गिरे रहेगे' —ऐसा उनके मन मे बार-बार उठता । वह असीम पीडा से काँप जाते यह सोचकर कि इतना पाशविक अत्याचार उनके द्वारा हुआ और वे अभी भी अपने जीवन की मरीचिका मे भटक रहे है और जिसने मन ही मन बिना प्रतिवाद किये इतना दु सह दु ख सहा वह मायामृग से मुक्ति पाने के पथ पर है । पर अब, अवसर बीत जाने पर, वह कर ही क्या सकते थे ? पहले ही, जब जान्हवी का दु ख प्रकाश मे आया, उन्होने क्या किया ? जैसा चलता रहा उनके जीवन का क्रम—चिता की लकडी के टुकडे की तरह जल की धारा मे—उन्होने चलने दिया । उपदेश वे कर्म का, सयम का, विवेक का, नैतिकता और अध्यात्म का देते रहे । परन्तु निज के जीवन मे क्या कभी भी उन्होने उसपर अमल किया ? सोचा बाबू रूपकिशोर ने कि वे ही चले गये होते—उन्हे चला जाना चाहिए था, मन ने कहा—तो पत्नी के जीवन का इतना दर्दनाक पटाक्षेप कभी भी नही होता ।

भूल इसान से हो जाती है। भूलकर जो सुधर जाय, वह सत्पुरुष होता है, भूल का एहसास कर के भी जो सुधार का प्रयत्न न करे, वह कैसा मनुष्य है ? उस विवेकहीन को किसी नाम से पुकारा जाय ? मानव राक्षस—उनके मन से आवाज उठी। आवाज से चौके नही थे बाबू रूपकिशोर। केवल आँखो से आँसू टपक पडे थे। जान्हवी के पास बैठे और जान्हवी से अलग वे इतना रो चुके थे कि अब आँसू भी शेष नही थे। बाबू रूपकिशोर अपने हृदय के अतल तल मे हर क्षण रोते थे, लेकिन आँसू दिखायी नही पडते थे।

जान्हवी जैसे पति की मनोव्यथा समझती थी। पलके बार-बार ऊपर उठा कर मानो भाग्य विधाता की ओर इशारा करती थी। पत्नी की पलको का भाव दु ख से कातर बाबू रूपकिशोर समझ नही पाते थे। माधुरी, जो माँ को सबसे अधिक समझती थी, वह भी कुछ नही समझ पाती थी।

"बाबूजी, माँ कुछ कहने की कोशिश कर रही है। कितने दिनो से बार-बार आँखे ऊपर उठाती है।"

"लेकिन कैसे जाना जाय कि वह क्या कहना चाहती है ?—फूट पडे थे बाबू रूपकिशोर। वे बोले, "बेटे, क्या भगवान मुझ पापी पर रहम कर एक क्षण के लिए भी उनकी वाक्शक्ति वापस नही देगा ? उनकी अतिम इच्छा हम लोग समझ पाते।"

दु ख के मारे हारे पिता को माधुरी ने आश्वासन दिया, "बाबूजी, माँ ठीक हो जायँगी। हम लोगो पर से उनकी छाया अभी हटेगी नही।" पिता शुष्क आँसुओ से फिर कराह कर रो उठे।

माधुरी—प्रौढा विवाहिता, माधुरी को—पिता के जीवन का सम्पूर्ण नाटक देखने को मिला। उस नाटक का अत ऐसा होगा, इसकी उसने कल्पना भी नही की थी। क्या जीवन यही होता है, क्या प्रत्येक जीवन का तारतम्य ऐसे ही होता है—वह सोचा करती। फिर इस जीवन का उद्देश्य क्या ? उसने सुना था मृगमारीच के पीछे श्रीराम भी दौड गये। श्रीराम तो जानते थे मृगमारीच के असली रूप को, निशाचरो की माया को मिटाने के लिए ही उन्होने लीला की थी। परन्तु यह उसकी समझ मे नही आया था कि निशाचरो की माया बनाने से भगवान

को क्या लाभ था ? यह लीला क्यो, इसका लक्ष्य क्या ? क्या जान्हवी को—ससार के सभी प्राणधारियो को—इस माया की लीला के दु खताप से त्राण नही मिल सकता ? माधुरी माॅ की आॅखो की भाषा को पढने की हमेशा चेष्टा करती थी । कुछ दिनो मे उसे इसमे सफलता मिली ।

एक दिन करुणा रोती हुई माधुरी के सग माॅ के पलग के पास खडी थी । माॅ की आॅखे माधुरी पर टिकी । माधुरी ने माॅ की ओर ध्यान से देखा तो उनकी पुतलियाॅ लगातार कई बार माधुरी से करुणा की ओर गयी। माधुरी ने तत्क्षण समझा—माॅ कह रही है , करुणा को अपनी शरण मे लेना । माॅ को व्यक्त करने के लिए कि उनका भाव उसने समझ लिया है और करुणा को वह सदा अपने सा ही जानेगी, उसने करुणा को प्रेम से अक-पाश मे खडा कर लिया था । माॅ की आॅखो मे प्रसन्नता की ज्योति टपक पडी थी । माॅ ने भाव प्रकट किया था—"करुणा का दायित्व तुम्हारा ।"

माधुरी ने सिर हिला-हिला कर, स्लेट पर बडे-बड़े अक्षरो मे लिख कर कहा था, "करुणा की आप चिन्ता न करे। उसका दायित्व मुझ पर, उसको सदा ध्यान म रखूॅगी ।"

माॅ ने पढ लिया था, भाव समझ लिया था, आॅखो से यही प्रकट हुआ था ।

इस हालत मे जान्हवी दो सप्ताह से अधिक रही । हालत मे सुधार के लक्षण जरा भी प्रकट नही हुए । एक दिन उर्ध्वश्वास चलने लगी । पीडा से आॅखे बन्द हो गई । सारे घर मे कुहराम मच गया । डाक्टर, वैद्य, हकीम सभी दौडे आये । साॅस अभी चल रही थी ।

जान्हवी के भाई-भाभी भी थे । पिता आ गये । पिता ने अपने पुत्र से कहा, "अब देखते क्या हो ? भूमि-शैय्या दो ।"

चार जने जान्हवी को भूमि-शैया के लिए उठाने लगे । उसकी आॅखे खुल गयी। माधुरी की ओर देखा । समझ कर माधुरी ने कहा, "माॅ, भूमि-शैया को मना कर रही है ।" लोग अलग हो गए ।

जान्हवी की पीडा कुछ कम हो गई। साॅस साधारण हो चली । बाबू रूपकिशोर और माधुरी कमरे मे रह गये ।

पिताने पुत्री से कहा, "बेटे, अपनी माँ से कह, मुझे माफ कर दे ।" कहकर पत्नी का चरण पकड लिया बाबू रूपकशोर ने अपने कॉपते हाथो से ।

माँ की आँखो मे एक प्रतिवाद का भाव देखकर माधुरी ने पिता के हाथो को माँ के पॉवो से हटा दिया। स्लेट पर लिखा, "बाबूजी को माफ कर दो, माँ !" जोर से उसने वाक्य को पढा भी ।

माँ की आँखो ने यह व्यक्त किया कि बात वह समझ गई है। आँखों से यह व्यक्त नही हुआ कि माफ किया या नही । पत्नी ने कुछ क्षण के लिए आँखे मूँद ली—शायद इसलिए कि पति उससे माफी माँगकर अन्याय कर रहे है, माफी मागने का तो पत्नी का कर्तव्य था ।

माफी की बात कहकर बाबू रूपकिशोर सोच रहे थे, "कैसा जघन्य जीवन और व्यवहार था मेरा । मैंने व्यभिचार ही नही, बलात्कार किया और अब एक हत्या का कारण बन रहा हूँ ।"—पीडा के आवेग को सह नही सका उनका मन । किसी तरह अपनी चीख को उन्होंने पत्नी का ध्यान कर सँभाला। फिर बेसुध से वह पत्नी के चरणो मे लोट गये ।

माधुरी ने पिता को सँभाला । पिता को सुस्थिर कर उन्हे बाहर भेजने लगी। माँ की आँखो ने मना किया । तब माधुरी ने पिता की कुर्सी माँ की दृष्टि के ठीक सामने सीध मे रख दिया, उसपर पिता को बैठा दिया । बडी देर तक पति पर जान्हवी की आँखे स्थिर रही ।

फिर पुतलियाँ चचल हुई । किसी को बुला रही है—माधुरी ने सोचा । सबको उसने बुला लिया, नानाजी, मामा-मामी, महेश-ज्योत्स्ना, कुमार, केदार, करुणा, महाराज, महरिन, सबसे पीछे मुशीजी आकर खडे हो गए। जान्हवी ने सबको ध्यान पूर्वक देखा । दृष्टि की सीध मे सब आते गये । माधुरी ने बडो के लिए लिखा—"तुम्हे आशीर्वाद दे रहे है।" छोटो के लिए लिखा—"तुम्हारा आशीर्वाद चाहते है ।"

जान्हवी की आँखो ने सब पर भाव प्रकट किया मानो वह कृतज्ञ हो। कमरे मे आकर सब अधीर हो जाते थे । फूट-फूट कर रोने लगते थे । डाक्टरो ने सबको वहाँ अधिक देर ठहरने को मना कर रखा था । सब कमरे से बाहर चले गये ।

मॉ की ऑखो ने पति के ऊपर से माधुरी को देखा। पुतलियॉ चचल हुई। मॉ किसको और देखना चाहती है—उसने सोचा। सुरेश का ध्यान आया। वर्षो से उसका कोई पता नही था। उसने कोई खबर नही ली थी।

'रानी मॉ को' —विजली कौध गयी माधुरी के मन मे, वह अस्तव्यस्त हो उठी। रानी मॉ ने कई बार आने के लिए कहलवाया था। पिता ने दृढता से मना कर दिया था। माधुरी ने सोचा, "मॉ रानी मॉ को ही याद कर रही है।" लेकिन पिता की मनाही थी उसमे। शायद पिता ने पत्नी की बीमारी के बढ जाने की आशका से ही उनके आने का दृढ विरोध किया था। पर अब जब ब्राह्मवेला निकट आ गई थी, प्रकाश का अतिम समय आ पहुँचा था, मॉ की इच्छा की पूर्ति न करना ही अन्याय होगा। लेकिन पिता का भी सवाल था। माधुरी ने निश्चय किया कि यदि मॉ चाहती है तो बुलाने मे—अब—किस अशुभ का डर था, न बुलाना ही, अनुचित होगा।

पिता से पूछना उसने जरूरी नहीं समझा। मॉ की ओर जो उसने देखा तो लगा कि मॉ उसे स्थिर नेत्रो से देख रही है मानो वह माधुरी के मन का भाव ही नही द्वन्द्व भी समझ गयी है। स्लेट पर लिखा उसने—"रानी विल्वमाला को बुलाना चाहती है ?" साथ ही जोर से बोली भी। पिता सुन कर घोर दु ख मे कराह उठे। पर जान्हवी की ऑखो से सहमति का भाव प्रकट हुआ।

महेश भागा गया गाडी लेकर लूकरगज। माधुरी ने उससे कहा—"सबको लाना, बालक जेनरल को भी। सबको नीचे ठहराना। रानी-मॉ को कमरे मे ऊपर अकेले ले आना।"

जब से जान्हवी बीमार पडी थी विल्वमाला स्वय घोर दु ख और पश्चात्ताप की ज्वाला से जल रही थी। जब बार-बार अनुरोध करने पर भी उन्हे बहन जी का दूर से भी दर्शन भर कर आने की भी इजाजत नही मिली तब उनका मन [illegible]र चला। वह [illegible] बीमारी के बढ जाने का खतरा था। वह इन सब दु खो की कारण थी—यह उन्होने मन मे सचाई से स्वीकार कर लिया था। लेकिन दर्शन भर न कर आ पाने से उन्हे मौत-सा दु ख मिला इतना कि जान्हवी अगर जीवित मुर्दा थी बीमारी के कारण तो [illegible] मुर्दा जीवित

थी बिना किसी प्रकट बीमारी के । जीवन न उनके कारण एक हरे भरे परिवार का सुख लूट लिया, इसका उन्हे घोर पश्चात्ताप था । लेकिन वे कुछ भी करने मे असमर्थ थी । वे प्रतिक्षण भगवान से यही प्रार्थना कर रही थी कि भगवान बहनजी की बीमारी उन्हे दे दे और बहन जी को अच्छा कर दे जिससे बहनजी का ससार, उनके परिणीत पति का ससार, फिर बसत गरिमा से लहलहा उठे । अन्तरतम से उनकी यह मनोकामना थी । लेकिन उनकी प्रार्थना, उनका जप-तप सब निष्फल होता दिखायी पड रहा था और वह किकर्तव्य विमूढ सी मन की दावा से गल रही थी अपराधी की तरह जिसको अपने अपराध के विनाशकारी परिणाम को देखने को मिले और जिसे उसकी भयकरता का पूरा-पूरा बोध हो जाय । एक प्रकार से खाना पीना उन्होने सब छोड दिया था और बहनजी की बीमारी को अपने ऊपर ले लेने के लिए वह तुली बैठी थी ।

आज सवेरे से ही उनकी आँखे फडक रही थी । घण्टो वह पूजागृह मे भगवान [illegible] के चरणो मे अपनी नित्यप्रति की प्रार्थना दुहराती रही । भगवान से उन्होने कहा, "कितना हराभरा ससार था वकील साहब का । मेरे ही पाप से वह उजड रहा है । मेरी यहाँ क्या जरूरत है ? बहनजी को यहाँ रहने दे प्रभो, और मुझे उनके स्थान पर बुला लो ।"

पूजा के बाद आज वह निश्चय कर रही थी कि चाहे जो हो, मै बहनजी के पास आज जरूर जाऊँगी । उनके पलग के चारो ओर प्रदक्षिणा कर भगवान की गोहार लगाऊँगी, उनके चरणो मे सिर रखकर उनसे माफी माँग आऊँगी और उनको बचा कर अपना उत्सर्ग कर दूँगी । लेकिन इतना अधम था उनका भाग्य कि बहनजी के चरणो मे पडकर उन्हे माफी माँगने का भी अधिकार नही था । बार-बार वह फाटक तक जाती थी किसी सन्देश की प्रतीक्षा मे ।

रानी सोच रही थी, 'क्या भाग्य पाया मैने । राज-परिवार में जो स्वदेश से निष्कासित हुआ, जन्म मिला । विवाह मे एक मट्टी का पुतला पति के [illegible]न मे मिला । वह पुतला भी विवाह के कुछ ही दिन बाद नही हो गया । यदि वह नही-नही हुआ होता तो शायद आज जीवन का प्रकार दूसरा ही बन पडा होता । लेकिन जो न होना था, वही हुआ । फिर मुकदमा आया, वकील साहब के चरण घर में

पडे। उनसे प्रेम-परिणय हुआ। ग्रीष्म के आतप से सूखे उपवन को आषाढ-सावन का मेघ-मलार मिला, उपवन हरा हो चला, उसमें बसत की बहार आयी। बसत लेकिन अपने साथ ही ग्रीष्म का आतप लाया। एक उपवन जिस बसत-श्री से सुरभित हुआ, दूसरा उसी बयार से झुलस उठा। आज वह ज्वाला की छोर पर है। इन सबका कारण वह स्वय है। क्या भाग्य लेकर वह जीवन मे आई, कितनी अधम है वह ?' अपने समूचे जीवन पर उसका हृदय चीत्कार कर उठा। उसने फिर सोचा, 'क्या मिला उसे इस सबसे ? शाति मिली नही, जन्म-जन्म के साथी की छाया मिली जरूर जिसकी उसने सेवा की। पर पूर्व के पाप की कमाई से वह भी उसका नही हो सका—जो उसका था वह दूसरे का होकर मिला ओर उसे सेवा के बदले दु ख, अपमान, पीडा यही अत में हाथ लगा। कितना अच्छा हुआ होता यदि वह चली जाती और किसी का उद्यान फिर हरा-भरा हो लहलहा उठता। वह सब दु ख सह लेगी, पर यह दु ख, यह कलक, कैसे मिटा पायेगी ?'

इसी अतस्ताप के ऊहापोह मे फाटक पर खडी होकर जब सन्देश की वह प्रतीक्षा कर रही थी कि कार आकर रुकी और महेश उतरा। दौडकर महेश को गोद मे भर बिल्वमाला फूट-फूट कर रोने लगी। "बेटा,"—मुँह से यही शब्द निकल पाया। शेष आँसुओ की धार मे बह गया। शुभ-अशुभ पूछने का, सुनने का, साहस नही हुआ। महेश जो कहने आया था, उसे सुनने को वह तैयार नही थी। पर महेश ने आश्वस्त स्वर मे कहा, "रानी माँ"—माधुरी इसी सम्बोधन से बिल्वमाला को पुकारती थी, महेश भी शायद उनकी दशा देखकर आज नही हिचकिचाया, "माँ ने तुम सब लोगो को बुलाया है।"

"बेटा, तुमने मुझे मौत से बचा लिया यह कह कर। मै और कुछ भी सुन कर अपना मुँह दिखाने के लिए जिन्दा नही रहती, चलो।" जैसी थी, गाड़ी में बैठने को बढी।

महेश ने कहा, "सबको बुलाया है। राजा भइया को भी।"

आश्चर्य चकित तो हुई बिल्वमाला परन्तु बोली, "अभी चलते है।" भागती

भीतर गयी। मिनट भर मे ही सबके साथ आकर गाडी मे बैठ गयी। सबके चेहरे बुझे हुए थे, बालक सोमेश्वर के भी।

घर पहुँचकर सबको नीचे के कमरे मे बैठा, महेश बिल्वमाला को माँ के कमरे मे ले गया। कमरे मे तब भी बाबू रूपकिशोर और माधुरी थे। बिल्वमाला जान्हवी के चरणो पर गिरकर रोती हुई बोली, "बहनजी, तुम साक्षात देवी हो। मुझ जैसे पापिन को याद किया तो मेरे अपराध माफ कर दो। भगवान [illegible] इसी क्षण तुम्हारी बीमारी मुझे दे दे। तुम स्वस्थ हो जाओ।" दु ख के आर्त्तक्रन्दन से बेसुध थी बिल्वमाला। माधुरी ने उन्हे सँभाला।

जान्हवी ने बिल्लमावा को कमरे मे प्रवेश करते समय ही देख लिया था। प्रसन्नता का भाव आँखो से टपक पडा था। चरणो पर जब बिल्वमाला लोट पडी थी तब आँखे अद्भुत गति से चचल हो उठी थी। बाबू रूपकिशोर सज्ञाहीन बैठे थे और माधुरी बिल्वमाला को सँभालने मे लगी थी। माँ की आँखो के उस भाव पर उसका ध्यान ही नही गया।

बिल्वमाला को सँभाल कर पिता के पीछे माधुरी ने माँ की दृष्टि की सीध मे खडा कर दिया और स्लेट पर लिखा, "माफी माँग रही है। इन्हे आशीर्वाद दो।"

माँ की आँखे निमिष पल को—माधुरी को लगा युग-युगान्तर के बराबर का जैसे वह दीर्घ निमिष पल था—निर्निमेष रही। फिर आँखो ने एक भाव प्रकट किया जो प्रसन्नता मिश्रित था।

माधुरी ने बिल्वमाला से कहा, "माँ, आशीर्वाद दे रही है।" बिल्वमाला पुन चरणो मे लोट गई, "आप दया की अवतार है। मुझ जैसे अधम पापिन को आपने आशीर्वाद दिया।"

माधुरी ने पुन बिल्वमाला को सँभाला। माँ की आँखे विशेष चचल थी। माधुरी समझ न सकी। उसने स्लेट पर लिखा, "यदि पिता जी या इनके बारे में कुछ कहना चाहती हो तो उनपर आँख स्थिर कर समझा दो।—माधुरी ने जोर-जोर से पढा भी।

जान्हवी की आँखे पति पर स्थिर हो गई। फिर बिल्वमाला पर जा टिकी।

माधुरी ने जो न लिखना चाहती थी, वह लिखा, "क्या यह चाहती हो कि ·ाबूजी का ध्यान ये हमेशा रखे ?"

माँ की आँखो से स्पष्ट टपका कि यह उनकी आन्तरिक कामना थी। बाबू ·पकिशोर और बिल्वमाला ने भी समझ लिया।

बिल्वमाला ने बहनजी के अतिम क्षणो मे उनका नया रूप पाया, वह ·पने पर चिल्ला-चिल्ला कर फूट पडी। फिर साहस कर बहन जी के सामने ·ठ उनके सिर को अपनी गोद मे ले लिया। माधुरी से सुस्थिर हो निस्सकोच ·हा, "लिखो बेटा, उनकी आज्ञा का पालन होगा। पर तुम्हारे पिता को वह माफ कर दे, उनका किंचित् भी कसूर नही।"

माधुरी ने लिख कर पढा। आह्लाद का भाव नयनो से टपका क्षण भर के लिए। लेकिन आँखें अचानक चचल हो उठी।

बिल्वमाला ने वकील साहब से कहा, "आप यहाँ आ जायें।" वह उठ गई और पति ने पत्नी के सिर को बिल्वमाला की तरह अपनी गोद मे ले लिया।

जान्हवी की आँखे किंतु फिर चचल हो उठी। एक झाग सी निकली आँखो की कोण से।

"माधुरी, बीरा-धीरा को क्षण भर के लिए बुलाओ"—रानी ने कहा।

आकर दोनो ने चरणो मे प्रणाम किया। बीरा की गोद मे सोमेश्वर था। रानी ने उसे जान्हवी के चरणो मे रख आँखो की सीध मे कर उसके हाथ जोड दिये। आँखे बालक पर करुणा से टिक गई। बीरा, धीरा भी सीध मे आयी। बीरा को आँखे कुछ कह रही थी। क्या यह समझा नही जा सका ?

वे चली गयी तो करुणा केदार आये। रानी ने वकील साहब को क्षण भर को हटाकर केदार, करुणा को सामने बैठाया। माधुरी करुणा के पीछे खडी हो गयी। आँखे प्रसन्न हुई। पर आँखो से झाग की धार बहनी फिर शुरू हो गई। माधुरी ने केदार-करुणा को बिलखते हुए नीचे भेज दिया।

झाग कुछ देर ही निकला होगा कि उर्ध्वश्वास के लक्षण फिर प्रकट हुए। डाक्टर दत्ता आ गये। वे बोले, "अब प्रकाश का अतिम क्षण है।"

सब कमरे के भीतर आ गये। पिता ने, बाबू रूपकिशोर, महेश और

कुमार की सहायता से जान्हवी को भूमिशैया दी। बाबू रूपकिशोर आँखो की सीध में पत्नी का सिर गोद मे लेकर बैठ गए। आँखो से झाग के पीछे जल की धार भी निकलती दिखायी पडी। कमरे मे उपस्थित सबकी आँखे बरसात सी उमड पडी। जान्हवी की आँखे पति पर टिक गयी, पति के चरणो पर टिकने की कोशिश करने लगी। अधमुँदी आँखो की चचलता से साफ लगा कि जेसे अब उनकी ज्योति कम होने लगी है, सभी की छाया, पति की भी—जीवन के परमेश्वर की भी—जैसे अनपहचानी लग रही है। मौत का भयकर सन्नाटा कमरे मे छा गया। और जैसे ही बाबू रूपकिशोर ने भावावेश मे पत्नी के शरीर को अपने गोद मे भरने के लिए उठाया कि जान्हवी के प्राणपखेरू काया की माया तोडकर उड गये। शरीर निष्प्राण होकर पति की गोद मे लुढक पडा। जान्हवी का दाहिना हाथ पति के पॉव पर था और ज्योतिहीन आँखें उन पर निर्निमेष थी। पत्नी के अतिम प्रयाण का अनुभव कर बाबू रूपकिशोर स्वय बेहोश हो जान्हवी के शरीर पर लुढक पडे।

ससुर ने डाक्टर दत्ता की मदद से बाबू रूपकिशोर को अलग किया। दूसरे कमरे मे उन्हे ले जाया गया। डाक्टर दत्ता ने घण्टो उनका उपचार किया तब उन्हे चेतना आयी।

"राम नाम सत्य है" के घोष से जान्हवी की अर्थी घर से उठी। बाबू रूपकिशोर अर्थी के आगे कधा लगाये थे। महेश उन्हे सहारा दे रहा था। शवयात्रा मे सम्मिलित सभी भरे थे और मौन भाव से सोच रहे थे—'जीवन का अत मृत्यु है। राम—ब्रह्म—शून्य, यही एकमात्र सत्य है।'

चिता मे जब अतिम दीप-दान दिया बाबू रूपकिशोर ने तो उनके कानों मे सुनायी पडा, "पशु, नीच पशु, व्यभिचारी, बलात्कारी, हत्यारा। ऐसी सती की तूने जीते जी अपने प्रमाद में हत्या की।"

बाबू रूपकिशोर दूसरी बार बेहोश होकर जलती चिता के पास गिर गए। सबने दौड़ कर उन्हें सँभाला। जब उन्हें होश आया तब चिता की लपटे गगनचुम्बी हो रही थी और चिता धू-धू कर जल रही थी। उन्हे लगा कि चिता की लपटें कह रही है, "इस देवी ने तेरे सुख के लिए अपना सब कुछ बलिदान

कर दिया। तू जीवन भर उसे छलता रहा। तूने उसकी हत्या की। तू कातिल है, खूखार कातिल।"

जो जीवन-सगिनी थी, उनके बच्चो की माँ थी, जिसके ससार का छोर उन तक ही था, वह तड़प-तडप कर मरी, उसका ऐसा विनाशकारी अत क्या जीवन की विभीषिका का यही अत है, प्रत्येक के ? क्षण भर को बाबू रूपकिशोर सब कुछ भूल चितामय हो गए।

फिर सहसा उन्होने देखा कि चिता से तीन छायाएँ उठकर उन्हे एक दूसरी प्रज्वलित चिता मे ढकेल रही है। उनका रोम-रोम जलने लगा। जलने की पीडा से वे चीख मार कर चिल्ला उठे। जब तक लोग उन्हे सँभाले वे अपनी दारुण जलन से त्राण पाने के लिए पत्नी की पूर्ण प्रज्वलित चिता मे कूद पडे। लेकिन लपटो का ग्रास होने के पहले ही महेश और कुमार ने उन्हें कसकर जकड़ लिया।